



प्रसिद्ध इतिहासग्रन्थ मुंशी देवाप्रसाद जी ने मीराबाई के सन्ध में उपर्युक्त बातों का पता लगाया है जो अथ सर्वसम्मत भी है ।'

मीराबाई के कई पदों के यह पता चलता है कि ये रैदास को अपना गुरु मानती थीं । जैसे —

“मीरा ने गोविन्द मित्या जी गुरु मिलिया रैदास ।”

परन्तु प० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार मीराबाई और रैदास के समय में बड़ा अंतर पड़ता है । और यदि उपर्युक्त बातें मानली जायें तो मुंशी देवाप्रसाद और मिश्रवतुर्भों ने मीराबाई का जो समय निधारित किया है वह ताल्ल ठहरता है । इसलिये यह बात अलंभ्य है कि मीराबाई के गुरु रैदास थे । मालूम होता है कि रैदास के किसी शिष्य ने कुछ पद हथ प्रकार के बना दिये होंगे जा आगे चलाकर मीराबाई के पदों में मिला गये होंगे । ये ही बात तक वतमान है ।

लोग कहते हैं कि विवाह हो जाने पर मीराबाई जी बिलौद चली गई । लगभग दस बरों के व्यतीत होने पर ये विधवा हो गईं । किन्तु इन्हें पति का मृत्यु पर रूच भी दुःख न हुआ, क्योंकि इनके हृदय में गिरधर गोपाळ की मन्त्रि उत्पन्न हो गई थी । रात दिन गिरधर गोपाळ के ही प्रेम में ये लीन रहा करती थीं । ये साधु-सत्तों की सगति में आने जाने लगीं । महाराणा रतनसिंह के बाद इनके देश महाराणा विक्रमान्वित्य सिंह गरी पर बैठे । विक्रमान्वित्य सिंह मीराबाई की देवी संगति न पसन्द करते थे । उन्होंने मीराबाई का बहुत सम्भाषण और हां एक दासियों को भी इन के पास रहने का प्रवचन कर

# विषय-सूची

१—वक्तव्य	पृष्ठ संख्या ११
२—परिचय	१६
३—स्त्रियों का काव्य और साहित्य	१
कवि नामावली	
४—मीराबाई	१
५—ताज	१६
६—रत्नानिया	२४
७—शेर	२८
८—दुर्गकुँवरि बाई	४५
९—प्रवीण राय	५०
१०—दयाबाई	६०
११—कविरानी	६६
१२—रसिकविहारी	६६
१३—गजदासी	७५
१४—माई	७६
१५—प्रतापकुँवरि बाई	८७
१६—सहजोबाई	१०१
१७—भीमा	११३
१८—सुन्दरकुँवरि बाई	११६

## स्त्री-कवि कौमुदी

एक समय “मीराबाई की शब्दावली” नाम से प्रकाशित हुआ है, जो हमारे पास है। बाकी तीन ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आये।

मीराबाई का कविता राजपूतानी बोली मिश्रित हिन्दी भाषा में है गुजराती भाषा में भा. मीराबाई ने बहुत से पद लिखे हैं। हम य उनकी पुस्तकों से कुछ चुने चुने पद उद्धृत करते हैं —

१

राम नाम रस पीजै मनुजों, राम नाम रस पीजै ।  
तज हुसग सवसग बैठि नित हरि चर्चा मुख लीजै ॥  
काम कोष मद लोभ मोह कूँ धित से बहाय दीजै ।  
मीरा के प्रभु गिरधर नागर वादिके रंग में भीजै ॥

२

बड़ी एक नहिं आवये तुम दरसण बिन मोय ।  
तुम तो मेरे प्राण जी कामू जीवण होय ॥  
घाम न भावै नीद न आवै बिरह सतावै मोय ।  
पायल सी घूमत फिट्ठे रे मेरा दरद न आवै कोय ॥  
दिवस तो रास गमायो रे रैण गमाई रोय ।  
प्राण गमायो मूरता रे नैग गमाई रोय ॥  
जो मैं ऐसा जाणती रे प्रीति किये हुन होय ।  
नगर डिंदोरा फेरती रे प्रीति करो जनि कोय ॥  
पथ निहालें डगर सुहालें कबी मारग जोय ।  
मीरा के प्रभु गिरधर नागर तुम मिलियो सुल होय ॥

११—धंपादे	
२०—रत्नकुँवरि बीबी	१३४
२१—प्रताप बाबा	१४६
२२—बाघेजी विष्णुप्रसाद कुँवरि	१६१
२३—रत्नकुँवरि बाई	१६७
२४—चन्द्रकला बाई	१६६
२५—जुगलप्रिया	१६७
२६—रामप्रिया	१७८
२७—रणव्धोर कुँवरि	१६२
२८—गिरिराज कुँवरि	२०१
२९—हेमतकुमारी चौधरानी	२०३
३०—रघुवर कुमारी	२०६
३१—राजरानी देवी	२१६
३२—सरस्वती देवी	२२६
३३—मुंदेजा बाबा	२३७
३४—गापाळ देवी	२४६
३५—रमा देवी	२५८
३६—राज देवी	२६७
३७—रामेश्वरी नेहरू	२७६
३८—कीरति कुमारी	२८६
३९—छोरन देवी शुक्ल 'लक्ष्मी'	२८८
	२६६

## स्त्री-कवि कौमुदी

मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरि चरखों चित राती ।  
पल पल पिर का रूप निहाळें निरप निरप सुख पावी ॥

६

स्वामी सब ससार के हो, सोंचे श्री भगवान् ।  
स्थावर, जगम, पावक, पाणी, धरती बीच समान ॥  
सब में सहिया तेरी देखी कुदरत के कुरवान ।  
सूक्ष्मा के दारिद्र छोड़े पारे की पहिचान ॥  
है मूछी तदुल की चाची दीनी द्रव्य महान ।  
मारत में अजुन के आगे आप भये रयवान ॥  
चने अपने कुल को देखा छुट गये तीर कमान ।  
ना कोई मारे ना कोई भरता तेरा यह अज्ञान ॥  
चेतन जीव तो अजर अमर है यह गोता को ज्ञान ।  
मुक्त पर तो प्रभु किरपा कीजै बंदो अपनी जान ।  
मीरा गिरधर सरण तिहारी लगे चरण में ध्यान ॥

७

म्होंरी सुध झूँ जानो चूँ लीजौ जी ।  
पल पल भीतर पय निहाळें दरमय म्होंने दीजौ जी ।  
मैं तो हूँ बह्म औगुणहारी औगुण चित माव दीजौ जी ॥  
मैं तो दासी योंरे चरण जनों की मिल विदुरन मत कीजौ जी ।  
मीरा से सतगुरु जी सरणे हरिचरणों चित दीजौ जी ॥

४०—प्रियंवदा देवी	३१२
४१—सुभद्राकुमारी चौहान	३२७
४२—महादेवी वर्मा	३५४
४३—कुसुम-माला	३६६
४४—परिशिष्ट	४११
४५—कथा-प्रसंग	४२२

### चित्र-सूची

१—रानी लक्ष्मीकुमारी देवी फालाफौकर ( अवध )	६
२—मीराबाई ( तिरगा )	१
३—रामप्रिया	१६२
४—हेमंतकुमारी चौधरानी	२०६
५—रघुपंश कुमारी	२१५
६—राजरानी देवी	२२५
७—गोपाल देवी	२५८
८—रमादेवी	२६७
९—राजदेवी	२७६
१०—रामेश्वरी नेहरू	२८६
११—तोरन देवी शुक्ल 'लली'	२९६
१२—सुभद्राकुमारी चौहान	३२०
१३—महादेवी वर्मा	३५४

बदत पल पल पटव छिन नहि चलत लागे बार ।  
 बिरछ के क्यों पात दूटे लगे नहि पुनि डार ॥  
 भौ सागर अति घोर कहिए विषय ओखी धार ।  
 सुरत का नर बांध बेजा, बेगि पतरे पार ॥  
 साधु सदा ते भइता, चलत करत पुकार ।  
 दास मीरा लाल गिरधर जीवना दिन बार ॥

१६

हरि करिहौ जग की मीर ।  
 द्रौपदी की लाज राखी तुम बढायो धीर ॥  
 भक्त कारण रूप नरहरि पखो आप शरीर ।  
 हरिनकस्यप मार लीन्हो पखो नाहिन धीर ॥  
 बूढे गजराज वाखो कियो बाहिर नीर ।  
 दास मीरा लाल गिरधर दुख जहाँ न पीर ॥

१७

भई हौं बावरी सुन के गौसुरी ।  
 खवन सुनत मोरी सुष सुष बिसरी लगी रहत तामें मनकी गौसुरी ॥  
 नेम धरम को न कीनी मुरलिया कीन विहारे पासुरी ।  
 मीरा के प्रभु बस कर लीने सत सुरन ताननि की गौसुरी ॥

१८

मनु मन धरन कमल अधिनासी ।  
 जेतइ होसे धरनि गगन बिच तेवइ सब उठ जासी ॥





श्यामती रानी साहस ७ ।  
कलाकौकर राय (

छोड़ि गया बिसवास सँवाती प्रेम की बात बताय ॥  
 पिरह सँमुद में छाड़ गया छो प्रेम की नाव चलाय ।  
 मोरा कहै प्रसु कनै मिलोगे तुम दिन रह्यो न जाय ॥

२२

बसोवारो आया म्हाँरे देस धौरो सौँवरो सुरत वाली बैस ।  
 आऊँ आऊँ कर गया सौँवरा, कर गया कौन अनेक ॥  
 गियते गियते घिस गई बँगली घिस गई जँगली की देख ।  
 मैं बैरागिणि आदि की धौरे म्हाँरे कद को सँदेस ॥  
 बिन पाथी बिन साधुनऊँ सौँवरा दुई गई धुइ सपेद ।  
 जागिय होई जगल सब हेरुँ तरा नाम न पाया भेस ॥  
 मोर मुकुट पीताम्बर सोई घूँघर वाला फेस ।  
 मोरा के प्रसु गिरबर मिल गये दूना बढ़ा सनेस ॥

२३

नातो नाम को मोमूँ तनक न तोटयो जाय ।  
 पाना ज्यों पीली पड़ी रे लोग कहें पिड रोग ।  
 छाने लोचन मैं किया रे राम मिलण के जोग ॥  
 थावल वैद बुलाइया रे पकड़ दिखाई म्हाँरो बौह ।  
 मूरख वैद सरम नहिँ जानै करक करेजे मोह ॥  
 जाओ वैद पर आपने रे म्हाँरो नाँव न लेय ।

---

छ श्राव होना है कि उम्र समय भी भारत में यादुन बनता था ।

# समर्पण



श्रीमती रानी साहवा लक्ष्मीकुमारी देवी

कालाकाँकर-राज्य ( अरुघ )

को

सादर समर्पित

—'निर्मल'

सील सँतोष की केसर धोली, प्रेम प्रीति पिचकार रे ॥  
 घटत गुलाल लाल भये धादल, बरसत रज्जु अपार रे ।  
 घट के सब पट खोल दिये हैं, लोक-लाज सत्र द्वार रे ॥  
 होरी खेल प्यारी घर आये, सोई प्यारी पिय प्यार रे ।  
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल बलिहार रे ॥

३०

होरी खेलत हैं गिरिधारी ।

मुरली बग बजत बधु न्यारी, सँग जुगुनी ब्रजनायी ॥  
 बदन केसर छिरफत मोहन अपने हाथ निहारी ।  
 भरि भरि मूढ गुलाल लाल बहूँ देत सजन पै डारी ॥  
 छैलछपीने नवल काह सँग स्नाना प्राण पियारी ।  
 गानत चारु धमार राग सहेँ, है है कल करवारी ॥  
 फाग जु खेलत रसिक सौँवटे, बाँधौ रस ब्रज भारी ।  
 मीरा प्रभु गिरिधर मिले मनमोहन लाल निहारी ॥





श्रीमती रानी साह्या लक्ष्मीकुमारी देवी  
दावाकाकर राम ( चवथ )

सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी तुम,  
 दस्त ही विकानी बदनामी भी सहूंगी मैं।  
 देव पूजा ठानी हौं निवाज हूँ मुलानी तजे,  
 कलमा कुरान सारे गुनन गहूंगी मैं ॥  
 श्यामला सलोना सिंगताज सिर कुस्ले दिये,  
 तेरे नेह दाग में निदाग हो रहूंगा मैं।  
 नन्द के कुमार कुरवान ताणी सुरत पै,  
 हूँ तो शुरफानी दि-बुझानी हो रहूंगी मैं ॥

इनकी कविता बहुत सरल और मनोहर है। ये श्रीकृष्ण भगवान की परमभक्त थीं। इनकी कविता द्वारा कृष्ण-भक्ति का अद्भुत परिचय मिलता है। कविता की भाषा पंजाबी और हिन्दी मिश्रित है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं —

१

झेल जा छड़ीला सब रंग में रंगीला बड़ा,  
 चित्त का अड़ीला सब देवतां से न्यारा है।  
 मान गले सोहै, नाक मोठा खेत माहै फान,  
 मोहै मन कुञ्ज मुकुट सीस धारा है ॥  
 हुष्ट जन मारे, सत जन रखवारे 'ताज'  
 चित हित वारे प्रेम प्रीति कर वारा है।  
 नन्द जू को प्यारा जिन कंस को पछारा,  
 वह धृन्दासन बाहर कृष्ण सादेव हमारा है ॥

# समर्पण



श्रीमती रानी साहवा लक्ष्मीकुमारी देवी

कालाकौंकर-राज्य ( अवध )

को

सादर समर्पित

—‘निर्मल’

ज्यों ज्यों लै सलिल बर 'सेख' धोवै बार बार,  
 त्या त्यों बल बुदन के बार मुकि जात हैं ।  
 बैर के भाले केधीं नाहर नहनवाले,  
 लोह के पियासे कहूँ पानी वे अपात हैं ॥

२

धीस धिधि आउँ दिन बारीये न पाऊँ और,  
 याही काज बाही घर पौंसनि की बारी है ।  
 नेकु फिरि ऐहँ कैहँ है रो है जसोदा माहि,  
 मा वै हठि मागैं बसी और कहूँ बारी है ॥  
 'सेख' कहै तुम सिपबो न कहूँ राम याहि,  
 भारी गरिहाइनु की सोये लेनु गारी है ।  
 सग लाइ मैया नेकु न्यारो न कहैया कीजै,  
 बलन बलैया लैकै मैया बलिदारी है ॥

३

कीनी बाही बाहिली नबोदा एकै बार तुम,  
 एक बार जाय सिहि छलु डर सीजिये ।  
 'सेख' कहै आवन मुहेली सेज आवै लाल,  
 सीपन सिरौगी मेरी सीप मुनि लीजिये ॥  
 आवन को नाम सुनि सावन किये है नैन,  
 आवन कहै मुकैसे आइ जाइ छीजिये ।



## वक्तव्य

हिन्दी-साहित्य के इतिहास का जिन लोगों ने अध्ययन किया है उन्हें भली भाँति ज्ञान है कि पुरुष कवियों की भाँति स्त्री-कवियों ने भी भाषा के भाँडार की पूर्ति करने में वास्तविक और यहुत कुछ प्रयत्न किया है। तुलसी, विहारी, देव और पदमाकर आदि का नाम प्राचीन साहित्य के उद्धारकों में लिया जाता है तो मीराबाई, सहजोबाई, दयाबाई और सुन्दरिकुँवरि बाई आदि ने उसके उद्धार का कम प्रयत्न नहीं किया है। यह ठीक है कि समय के प्रवाह और पुरुषों के प्रभुत्व से पुरुष लेखकों की कृतियों का प्रचार अधिक हुआ, जनता के सामने वह सांगोपांग रूप में आया अथवा उसका विज्ञापन अधिक हुआ। परन्तु परदा-भ्रया के प्रजल प्रचार और प्रभुत्व से स्त्रियों को, सामाजिक, साहित्यिक और राज-नैतिक आदि कई प्रकार की हानियाँ उठानी पड़ी। यही कारण है कि उनकी साहित्यिक उन्नति भी चहार दीवारियों के भीतर ही सीमित रही, बाहर जनता में उसका प्रचार नहीं हो सका। वास्तव में पुरुषों को जिस प्रकार स्वछन्दता मिली थी, उनको अपने विचारों के प्रगट करने की जो सुविधायें प्राप्त थीं यदि स्त्रियों को भी उसी प्रकार के सुयोग प्राप्त होते तो पुरुष कवियों के साथ साथ स्त्री-कवियों का भी विकास होता जाता और आये दिन दोनों की साहित्यिक सेवाओं की महानता से हिन्दी साहित्य की विशालता और भी अधिक प्रकट होती।

बरबर वसि करिये को मेरो बसु नाहिं,  
ऐसी वस कहौ कान्ह कैसे बस कीजिये ॥

४

छलिये को आई ही सु हौ ही छलि गई मनु,  
छीकतौ न छल, करि पठई विहारी हौ ।  
तू तो चल है पै आली हौ हीये अचल सी हौ,  
सादी रूप देखि रोमि भीजि हारी हौ ॥  
'सेख' भनि लाल मनि बेंदी की विदा है ऐसे,  
गोरे गोरे भाल पर बारि फेरि डारी हौ ।  
वैरिन न होहु नेकु बेसरि सुधारि धरौ,  
हौ तो बलि बेसरि के बेह बेधि मारी हौ ॥

५

कहू भूल्यो वेनु कहू धाड़ गई येनु कहू,  
आये चित चैनु कहू मोरपंख परे हौ ।  
मन को हरन को है अछरा छरन को है,  
छाँह ही छुवत छवि छिन हौ कै छरे हौ ॥  
'सेख' कहै प्यारी तू जौ जबही ते बन गई,  
तब हौ ते कान्ह अँसुवनि सर करे हौ ।  
याते जानियति है जू बेऊ नदी नारे नीर,  
कान्ह घर विफल वियोग रोय भरे हौ ॥

३

प्राचीन स्त्री कवियों के साहित्य पर जब हम सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं तो हमें स्पष्ट रूप से उनका विराजता प्रगट होती है। उनका योग्यता उनकी लगन और उनके भाव विचार का स्थायित्व का अनुमान स्पष्ट हो जाता है। हिन्दी में सब से पहली स्त्री कवि मीराबाई का नाम बड़े गौरव से लिया जाता है। सूरदास जी ने कृष्ण भक्ति सबधी जिस प्रकार की सरस रचनायें की हैं उसी प्रकार मीराबाई ने भी कृष्ण प्रेम में अपनी सबस्य निष्ठावर कर दिया। हममें सन्देह नहीं है कि सूरदास और मीराबाई की तुलना नहीं की जा सकती परन्तु मीरा का शुद्ध प्रेम, कृष्ण-कीर्तन में तल्लीनता और काव्य का मधुरता ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसने गिरिधर गापाल का ही सबस्य तथा इस लोक परलोक का देवता समझ लिया था। 'मेरे तो गिरिधर गापाल दूसरा न कोई' पद न इसकी पूर्ण रूपण पुष्टि होती है। भक्ति-रस के काव्य द्वारा हिन्दी के भोहार का भरन वाली सह्याबाई और दयाबाई भा अपने गुरदेव चरणदास की दासी हुईं। रसिकविहारी, प्रजदासी और जगलप्रिया ने भी महलों का सुख छोड़कर कृष्ण प्रेम में अपने को अर्पित कर दिया। उनका आश्रय देने वाली मधुरा और भूदावन की गतियाँ हुईं, उनका निवास स्थान ठाकुर द्वारा हुआ, उनका भाजन भगवान का प्रसाद और पान चरयासुन हुआ। जिस प्रकार महामा तुलसीदास ने राम काव्य की सृष्टि की और राम प्रेम की धारा को प्रवाहित किया उसी प्रकार सुन्दरि कुँवरि बाई ने, जो एक बड़े राज घराने की महिला थीं राम भक्ति से प्रभावित होकर अपने काव्य रच।

जत्र है न जरी कछु मरी जाति कन्त बिन,  
 नेह निरमोही के न मन्त्र मानियत है ।  
 चन्दन चितैये धरै चाँदनी न चाही परै,  
 चढ़ा हू की ओट को चँदोषा तानियत है ॥

११

कहूँ मोती मोंग कहूँ बाजू चन्द मक्का करे,  
 कहूँ हार ककन हमेल टोंड टीक है ।  
 ऐसे कै प्रिसारी स्याम ऐसी बैस ऐसी बाम,  
 पिहकि पपीहा की भी बार बार पा कहै ॥  
 'सेख' प्यारे भाजु कालि बाल बाल देखौ आइ,  
 छिन छिन जैसी तन-छीजन की छीक है ।  
 सेज मैन-सारा सी है सारी हूँ प्रिसारी सी है,  
 बिरह बिलाति जाति तारे की सी लीक है ॥

१२

नेह सों निहारै नाहु नेकु आगे कीने बाहु,  
 छोड़ियो छुधत नारि नाहियो करति है ।  
 प्रीतम के पानि पेटि आपनी मुनै सकेलि,  
 घरकि सजुधि हियो गाढो कै घरति है ॥  
 'सेख' कहि आधे बैना बोलि करि नीचे नैना,  
 हा करि मोहन के मनहि हरति है ।

रानी रामप्रिया ने भी राम-भक्ति की रचनायें कीं । इस से यह प्रगट होता है कि पुरुषों के साथ साथ स्त्रिया भी साहित्यिक दृष्टि से अपना विकास करती गईं यह बात दूसरी है कि कारण वन और समय के प्रभाव से उनकी रचनाओं का प्रचार नहीं हुआ और उनकी कृतियों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया ।

अन शृंगार रस में ही लीजिए । कहा जाता है कि स्त्रियों स्वभावतः लज्जागील होती हैं, ठीक भी हैं परन्तु हिन्दी में जन विहारी देव, सतिराम, पदमाकर और गाल आदि कवियों ने शृंगारिक रचनायें कीं तब उनकी कृतियों का प्रभाव स्त्रियों पर पड़ना अनिवार्य था । फलतः सेन, प्रवीणराय, चंपादे आदि स्त्रियों ने भी उत्कृष्ट शृंगार-रस की रचनायें रचीं । शेख के छंद हिन्दी के अछड़े से अछड़े शृंगारी-कवियों की रचनाओं से दफर ले सकते हैं ; हाँ यह बात अचूक है कि पुरुष कवियों से स्त्री-कवियों की संख्या कम है । इसका कारण स्त्रियों की स्वभाविक लज्जा और मर्यादा की सीमा का संरक्षण भी हो सकता है ।

नीति से काव्यों के लिखने में जिस प्रकार गिरिधर कविराय, वृन्द आदि कवियों ने रचना-चातुर्य-चमत्कार दिखलाया है उसी प्रकार साई, छत्रकुंवरि बाई आदि ने नीति-काव्य की सुन्दर रचनाओं से हिन्दी का भांडार भरा है । वीर-काव्य लिखने में जिस प्रकार भूपण ने अपना नाम अमर किया है यद्यपि उस प्रकार की कोई उत्कृष्ट कवि स्त्रियों में दृष्टिगोचर नहीं होती परन्तु तो भी भीमा चारणी आदि स्त्रियों ने धोजस्विनी कवितायें लिखकर पुरुषों में वीरत्व का संचार किया है ।

१५

मानस को कहा बसि कीजतु है बावरी सु,  
 बासी सुरवास हू को बसि कै बसाऊँ री ।  
 सैनका का स्वामी कामकन्दला को कामो भोरि,  
 मैं हू को मानिनि को मन मोहि ह्वाऊँ री ॥  
 'सेरा' मनमोहन के मोहन के मन्त्र जन्त्र,  
 मोहि जे न आवैं से विधाता वै न पाऊँ री ।  
 आरतनि लेत हाथ बन्दा बन्द्यो आवे साथ,  
 नदिन को नीर नीर बलटि बहाऊँ री ॥

१६

खरी अनयात है है कीरियो न यात है है,  
 भौंकि भौंकि जात है है तेरु भये न्यारे हो ।  
 'सेरा' कहै वनही मिग्राह पठये हो पिय,  
 भौंकी दैन आये तुम दिये मुकि हारे हो ॥  
 बोलो ताहि सों हो सौँहैं जोरै कौन भौँहैं ऐसे,  
 पाँय परीं बाके जाके पाय पर बारे हो ।  
 प्यारी जहौ ताही सों जु राखरे सों प्यारे कहै,  
 आनु कालि राखरे परोमिन के प्यारे हो ॥

१७

ढीली ढीली हौं मरौ ढीली पाग दरि रही,  
 हरे से परत ऐसे कौन पर टहे हो ।

जगभग सौ वर्षों के हिन्दा में समस्या-पूर्तियों का बाहुल्य हुआ, अनेक काव्य-सम्बन्धी पत्र भी निकले। हिन्दा के अनेक कवियों ने समस्या-पूर्तियों की ओर पैर बढ़ाया। द्विवेददेव, पं० नाथूराम शंकर शर्मा, आनिका इत्त ग्यास राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' आदि ने इस क्षेत्र में अपना एक स्थान बना लिया। इसलिए उस समय छिपों पर भी समस्या-पूर्तियों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। बूढ़ी की श्री चन्द्रकला बाई ने इस बात में खूब नाम कमाया और पुष्पा के मुकामले में सुन्दर से सुन्दर समस्या-पूर्तियाँ करके कवि समाजों, कवि मंडलों से उपाधि, पदक और प्रशंसा-पत्र प्राप्त किये। उन्हीं दिनों में भीमती तोरन देवी शुक्ल 'छत्ती' भीमती रमा देवी, सु देला बाबा आदि भी समस्या-पूर्तियों और स्तुति-रचनाओं के द्वारा बराबरी हुई।

समय का प्रवाह आगे बढ़ा, मजभाषा का स्थान खड़ीबोली ने ले लिया। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ निकलीं। बितने ही मजभाषा में कविता करने वालों का मुकाब खड़ीबोली का भार हो गया। पचिहान नाथूराम शंकर शर्मा सनेही, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' खड़ीबोली में काव्य-रचना करने लगे। ऐसे घातावरण का प्रभाव छिपों पर भी पड़ा। भीमती तोरन देवी शुक्ल छत्ती श्री रमा देवी, सु देलाबाबा आदि खड़ीबोली में कविता करने लगीं। परिवर्तन किये रुचिकर नहीं। समय और आगे बढ़ा। शिक्षा का विस्तार हुआ। नवीन युग के लोगों ने देश-विदेश के साहित्य का अध्ययन किया। जो लोग खड़ीबोली में रचना करने वाले और मेरी थे उन

५

अतमन में अतमन नवल गुरुजन रग अपार ।  
 व्यो डारन सों डार त्यो डर हारन सों हार ॥  
 डर हारन सों हार अलक अलकन लपटानी ।  
 नैन नैन नैनान सुगल की अकथ कहानी ॥  
 प्रेम सिधु छिल लनचि लहरि इत अति सरसानी ।  
 कुँवरि सकुचि सतराय किमकि ठिग सपिन बुलाना ॥

६

प्यारी छवि मतारन लखि नव नागरी मुमुकाय ।  
 विषम प्रेम दृग गति छकी इक टक रही चिताय ॥  
 इक टक रही चिताय अमल अनउतरन छाकी ।  
 इव चितवन मनुषान भरी इत प्रेमहिं पाकी ॥  
 जुरन घुरन पुनि दुरन मुरन लोचन अनियारे ।  
 भवनागति डर मैन, धान लागि फुट दुसारे ॥

७

यह छनि लखि लखि रीभि कै प्रेम पूर ककदाय ।  
 कदव नई कहुँ दूर सों हंसिके दुहुन मुनाय ॥  
 हंसिके दुहुन मुनाय कहत मिथि मिलन मिलाई ।  
 द्रम बेलिन के मेल, फूल अति छल छनि छाई ॥  
 यह सुनि नव नागरिजु, मिया मुख लखि मुसुकाई ।  
 कहत भई हंसि बहि जु अहा मोहन की पाई ॥



पर पाश्चात्य और बङ्गाली कवियों की रचनाओं का प्रभाव पड़ा। फलतः छायावाद और रहस्यवाद की रचनाओं का प्रादुर्भाव हुआ। श्री सुमित्रानन्दन पन्त, श्रीजयशंकर 'प्रसाद' और श्री निराला आदि कवियों ने इस पथ का संचालन किया। इसका प्रभाव शिचित स्त्रियों पर भी पड़ा। इस प्रकार की काव्य-रचना करने वालियों में श्रीमती महादेवी पर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कितनी ही अन्य नवयुवतियाँ इस पथ पर अग्रसर हो रही हैं और भविष्य में उनसे विशेष आशा भी है।

देश इस समय स्वतंत्रता के लिए आगे बढ़ रहा है। कितने ही कवियों ने देश-भक्तिपूर्ण रचना लिखकर समाज को जागृत करने में सहायता प्रदान की और राष्ट्रीय साहित्य का प्रादुर्भाव किया है। श्री 'सनेही' पं० माधव सुक्ल, शंकर जी, हरिश्रीधरजी आदि ने सफल और देश-प्रेम से पूर्ण कवितायें लिखीं। स्त्रियों पर भी ऐसे वातावरण का प्रभाव पूर्ण रूप से पड़ा। श्री बुंदेलानाला, श्रीराज देवी, श्रीमती तोरन देवी शुक्ल 'लली' और श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने देश-भक्ति पूर्ण बड़ी सुन्दर और उत्कृष्ट रचनायें रची हैं और पुरुष कवियों के साथ साथ इन स्त्री-कवियों का भी नाम आदर के साथ लिया जाता है।

उक्त विचारों से यह साफ प्रगट है कि पुरुष-कवियों के साथ स्त्री कवियों ने भी हिन्दी-साहित्य की उन्नति में अच्छा सहयोग दिया है और इनकी रचनायें आदर की पात्र हैं। प्राचीन स्त्री-कवियों पर

## स्त्री-वरि रामुनी

फलकि रह्यो मन रूप म, दया न हो चित भग ॥  
र मन तू निरसत रहा, है तू बडा कठार ।  
सुख म्याम सरूप जिन, क्या जीवत निम भार ॥  
न्या कुँवरि या जगत ॥ नहीं रह्यो धिर काय ।  
जैमा रास सगाय का तैमा यह जग हाय ॥  
नाम लाक नौ रगड न, गिण जान सब हर ।  
न्या काल परचड है मारै मन ना घर ॥  
छाहा प्रियय त्रिकार का राग नाम चितलाय ।  
न्या कुँवरि या जगत म गया काल बिताय ॥  
जिन रमना जिन माल कर अंतर मुमिगन हाय ।  
दया न्या गुरुन का गिरला जानै काय ॥  
बडा मर यापन मरुत न्या मनिका म डार ।  
धिरचर का पता म न्या न दूजा थार ॥  
चरनदाम गुरुद न, जाना कृपा अपार ।  
दया कुँवरि पर न्या करि दिया छान निज मार ॥  
पिय का रूप अनूप लगि काटि भानु उँजियार ।  
दया मफल दुख मिटि गया, प्रगट भय । सुर-मार ॥  
गहा माह की नींद में, सोवत सन ममार ।  
दया जगी गुरु-दया सों, ज्ञान भानु उँजियार ॥  
प्रथम पैठि पाताल भँ, धमकि चढ़ै आकाश ।  
दया सुरति नटिनो यह, शोधि धरत निज रास ॥

इष्टिपात करने से एक खास बात यह भा दिखाई पड़ती है कि प्रायः जिन स्त्रियाँ ने कविताये लिखी हैं वे बड़े घराने की थीं, खासकर रानियाँ । उस समय माधुर्य्य भक्ति का प्रभाव रानियों और बड़े घराने की स्त्रियों पर अधिक पड़ा । सोराबाई से लेकर कीरति कुमारी तक, जो इस पुस्तक की कवियों में अंतिम कृष्ण-कान्ध लिखने वाली देवी हैं, प्रायः सभी रानियाँ हैं और कृष्ण प्रेम के रंग में रंगकर रचनाये की हैं । रानियों पर इसका क्यों प्रभाव पड़ा, इसके अनेक कारण हो सकते हैं परन्तु उनमें एक उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी है । विशेषतः माधुर्य्य भक्ति की ओर प्रायः सुखा और सम्पन्न ही विशेष रूप से आकृष्ट हो भी सकते हैं ।

यह ठीक है कि पुरुष कवियों की अपेक्षा स्त्री-कवियों की संख्या बहुत न्यून है । परन्तु इस सम्बन्ध में खोप भी नहीं हुआ और न साहित्य के इस एक विशेष शङ्क की रक्षा करने और सचय करने की ओर प्रयत्न ही किया गया है । हिन्दी में अनेक समग्र ग्रंथ प्राचीन और अर्वाचीन हैं परन्तु किसी न स्त्रियों का रचनाओं को विशेष महत्व नहीं दिया । शिवमिह सरोज प्राधान्य समग्र है उसमें भी सूक्ष्म परिचय और कवियों की नामावली दी है । मिश्रबन्धुओं ने भी बड़े परिधम से मिश्रबन्धु विनोद में जिन जिन कवियों की स्तब्ध की है वह वास्तव में बड़ा उत्कृष्ट काम है और जा किया गया है नहीं बहुत है परन्तु स्त्रियों की रचनाओं के सम्बन्ध में विशेष ध्यान नहीं दिया गया है । हर्ी राजपूताने के मुप्रसिद्ध मुखी देवीप्रसाद जी ने वास्तव में इतिहास मधधी कुछ

जो जालिम होता है उससे बस नहीं चलता एक ।  
करने को वह जुल्म बहाने लेता दूँढ़ अनेक ॥

७

### धोबी और गधा

किसी एक धोबी ने कपड़े ले आने ले जाने को ।  
एक गधा पाला, पर उसको देता थोड़ा खाने को ॥  
एक बार धोबी कपड़े धो चला घाट से आता था ।  
कपड़ों से गद्दे को उसने बुरी तरह से लादा था ॥  
पड़ता था रास्ते में जंगल वहाँ लुटेरे दीख पड़े ।  
डर से होश उड़े धोबी के और रोगटे हुए खड़े ॥  
कहा गधे से, “अब, भाग चल, देख, लुटेरे आवेंगे ।  
मारे पीटेंगे मुझको वे तुम्हे छीन ले जावेंगे ॥”  
कहा गधे ने धोबी से तब “मुझे छीन वे क्या लेंगे ?”  
धोबी बोला, “बड़ी बड़ी गठरी तुझ पर वे लादेंगे ॥”  
कहा गधे ने, “दया करो मत उनसे मुझे बचाने की ।  
नहीं नेक भी चिन्ता मुझको उनसे पकड़े जाने की ॥”  
“मेरे लिये एकसा ही है, जहाँ कहीं भी जाऊँगा ।  
वहीं लदेगा वोम बहुत, और थोड़ा भोजन पाऊँगा ॥  
“मुझे आपके पास अधिक कुछ भी सुख की आशा होती ।  
संग तुम्हारे तो अवश्य रहने की अभिलाषा होती ॥”

गवेषणा की हैं जो उनके इतिहास सन्ध्या विद्वत्ता को प्रगट करती हैं । हमलिये हिन्दी में एक ऐसे समग्र की विशेष आवश्यकता प्रतीत हो रही थी जिसमें केवल स्त्री-कवियों की ही रचना संग्रहीत होतीं और उनके संग्रह में अध्ययन की सामग्री एक ही पुस्तक में एकत्रित की जाती । अतः ।

इस प्रकार की पुस्तक की आवश्यकता का अनुभव करके ही हमने इस पुस्तक के लिखने का प्रयत्न किया है । इस पुस्तक में स्त्री-कवियों की जीवनी और उनकी चुनी हुई कवितायें एकत्रित की गई हैं । पुस्तक के अंत में कुछ नवोदित स्त्री कवियों की रचनाओं का एक एक नमूना भी दिया गया है । परिशिष्ट में संग्रहीत कविताओं में आये हुए कठिन शब्दों का अर्थ तथा अंतर्गत कथायें भी लिख दी गई हैं ।

यहाँ हम अपने उन मित्रों, सहयोगियों तथा उन महिलाओं को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते जिनकी कृपा से यह पुस्तक तैयार हुई है । पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय, पं० कृष्ण बिहारी मिश्र, स्वर्गीय गोविन्द गिरला भाई, राव रामनाथ सिंह ( बुँदी ) तथा काशी, रीवा के मित्रों के हम हृदय से कृतज्ञ हैं । स्वर्गीय मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ के हम बहुत कृतज्ञ हैं जिनकी 'महिलामृदुवाणी' आदि पुस्तकों से हमें विशेष सहायता मिली है । खासकर हम अपने आदरणीय मित्र पं० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' एम० ए० के विशेष ऋणी हैं जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर हिन्दी में स्त्री कवियों के काव्यों पर समालोचनात्मक और ऐतिहासिक विवेचन द्वारा इस पुस्तक का स्थायित्व बढ़ा दिया ।

सारांश रूप में कवि और कविता दोनों का खासा अच्छा परिचायक है, नीचे उद्धृत करते हैं ।

“I have read today your very beautiful poem 'मेरा नया बचपन' in the Madhuri. There are lines in the poem which betray a heart behind them almost capable of an emotional abandon without which no genuine poetry is ever possible.”

साक्ष्य यह कि मैं ने 'माधुरी' में आपकी 'मेरा नया बचपन' शीर्षक अत्यन्त सुन्दर कविता पढ़ी । उसमें कुछ पंक्तियाँ ऐसी हैं, जिनसे उनके पीछे छिपे हुये हृदय की भावुक मस्ती प्रगट हो जाती है जिसके बिना वास्तविक कवित्व असम्भव है ।

सुभद्राकुमारी जी अत्यन्त सुशील हैं । आपका स्वभाव बहुत नम्र और मिलनसार है । देश और साहित्य को अभी आपसे अनेक आशाएँ हैं । आपके एक पुत्र और एक कन्या है । आज कल आपकी कविता के यही नये विषय हैं ।

आपकी कविताओं का एक संग्रह 'सुकुल' के नाम से छप चुका है । हम यहाँ आप की कुछ सुनी हुई कविताएँ उद्धृत करते हैं :—

१

जालियोंवाला बाग़ में वसन्त

यहाँ कोकिला नहीं काक हैं शोर मचाते ।

काले काले कीट भ्रमर का भ्रम उपजाते ॥

इस पुस्तक को लिखने में हमने इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा है कि सभी स्त्री कवि चाहे वे प्राचीन हों अथवा अर्वाचीन, छोटी हों या बड़ी सभी की कोई न कोई रचना नमूने के रूप में अवश्य दी जाय। परन्तु जिन महिलाओं और स्त्री कवियों की रचना का उल्लेख पुस्तक में हमारी अनभिज्ञता वश न हुआ हो या वे कृपया हमें जमा करके सूचित कर दें जिस से भविष्य में सुधार कर दिया जाय।

पुस्तक में नूटिया अनेक होंगी। क्योंकि हम सर्वज्ञ होने का दावा नहीं करते। इसलिए जो सज्जन इसकी नूटियों के सम्बन्ध में सूचित करेंगे उनके हम कृतज्ञ होंगे। हमने यथा साध्य स्त्री कवियों के चित्रों का दृन का भी प्रयत्न किया है, बहुत से चित्र अभी तक हमें मिले भी नहीं। इसलिये हमारा विचार है कि इस पुस्तक का दूसरा संस्करण मैत्र की दृष्टि से और भी विशिष्ट रूप में निकाला जाय। हिन्दी प्रेमियों ने यदि इस पुस्तक को अपनाया और हमें प्रोत्साहित किया तो हम और भा अनेक नई और उपयोगी चीजें भेट करने का प्रयत्न करेंगे।

भारत काव्यमाला,  
लीडर प्रेस, प्रयाग  
२०-२ ३१

}

विनीत

ज्योतिषसाद मिश्र 'निर्मल'

सुन्दर घर-आभूषण सज्जित देस चकित हो जाती है ।  
 सच है था केवल सपना है, कहती है रुक जाती है ॥  
 पर सुन्दर लगती है, इच्छा यह होती है कर ले प्यार ।  
 प्यारे घर-खों पर धनि जाये करले मन भर के मनुहार ॥  
 इच्छा प्रजल हुई, माता के पास दौड़ कर जाती है ।  
 वस्त्रों को सँवारती उसको आभूषण पहनाती है ॥  
 रमो भोंति आश्चर्य मोदमय आज मुझे निम्नकाता है ।  
 मन में उमड़ा हुआ मय धम मुँह तक आ रुक जाता है ॥  
 प्रेमो-मत्ता होकर तेरे पास दौड़ आती हूँ मैं ।  
 तुझे मजाने या मैं-वारने में ही सुख पाती हूँ मैं ॥  
 तेरी इस महानगा में क्या होगा मूल्य सजाने का ।  
 तरी मय मूर्ति का नकली आभूषण पहनाने का ॥  
 कि-तु क्या हुआ माता मैं भी तो हूँ तेरी ही सत्तान ।  
 इसमें ही सतोय मुझे है इसमें ही आनन्द महान ॥  
 मुममी एक एक की वन तू तीसकाटि की आन हुई ।  
 इस महान सभी भाषाओं की तू ही सिरसाज हुई ॥  
 मेरे लिए बड़े गौरव की और गर्व की है यह बात ।  
 तेरे ही द्वारा होगा बस भारत में स्वातंत्र्य प्रभाव ॥  
 असहयोग पर मर मिट जाना यह जीवन तेरा होगा ।  
 हम होंगे स्वाधीन विश्व का बैभव-धन तेरा होगा ॥



## परिचय

हिन्दी संसार में अब तक न मालूम कितने गद्य और पद्य के सम्पादित संग्रह-ग्रंथ निकल चुके हैं, पर अभी तक कोई ग्रंथ ऐसा नहीं प्रकाशित हुआ जिसमें केवल स्त्री-कवियों के काव्य को ही एकत्रित किया गया होता। इस उपेक्षा का कारण या तो यह हो सकता है कि यह कार्य स्त्रियों ने सम्बन्ध रखना था, अथवा स्त्री-रचित काव्य इतना अधिक और उच्च श्रेणी का नहीं समझा गया जिसमें उसको स्वतन्त्र स्थान दिया जाता। जो कुछ भी हो, तात्पर्य केवल इतना ही है कि जैसा कुछ भी काव्य था—अच्छा या घुरा, थोड़ा या बहुत—उसका एक स्वतन्त्र संग्रह निकलना नितान्त आवश्यक था। परन्तु प्रत्येक कार्य का होना अनुकूल अवसर पर ही अवलंबित रहता है। अतः कदाचित इस प्रकार का ग्रंथ अनुकूल समय की ही प्रतीक्षा में अब तक रुका हुआ था।

आज मुझे यह देख कर अत्यन्त हर्ष है कि वह समय आ गया जब “स्त्री-कवि-कौमुदी” को हिन्दी-संसार के सामने आने का सौभाग्य मिला है। स्त्री-कवियों के काव्य का यह ग्रंथ अपने ढंग का अकेला है। यह बिल्कुल ही नवीन ग्रंथ है, जिसने हिन्दी साहित्य की भारी कमी की पूर्ति की है। प्राचीनकाल से लेकर अब तक हिन्दी काव्य-गगन में न मालूम कितनी स्त्री-कवियों ने विचरण करके अपनी प्रतिभा से इसे आलो-

बहुत बड़ी आशा से आई हूँ मत कर तू मुझे निराश ।  
एक बार, वस एक बार तू जाने दे प्रियतम के पास ॥

९

### फूल के प्रति

डाल पर के मुरझाये फूल । हृदय मे मत कर वृथा गुमान ।  
नहीं है सुमन-कुञ्ज में अभी इसीसे है तेरा सम्मान ॥  
मधुप जो करते अनुनय विनय बने तेरे चरणों के दास ।  
नई कलियों को खिलती देख नहीं आवेंगे तेरे पास ॥  
सहेगा कैसे वह अपमान उठेगी वृथा हृदय मे शूल ।  
मुलावा है मत करना गर्व डाल पर के मुरझाये फूल ॥

१०

### ठुकरा दो या प्यार करो

देव ! तुम्हारे कई उपासक कई ढंग से आते हैं ।  
सेवा मे बहुमूल्य भेंट वे कई रत्न के लाते हैं ॥  
धूम-धाम से साज-वाज से वे मन्दिर मे आते हैं ।  
सुक्ता भण्डि बहुमूल्य वस्तु वे लाकर तुम्हे चढ़ाते हैं ॥  
मैं ही हूँ गरीबिनी ऐसी जो कुछ साथ नहीं लाई ।  
फिर भी साइस कर मन्दिर में पूजा करने को आई ॥  
धूप-दीप नैवेद्य नहीं है माँकी का शृंगार नहीं ।  
हाय ! गले मे पहनाने को । फूलों का भी हार नहीं ॥

किन किया, इसका कम-बद्ध और विस्तृत इतिहास हमारे पास अब तक कोई नहीं था। हिन्दी-साहित्य के भिन्न भिन्न कालों में कितनी खी कवि हुईं, और किस श्रेणी की उनकी रचनाएँ हुईं, इसका भी पूर्ण परिचय बहुत कम लोगों को था, क्योंकि उनके काव्य का तुलनात्मक समालोचना एक स्थान पर कहीं भी देखने को नहीं मिलती थी। यद्यपि 'कविता कौमुदी' में कुछ प्राचीन और वर्तमान खी-कवियों का परिचय दिया गया है पर वह इनके गौण रूप में है कि खी-रचित काव्य का वास्तविक मूल्य उससे कुछ मालूम नहीं होता। उसमें न हम विस्तृत जीवनाद्वा शाने हैं और न कवियों के काव्य की सम्यक समालोचना है। यद्यपि "खी-कवि-कौमुदी" इस दृष्टि में बहुत ही अनूद्य प्रथ है, क्योंकि जिन प्रश्नों के समझने में हमें थग थग पर धापसियों का सामना करना पड़ता था, इसकी स्थायी 'कौमुदी' में वह सब सरल हो जायेंगे। प्रस्तुत प्रथ का अध्याय १० ज्यातिप्रसाद जी मिश्र 'निर्मल को है वास्तव में धापका यह प्रथम सगहनीय है। निर्मल जी ने परिभ्रम और माग्यताएँ एक इस प्रथको तयार किया है तथा अधिकांश रूप में इसको उपयोगी बनान का प्रयत्न किया है। प्राचीन और धाधुनिक काल की जिन जिन खी-कवियों के विषय में आप पता खगा सक हैं, उन सभा क काव्य को धापने वड़ा शोज और परिभ्रम के साथ एकत्रित किया है। इस प्रकार जिन खी कवियों के नाम तथा रचनाएँ हमें अन्य कहीं नहीं मिलता थीं, इसमें समशीत की हुई पाई जाता हैं। इससे प्रथ का मूल्य और भी वढ़ गया है। प्रत्येक खी-कवि का जीवनी उसके काव्य की

गए तब से कितने युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण,  
 नहीं पर मैंने पाया सीख, तुम्हारा सा मनमोहन गान ।  
 नहीं अब गाया जाता देव ! यकी अँगुली हैं ढीले तार,  
 विश्ववीणा में अपनी आज, मिला लो यह अस्फुट मङ्गार !

२

अतिथि से—

बनवाला के गीतो सा निर्जन बिखरा है मधुमास,  
 इन कुञ्जों में खोज रहा है सूता कोना मन्द बत्तास ।  
 नीरव नभ के नयनों पर हिलती हैं रजनी की अलकें,  
 जाने किसका पंथ देखतीं बिछकर फूलों की पलकें ।  
 मधुर चोंदनी धो जाती है खाली कलियों के प्याले,  
 बिखरे से हैं तार आज मेरी वीणा के मतवाले ।  
 पहली सी मङ्गार नहीं है और नहीं वह मादक राग,  
 अतिथि किन्तु सुनते जाओ टूटे तारों का करुण विहाग !

३

कौन ?

डुलकते औंसू सा सुकुमार बिखरते सपनों सा अज्ञात,  
 चुराकर ऊषा का सिन्दूर सुसुराया जब मेरा प्रात ।  
 छिपाकर लाली मे चुपचाप सुनहला प्याला लाया कौन ?  
 हँस उठे छूकर टूटे तार प्राण में मँडराया वन्माद ।

सम्यक समालोचना और साथ ही कुछ चुनी हुई कविताओं को भी उद्धृत किया गया है जिससे ग्रंथ बड़ा रोचक बन गया है। साथ ही यह भी दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि हिन्दी-साहित्य के जिस युग में जो भाव, जो भाषा और जो शैली प्रधान रही, प्रायः उसी भाव से प्रभावित होकर उसी युग की प्रचलित काव्य, भाषा और शैली में स्त्रियों ने भी अपना काव्य रचा। इसलिए चिरकाल तक उनके काव्य का विषय भी धार्मिक ही रहा और उसमें भी राम और कृष्ण की भक्ति ही प्रधान रही। वर्तमान काल में जैसे जैसे काव्य के विषय, उसकी भाषा और शैली में परिवर्तन हुआ स्त्रियों के काव्य की गति भी उसी ओर मुड़ गई जो आज कल की स्त्री-कवियों की रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यह प्रभाव यहाँ तक पटा है कि वर्तमान स्त्री-कवियों में से कुछ कवियों ने तो अपने काव्य को 'छायावाद' में ही डुबा रखा है। मारांश यह कि प्रायः साहित्य के प्रत्येक युग में स्त्रियों ने साहित्य-क्षेत्र में अपना कौशल और प्रतिभा दिखलाने का प्रयत्न किया है और इसी से प्रत्येक युग की छाप उनके काव्य पर लगी दिखाई देती है। पुस्तक-प्रणेत्या ने उन कवियों की रचनाओं का भी रसास्वादन कराया है जो अभी काव्य के शैशवकाल में ही विचरण कर रही हैं और इसलिये जिनकी प्रतिभा और कवित्व-शक्ति का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। उनके काव्य को देख कर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनमें से कई कवि ऐसी हैं जिनमें प्रतिभा, कल्पना-शक्ति और कवित्व-शक्ति पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है, और वह उत्तम

बहुत दुखिया हूँ हे भगवान, हमे मत दो अब जीवन-दान ।  
स्वप्नमय ही रहने दो प्राण, यही है मेरी प्रिय निर्वाण ॥

—कुमारी कमला जी, काशी

२०

### विजयादशमी

आई है यह आज आर्य्य तिथि विजयादशमी ।  
किन्तु हो रही राम ! आर्य्य भावों की भस्मी ॥  
लंक-विजय का यदपि सुभग सदेश सुनाती ।  
वीर वर्ग के हृदय छदय वत्साह कराती ॥  
राघव ने इस दिवस दुष्ट दानव दल जीता ।  
मुनी जनों का पथ किया विघ्नो से रोता ॥  
जननि जाति की सत्य धर्म की रक्षा की थी ।  
गो द्विज के हित प्रवल प्रचण्ड प्रतिज्ञा ली थी ॥  
फेवट शवरी आदि अष्टौ को अपनाया ।  
वन के वानर ऋक्ष जाति को मित्र बनाया ॥  
आर्य्य-सभ्यता विजित विदेशों में फैलाई ।  
भारु-प्रेम पितु भक्ति जगज्जन को सिखलाई ॥  
आर्य्य, देवियों आज अरक्षित दिखलाती हैं ।  
पग पग पर वे रोज प्रचुर पीड़ा पाती हैं ॥  
त्य। हो रहा नष्ट सुरभि जीवन खोती हैं ।  
अमित आर्य्य संतान काल-कवलित होती हैं ॥

श्रेणी की कवि हो सकती हैं यदि उनको प्रोत्साहन दिया जाय । यद्यपि उनकी कुछ कवितायें साधारण श्रेणी की भी हैं परन्तु ऐसी कविताओं की भी कमी नहीं है जो काव्य के गुणों से सब प्रकार से विभूषित हैं और काव्य का कसौटी पर कसने से उत्तम श्रेणी में आ सकती हैं । पुस्तक के प्रारम्भ में “हिन्दी में स्त्रियों का काव्य साहित्य” शीर्षक विवेचनात्मक लेख से ग्रन्थ की उपयोगिता दृढ़ी बढ़ गई है ।

मुझे आशा है कि ‘स्त्री-कवि कौमुदी’ को हिन्दी प्रमी सप्रैम धनार्पणेंगे और इसको समुचित धादर देंगे । साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है, क्योंकि इसके द्वारा लेखक ने केवल स्त्री कवियों का प्रति ही सहानुभूति नहीं दिलाई है, बल्कि हिन्दी-साहित्य के विचारे हुए शर्तों का भी एकत्रित कर सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है ।

हिन्दी विभाग  
प्रयाग विश्व विद्यालय  
१२ ३ ३९

}

चन्द्रावती त्रिपाठी एम० ए०  
( हिन्दी प्रोफ़ेसर )

---

हिन्दी में

स्त्रियों का काव्य-साहित्य

---



श्रेणी की कवि हो सकती हैं यदि उनको प्रोत्साहन दिया जाय । यद्यपि उनकी कुछ कवितामें साधारण श्रेणी की भी हैं, परन्तु श्रेणी कविताओं की भी कभी नहीं है जो काव्य के गुणों से सब प्रकार से विभूषित हैं और काव्य की कसौटी पर कनने से उत्तम श्रेणी में आ सकती हैं । पुस्तक के प्रारम्भ में 'हिन्दी में स्त्रियों का काव्य साहित्य' शीर्षक विवेचनात्मक लेख से ग्रन्थ का उपयोगिता कृती बढ़ गई है ।

मुझे धारणा है कि 'आ-कलि-कौमुदा' को हिन्दी प्रेमा सम्रेम धनपायेंगे और इसको समुचित यादर देंगे । साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत हा उपयोगी है, क्योंकि इसके द्वारा लेखक ने केवल स्त्री कवियों क प्रति हा सहानुभूति नहीं दिखाई है, बल्कि हिन्दी-साहित्य के विखर हुए रत्नों का भी एकत्रित कर सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है ।

हिन्दी विभ ।  
प्रपाग विरव वि०, लय  
१५ १ ३१

}

चन्द्रावती त्रिपाठी एम० ए०  
( हिन्दी प्रोफेसर )

---

हिन्दी में

स्त्रियों का काव्य-साहित्य

---

काल या आधुनिक काल, इस कला-काल का अनुगामी होकर गद्य-साहित्य का प्रचुर उत्पत्ति करता हुआ आज तक चल रहा है ।

उक्त तीन कालों में हिन्दी साहित्य की जो रचना हुई है और उसमें काव्य को जो विशाल यशस्विका निर्मित हुई है उसे यदि हम तनिक सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो उसके दो खंड दिखलाई पड़ते हैं । एक खंड का तो हम पुरर-काव्य ( पुरर कवियों के द्वारा रचा गया काव्य ) कह सकते हैं और दूसरे को नवी काव्य । प्रथम का ओर तो हमारे कतिपय विद्वानों ने अपना विचार-मूल दृष्टि दाखी है किन्तु द्वितीय खंड का ओर किमी ने भी विशेष ध्यान नहीं दिया । इसीलिये इस खंड की आलोचना पर्यालोचना आदि अद्य तक सुचारु रूप से नहीं हो सका । हम कहने में काई आशुक्ति न होगी कि नवी-साहित्य को सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित रूप से उस पर विवेचनात्मक प्रकाश डालते हुए किमी ने हिन्दी-मसाल के सम्मुख उपस्थित नहीं किया कि जिससे नवी-समाज और पुरर समाज दोनों इस एक विशेष अंग का ही समावलोकन और पूर्ण अध्ययन कर सकते । प्रस्तुत ग्रन्थ ही इस उद्देश से रचा जाकर उक्त न्यूनता की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है ।

संस्कृत साहित्य का इतिहास यह प्रगट करता है कि संस्कृत में कई ऐसा दक्षिण हुई हैं जिन्होंने विविध विषयों पर ग्रन्थों का रचना करके संस्कृत-साहित्य का गौरवाम्बित किया है । साहित्य-सेवी श्रीमती श्रीजावता ( श्रीजावती नामक बीजगणित ग्रन्थ की रचने वाली ) विकट नितम्बा देवी ( उक्त काव्य रचने वाली ) कवयित्री आदि के

नामों से अवश्य ही परिचित होंगे । अतः इस संबंध में विशेष न कह कर हम केवल यह ही दिखलाना चाहते हैं कि हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से ही स्त्रियों ने साहित्य के क्षेत्र में कार्य करना प्रारंभ किया है और अब तक करती आई हैं । सस्कृत-साहित्य के पश्चात् प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के साहित्यों में भी स्त्रियों ने न्यूनाधिक रूप में सहयोग दिया है । इसके पश्चात् जब से हिन्दी-साहित्य का विकास प्रारंभ हुआ उन्होंने इसके क्षेत्र में भी परियाप्त सफलता और सराहनीय सुयोग्यता से रचना-कार्य किया है । हम यहाँ उनके इसी कार्य (साहित्य-रचना-काल) के ऐतिहासिक विकास का सूक्ष्म वर्णन करते हैं ।

हिन्दी के 'जय-काव्य' की रचना में जहाँ तक हिन्दी-साहित्य का इतिहास और विद्वानों का अन्वेषण चलता है, स्त्रियों ने कोई भी भाग नहीं लिया । 'जय-काव्य' के काल में देश और समाज जटिल राज-नीतिक परिस्थितियों के कारण अशांत और उद्ध्वस्त था । उस समय में केवल वैसे ही काव्य की रचना हो सकती थी जिनमें वीर रस की वह धारा उमड़ती हो जो प्रत्येक व्यक्ति की रग-रग में शौर्य-रक्त का प्रखर प्रवाह कर दे और वह देश की सत्ता-स्वातन्त्र्य तथा गौरव की रक्षा में अपना बलिदान करके देश और समाज का भाल जैँचा करे । ऐसे समय में और इस प्रकार के साहित्य की रचना के क्षेत्र में स्त्रियाँ कितना कार्य कर सकती हैं यह स्पष्ट ही है । युद्ध के समय में स्त्रियों का कर्तव्य बड़ा संकटापीर्ण हो जाता है । उन्हें अपनी लज्जा बचाते हुए अपने देश और समाज को भी विगर्हित एवं कलंक-पंक-पंकित होने से

यथाना पदता है और उनका अस्तित्व इस दश में ऐसा नहीं रहता कि वे साहित्य-रचना करें। यदि पुरुष अपने पुरुषत्व को त्याग कर कायरता के काने में बैठ विग्राम करें और दश तथा समाज की स्वातन्त्र्य सौख्य की ध्वजेलना करके युद्ध से उभन हों और कवि लोग अपने बार कदमों से उन मृत प्राय शरारा में शौख्य-आनन से मृतगामा रक्त का प्रवाहन न करें तो अवश्यमेव दिनों का यह कर्तव्य होगा कि वे वीरता के साथ निकल कर वीरों के वापुस्त्व की तीव्र शब्दों में विगर्हणा करत हुए वारता के कड़वे गाँवें और समरागण में चढा-नृत्य करें। जिस समय का हम उल्लेख कर रहे हैं उस समय में यह दशा न थी। वीर राजपूत स्वयमेव देश प्राप्ति का रक्षा के लिए अपना रक्त बहा रहे थे। वीर कवि अपने भोज पूज काय से उन्हें प्रोत्साहित और उत्तजित करते हुए रणागण में वीर-जीवन के आदर्श का उपदेश दे रहे थे। अतः स्त्रियों के लिये यह आवश्यक न था कि वे वीर-काय गात हुए रणागण में आवें। उनका एक अनिवार्य कर्तव्य यहाँ रह गया था कि वे विजयश्री को दलकर प्रमोदामाद से वीर पुद्गलों की भारती उतारें या पराजय-कालिमा को देखकर शत्रुर्भा के घनाचार प्रारम्भ के पूर्व ही शहर आदि के शरार देश और समाज की क्षुब्धता की रक्षा करते हुए अपने पक्ष भौतिक पित्रर से प्राण-धनैरधों को निकाल कर स्वर्गाराहण करें और वहीं अपने वीर-प्राप्ति प्राप्त प्रियजनो से पुनर्मिलन प्राप्त करें। यहाँ मुख्य बात है कि जय-काव्य-काल में स्त्रियों ने साहित्य-रचना के क्षेत्र में कार्य नहीं किया।

भक्ति-काव्य-काल में देश और समाज शांत-सुख का अनुभव करने लगा था और धार्मिक आन्दोलन तथा भक्ति का प्रचार-प्रसार प्राचुर्य के साथ होने लगा था। यह एक स्पष्ट बात है कि धर्म की थास्था उसकी सत्ता और महत्ता का जितना भाव स्त्रियों के हृदयों में रहता है है उतना कदाचित् पुरुषों के नहीं। स्त्रियों का हृदय अत्यन्त कोमल, सरस और सरल होता है, उसमें रागात्मिका-वृत्तियों (feelings) का ही प्राचुर्य और प्राधान्य रहता है। बोध-वृत्ति साधारणतया स्त्रियों में उतने अच्छे रूप में नहीं मिलती जितनी वह पुरुषों में मिलती है। इसीलिये स्त्रियाँ भक्ति और प्रेम की और विशेष रूप से समारूढ और प्रवर्तित हो जाती हैं। इन दोनों का प्रभाव उनके जीवन पर मनुष्यों की अपेक्षा अधिक पड़ता है। भक्ति-काल में भक्ति-काव्य की रचना का जो प्रसार सूर और तुलसी जैसे महाकविराजों की कला-कौशल से तैयार हुआ उसकी छटा भारत-वर्ष पर ऐसी छहरी कि स्त्री-पुरुष सभी उससे प्रभावित हो गए। भक्ति-काव्य की सरिता दो मुख्य धाराओं में प्रवाहित हुई है। प्रथम है कृष्ण-भक्ति-धारा और दूसरी राम-भक्ति-धारा। प्रथम-धारा की काव्य-लहरी में संगीतात्मक-कलरव, भक्ति-भाव गाम्भीर्य, प्रेम-पीयूष-रस और काव्य-कजावली का सुखद-सौरभ पूर्ण विनोदकारी विलास का पावन प्रकाश था। द्वितीय धारा में जीवन-घटनाओं की जटिल भँवरें तो विशेष थीं किन्तु प्रथम धारा की सम्मोहक सामग्री उतने अच्छे रूप में उपस्थित न थी। इसीलिये भावुक कवियों, सरन हृदयों तथा मृदुल-मानस-शीला महिलाओं ने

प्रथम धारा को ही विशेष अपनाया है। निरकर्ष यह है कि हमारी कवियों ने विशेष रूप से कृष्ण-काल की हा रचित रचना की है। कृष्ण-काव्य की रचना-परम्परा उस वज्रभाषा में चला है जो मधुर, रम-पूर्ण, भाव-रम्य तथा कोमल कान्तिकती है और जो कवियों का प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है। कृष्ण-काल का संगीत-मत्त्व भी कवियों के लिए विशेष आकर्षक का कारण ठहरता है। कृष्ण-काव्य में कृष्ण का बाललीलाधरों ( जिन में वाष्पत्य भाव का ही प्रधानता रहता है ) तथा उनके पावन-काल की प्रेम लीलाधरों का ( जिन में शृङ्गारात्मक रीति भाव के माधुर्य सरसस्नेह के सौरभ और मनुज भावों के मादक का माधुर्य रहता है ) का ही वर्णन किया जाता है और इनके यह दोनों धरा का हृदय के मुख्य तत्व हैं। यह बात राम-काव्य में नहीं। इसी-लिए कवियों ने राम-काव्य की अपेक्षा कृष्ण-काव्य को ही अपने लिए उपयुक्त मान कर ग्रहण किया है। हाँ, कुछ कवियाँ ऐसी भी हैं कि जिन्होंने राम-काव्य के समिन्त आदर्श को देखने हुए अपने लिए उस अच्छा समझा और अपनाया है किन्तु इसकी सख्या उँगलियाँ पर हाँ गिनी जा सकता है। राम-काव्यकार पुरुषों की भी सख्या कृष्ण-काव्य कारों की अपेक्षा बहुत ही अधिक सखीय है। क्योंकि राम-काव्य कवियों के सरस हृदयों के प्रायः अनुपयुक्त ही ठहरता है।

अब यह स्पष्ट ही हो गया होगा कि भक्ति-काल से कवियों ने पुरुषों के साथ भक्ति-काव्य की रचना के क्षेत्र में कार्य करना प्रारम्भ किया और परियाप्त सफलता के साथ वे आगे बढ़ती गईं। भक्ति-काव्य के केन्द्र

उन्होंने स्थानों में विशेष रूप से बने थे जो भगवान के लीला-धाम तथा पवित्र तीर्थ-स्थान थे। इन स्थानों में सभी हिन्दू मात्र भक्ति-भाव से प्रेरित होकर सदैव आया-जाया करते थे। स्त्रियाँ भी इन स्थानों में आतीं और भक्त कवियों के भक्ति-काव्यामृत से परिष्णित होकर भक्ति-काव्य की रचना करने के लिए उत्कण्ठित और उत्साहित होती थीं। महात्मा सूरदास आदि के जलित-पदों को सुनकर उन्हें हृदयंगम करते हुए अपने साथ ले जातीं और गाया करती थीं। कृष्ण-काव्य सच पूछिए तो देश के प्रत्येक घर को स्त्रियों के कलकंडों में रम-जम कर तथा उनकी रसनाओं से सस्वरित होकर गुंजायमान करता था और श्रव भी करता है। इसलिये इस काव्य से प्रभावित होना न केवल पुरुष-समाज के ही लिए अनिवार्य हुआ बरन् स्त्री-समाज के लिए भी वह स्वाभाविक सा हो गया।

भारत का इतिहास इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डालता कि मध्य-काल ( १५ वीं, १६ वीं, १७ वीं, १८ वीं शताब्दियों ) में स्त्री-शिक्षा का व्यवस्था-विधान देश में सुचारु रूप से प्रवर्तित न था। जहाँ तक जान पड़ता है कदाचित् स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था उस समय यहाँ यथोचित रूप में न थी। यह दूसरी बात है कि राव-राजाओं तथा कुछ धनी-मानी शिष्ट जनों के यहाँ स्त्री-शिक्षा का कुछ संचार या प्रचार रहा हो। साधारण रूप से स्त्री-समाज में शिक्षा का प्रचार न था। ऐसी दशा में यह थारा कदापि नहीं की जा सकती कि स्त्रियाँ काव्य-शास्त्र तथा छंद-शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके साहि-



त्यक्त परम्परा से पूर्ण परिचित होते हुए काव्य की रचना करने में समता और सफलता प्राप्त कर सकतीं। हीं वे स्त्रियाँ अवश्य अपवाद रूप में ध्या सक्ती हैं जिन्हें या तो यथोचित साहित्य की शिक्षा दी गई थी या जो साहित्यज्ञों अथवा सुयोग्य कविता के सपर्क का सौभाग्य प्राप्त कर सकती थीं। वस्तुतः प्रायः जितनी स्त्रियों ने इस काल में काव्य रचना की है वे बड़े घरों की ऐसी ही स्त्रियाँ थीं जिन्हें शिक्षा और सरसग दोनों या दोनों में से किसी एक की प्राप्ति का सौभाग्य मिला था। उनमें भी बहुत ही कम ऐसी स्त्रियाँ हैं जिन्होंने छन्द शास्त्र की नियम नियन्त्रित छन्दों में रचनायें की हों। प्रायः स्त्रियों ने पद-शैली में ही अपना काव्य लिखा है। क्योंकि प्रथम तो कृष्ण काव्य की यही शैली मुख्य और विशेष प्रचलित रहती है और दूसरे इसकी रचना छन्द रचना के समान अम-साध्य तथा कठिन नहीं है। जिन थोड़ी भी स्त्रियों ने छन्दारमक काव्य लिखा है उनमें भी यह बात दखा जाता है कि उन्होंने भी केवल वे ही छन्द लिए हैं जिनकी रचना सरल, साधारण और स्पष्ट है। इतना होते हुए भी स्त्रियाँ ने इस बात का सफ़ल प्रयत्न किया है कि वे उन सब प्रधान शैलियों में रचनायें करें जो उस समय के साहित्य क्षेत्र में महाकवियों के द्वारा प्रचलित की जाकर उपस्थित थीं।

भक्ति-काल के परचाएँ जब हिन्दी-क्षेत्र में कला-काल का उदय और विकास हुआ और अखण्ड प्रेमों की रचना परम्परा अवाध रूप से चलने लगी तब स्त्रियाँ पुरुषों के साथ न चला सकतीं और अपने रचना कार्य को स्थगित करने के लिए बाध्य हुई। शिक्षा के अभाव से वे

लक्षण-ग्रंथों की रचना करने में असमर्थ रहीं। हाँ, यद्य-तत्र पुरानी कृष्ण-काव्य-परम्परा के अनुसार थोड़ी-बहुत भक्ति-काव्य की रचना अवश्य करती रहीं। कला-काल के अवसान में कुछ स्त्रियों का ध्यान स्त्रियोचित स्वतंत्र साहित्य-विशेष की ओर गया और उन्होंने कला-काव्य के स्थान पर इस साहित्य की रचना का श्रीगणेश करते हुए इसके प्रचार का प्रयत्न किया। दो-एक स्त्रियों ने स्त्री-ममाजोपयोगी विषयों (जैसे सती-धर्म, पातिव्रत-धर्म, गृहिणी-धर्म आदि) पर सुन्दर रचनाएँ करके स्वतंत्र स्त्री-साहित्य की रचना का मार्ग खोला। किन्तु आधुनिक काल की परिवर्तित रचना-परम्परा के प्रबल चल-वेग ने इसे पूर्ण रूप से धमसर न होने दिया।

हिन्दी-साहित्य का आधुनिक काल गद्य प्रधान काल है। इसमें गद्य-साहित्य का ही प्राबल्य और प्रावल्य हुआ और हो रहा है। पद्य-साहित्य यद्यपि परिस्थिति-प्रभाव से परिवर्तित और रूपांतरित होता हुआ चल अवश्य रहा है किन्तु उसकी प्रगति में वह चल-वेग नहीं, उसका प्रचार भी उतना नहीं, और उसकी ओर जनता की अभिरुचि भी उतनी विशेष नहीं है। इस काल के प्रारम्भ में जब उन राज-दर-बारों में भी, जहाँ राजाओं से सम्मानित कवियों का अर्चन जमघट रहता था, पाश्चात्य प्रभाव से कवियों का आदर-सम्मान कम हो चला तब कवियों ने भिन्न भिन्न स्थानों में कवि-मण्डलों या कवि-समाजों की सृष्टि की। इनमें कवियों का सम्मेलन और काव्य-चर्चा के साथ ही साथ समस्या-पृथि का, जो एक कला के रूप में मानी गई है, अच्छा

आधुनिक कालान् हिन्दी-साहित्य के इतिहास का धवलोकन यह स्पष्ट करा देता है कि उस काल के प्रारम्भ से ही साहित्य-रचना के क्षेत्र में देश-पूर्व समाज का परिस्थिति का प्रभाव तथा पारम्पर्य सम्प्रदाय के सम्पर्क से एक बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। हम काल में गद्य का प्राधान्य जथा स्थापित हो गया कि उसके प्राबल्य एवं प्राचुर्य के सामने पद्य-रचना का प्रयोग निम्न ही शिथिल हो पड़ा गया। विविध विषयों में रचना करने का उत्साह न लेखकों और कवियों को साहित्य के भिन्न भिन्न अंगों का ध्यान मुका दिया। मजभाषा जो बहुत दिनों से न केवल काव्य का ही भाषा होकर प्रचलित चली आई थी वरन् साहित्याभिन गद्य-रचना की भी भाषा हो कर हिन्दी प्रदेश में सर्वमान्य और 'मातृ' हो रहा थी, अब केवल 'अव्यक्त' लक्ष्मी रूप में प्राचीन कालों का ही काव्य-रचना के लिए उपयुक्त ठहराई जाकर एक बहुत लक्ष्मी सामान्य सामान्य हो गई और लक्ष्मी ने अपना आतक सारे हिन्दी-प्रदेश में प्रचुर प्रभाव का साथ लाने हुए अपना अक्षय साम्राज्य स्थापित कर लिया। यद्यपि उसमें साहित्योचित आवश्यक समता और एकत्वता अद्यावधि अनुपस्थित है ता भी उसके उपयोग न केवल गद्य में अनिवार्य माना जाता है वरन् पद्य में भी इसके प्रयोग का महत्ता और सत्ता माना जाती है, यद्यपि लक्ष्मी का उपयोग अब मजभाषा के समान साहित्य के गद्य और पद्य दोनों अंगों की रचनाओं में प्रायः सभी लेखकों और कवियों का द्वारा किया जाता है। ऐसी दशा में न केवल पुराने-समाज को ही अपनी

आधुनिक काल में आकर फिर वे पुरुषों के साथ पूर्ववत् चलने लगी हैं। केवल कुछ ही ज़सी खियाँ हुई हैं जिन्होंने अपने समाज को सम्मुख रख कर खियाचित साहित्य की रचना करने का विचार करते हुए अपनी समाज के उपयुक्त विषयों पर लिखा है। ग़ेद है इन ववियों का अनुकाष करके हमारा दुमरी यहनों ने खी-साहित्य के स्वतंत्र रूप का निर्माण करना न जाने क्यों बख़्ता नहीं समझा और उस दूर ही रख दिया है। हमारा समझ से यदि हमारी यहमें इस ओर ध्यान दें और अपनी समाज क विषय स्वतंत्र तथा पृथक् साहित्य के निर्माण करने का प्रयत्न करें तो बहुत बख़्ता हो और याद हा दिनों में खी-साहित्य का सुन्दर आसाद बन कर तैयार हा जाय। इस काल में कतिपय सुयोग्य लेखकों न बाल-साहित्य के निर्माण का काव्य सुचारु रूप से सफ़लता क साथ आरम्भ कर दिया है। इसी प्रकार हमारी देवियों का बालिका और खलना-साहित्य के निर्माण का काव्य करना चाहिये।

आधुनिक काल में पुरुषों ने साहित्य के प्राय सभी अगों का उठा कर उसके भङार का भरना बड़ा सफ़लता से प्रारम्भ किया है। किन्तु अभी तक हमारी सुयोग्य महिलायें इस ओर उदात्तता ही दिखलाती हैं। खियों ने अब तक जा साहित्य बनाया है वह बहुत ही संकाय रूप में है। उससे साहित्य क केवल कुछ ही अगों की पूर्ति हाती हुई दिखलाई पड़ती है। नाटक काव्य-शास्त्र, आदि अन्य अग अब तक खियों ने उठाये ही नहीं। थोड़े दिनों से यह अवश्य देला जाता है कि खियों ने गद्य-काव्य (उपन्यास कहानी आदि) तथा आलाचना

समक रंग से कुछ गम्भीर विषयों पर निबंध आदि का लिखना प्रारंभ किया है किन्तु यह कार्य भी अभी बहुत अच्छे रूप में नहीं किया जा सका है। जो कुछ भी हो रहा है वह आशाप्रद और सराहनीय अवश्य है जिससे यह ज्ञात होता है कि यदि हमारी यहाँ ऐसे ही उत्साह, अध्यवसाय तथा ऐसे ही उमर से विचार पूर्ण साहित्य-निर्माण का कार्य करती चलेगी तो थोड़े ही दिनों में गौरव-पूर्ण सी-साहित्य तयार हो जायगा।

## रचना-विवेचन

किसी कवि के काव्य का पूर्ण विवेचन करना हँसी-खेल नहीं। इसके लिए यह नितात आवश्यक है कि उसके समस्त ग्रंथों का पूर्ण अध्ययन दिया जाय। इस ग्रंथ में जिन देवियों का विवरण दिया गया है उनकी केवल अत्यन्त मनोरम रचनायें ही चुन चुन कर रक्खी गई हैं और इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि उन सभी विषयों की सभी उत्तम रचनाओं के उदाहरण दे दिए जायँ जिन पर उन्होंने अपनी लेखनी उठाई है। अस्तु, इन्हीं रचनाओं को देख कर विवेचना के रूप में बहुत कुछ कहा जा सकता है।

स्वभावतः ही कवि के ऊपर उस के समाज, उस के पूर्व साहित्य, उसकी लोक-संस्कृति एवं अन्य देश और काल-संबंधी परिस्थितियों का प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता है और वह उनके ही अनुसार रचना करने के लिए एक प्रकार से बाध्य हो जाता है। कोई कोई महा-

कवि ऐसे भी होते हैं जो इन प्रभावों से प्रभावित होते हुए भी अपना एक स्वतंत्र मार्ग निर्धारित करके स्व उस पर चलते हुये जनता को भी उसी पर ले चलाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे ही महाकवियों के द्वारा साहित्य का परम्परा में नवीन विशेषतायें समुद्भूत हो जाती हैं और वे शैलियाँ विशेष यत्न कर दूसरा के लिये अनुकरणीय ठहरती हैं। हमारे देश में कियों सदा ही से पुरुष-समाज के ही प्रभावार्तक में रही हैं और उन्हीं के निदिष्ट किये हुए मार्गों पर बड़ी दृढ़ता के साथ चलती रही हैं। साहित्य-क्षेत्र में भा कियों ने ऐसा ही किया है। केवल कुछ ही ऐसी देवियों मिलती हैं जिन्होंने कुछ नवान् विशेषतायें अपने समाज को प्रकट करते हुए उपस्थित की हैं।

मीराबाई से ले कर भक्ति-काल में प्रायः जितनी भा महिलाओं ने रचना की है वे सब प्रायः एक ही सौचे में बसी हुईं हैं। सुर आदि अष्टछाप के महाकवियों ने भक्ति के प्रचार प्रसार के लिए जिस मधुर मजभाषा में संगीत-सुधा के साथ पद-रचना-शैली का प्रचार किया है उसी शैली को सर्वथापसुक्त मान कर मीराबाई वैसी भगवद्-भक्ति-परायणा देवियों ने भी अपनाया है और पद-शैली में ही भक्ति-काव्य की रचना की है।

जैसा हमें पुरुष कवियों की भाषा में प्रान्तीय प्रभाव परिलक्षित होते हैं वैसे ही इन देवियों की भी भाषा में प्रान्तीयता की पुष्टि पाई जाती है। जो महिलायें राजस्थान निवासिनी हैं उनमें राजस्थानी भाषा के रूप पाये जाते हैं। साहित्य प्रेमियों से यह विषय नहीं है

कि राजस्थान में मुख्यतया दो भाषायें प्रचलित थीं। एक तो वह जिसका उपयोग साहित्य-रचना में किया जाता था और जो व्रजभाषा का एक विशेष रूप था और जिसे पिगल की संज्ञा दी गई थी। दूसरी वह जो साधारण, सामान्य कोटि की व्यावहारिक भाषा थी और जिसे पिगल कहते थे। साधारण बोलचाल की भाषा प्रांतीय वैभिन्न्य से अपना अपना विशेष बोलचाल रखती हुई स्वभावतः ही प्रचलित थी। अब भी हम यदि राजस्थानी महिलाओं का कान्य देखें और उसकी भाषा पर ध्यान दें तो यह प्रगट होता है कि उन्होंने साहित्यिक भाषा को अपनी रचना में प्रधानता दी है। उनकी भाषा में जो राजस्थानी पुट है वह उनके लिए घम्य है क्योंकि स्त्रियाँ स्वभावतः ही उच्चकोटि की साहित्यिक भाषा से इतनी परिचित नहीं होतीं (जब तक वे ग्रथेष्ट रूप से सुशिक्षित और सुयोग्य न हों) कि उसका सर्वांग शुद्ध प्रयोग कर सकें। साधारण व्यावहारिक भाषा में परिचय-प्राप्त्य तथा प्रयोग-बाहुल्य से जो माधुर्य मिलता है वह भी उस बोली-का उपयोग करने में अच्छे समाकर्षण का काम देता है। कृष्ण-भक्ति विशेषतः बल्लभ-संप्रदाय-प्रचारित में चूंकि वात्सल्य भाव का प्राधान्य है इसीलिए उस भाव से पूर्ण रचनाओं में व्यावहारिक बोली का उपयोग और भी अधिक स्वाभाविक जंचता है। यही कारण है कि कृष्ण-भक्त कवियों ने भी अपनी साहित्यिक रचनाओं में व्यावहारिक भाषा की पुट ऐसी ही उपयुक्त स्थानों में अवश्य लगाई है।

मीरा के बहुत से पद ऐसे हैं जिनसे यही प्रगट होता है कि वह वास्तव्य भाव की अपेक्षा माधुर्य भाव को विशेष प्रधानता देती थी। छ मीरा की रचनाओं को हम दो कक्षाओं में विभक्त कर सकते हैं। एक तो पहले के रचनाएँ आती हैं जिनमें मजभाषा का सुन्दर रूप मिलता है। दूसरे के रचनाएँ हैं जिनमें राजस्थानी भाषा से मिश्रित मजभाषा मिलता है। साथ ही हम यदि भक्ति के विचार से देखें तो न केवल दृष्ट्य भक्ति ही इसकी रचनाओं में झहराती है बरन् राम भक्ति का भी छादी धारा कहीं कहीं मिलती है। समझ हो सकता है राम भक्ति का प्रभाव मीरा पर तुलसीदास के कारण ( जिनसे इनका परिचय था ) पड़ा हो।+ अब यदि विषय की धार हम देखें तो ऐसा काह मौखिक विशेषता नहीं मिलती जो विशेष उल्लेखनीय ठहरे। विशेष गृहार को ही लेकर मीरा ने बहुत से पद रचे हैं। उन पदों में हृदय की मर्मस्पर्शिता वेदना वियोगिता की अनुभूति और दिव की येनजा की कक्षा पसी लिली हुई मिलता है कि वह हृदयगम हुए बिना नहीं रहती। मीरा जगह जगह पर दीगनी हो कर अपने हृदयार्गारा का भाषा में अनुवाद करती है।

छ (मारावाड़ी) छन्द न० २२, २३, १६ २०, ११।

† , छन्द न० ६, ११ १४, १७ २६ २८ ३०।

‡ , छन्द न० २, ७, ६, आदि।

+ , छन्द न० १।



भी धनद्वय और सानुप्रासिक है। खनीरोखी का भी रूप इसके किसी किसी छंद में मिलता है।<sup>७</sup>

साहित्य-सर्वी यह जानते ही हैं कि जब मुसलमानों का राज्य भारत में स्थापित हो चुका तब उनका जीवन आमाद प्रमाद और विलासपूर्ण हो चला। उनके दरबारों में शृंगार-रस के काव्य का विशेष प्रचार हुआ। इसलिये शृंगार-रस के काव्य का प्रचार दरबार कवियों और बड़े नगरों की शिष्ट जनता में भी हो चला। एक ओर सा भक्ति भाव-पूर्ण साहित्य तैयार हो रहा था और दूसरी ओर दरबारी कवियों के द्वारा शृंगार-रस से परिप्लावित काव्य की सरस धारा से प्रमाणिक साहित्य बन रहा था। नगर और दरबार से सबंध रखने वाला या उनकी सपर्य-सीमा में आने वाली स्त्रियों पर भी इस शृंगार-काव्य की मोहिना था गई। शैव जैमी स्त्रियों ने इसीलिए प्रेम-पूर्ण मधुर शृंगार की झड़ी समा-सुपमा निखराई और बिखराई है। शैव बड़ा ही सहृदय और रसिक था। काव्य-कला-कौशल और वाक्चातुर्य भी उसमें ऐसा मनोमाहक था कि आलम जैने प्रेमी कवि भी उस पर मुग्ध हो कर बिक गए। शैव का भाषा प्रसाद पूरा सरल, सु-व्यवस्थित और मधुर है। कह नहीं सकते कि मजभाषा से इतना परिवर्तन इसका कैसा हो गया। समझ है कि आलम के सहयोग या सबंध का यह प्रभाव हो था कि रंगरेजिन होने के

कारण उसका सम्यन्ध व्रज-भाषा-परिचित अन्य रसिक कवियों से रहा हो ।

कहीं कहीं शेख ने प्रेम के उस रूप का भी चित्रण किया है जो फारसी-साहित्य में प्रधानता से मिलता है । मजनूँ और लैला स्वभावतः ही उसके मन में आदर्श प्रेमी और प्रेमिका के रूप में अंकित थी । छंद चारोक रयाली और नाज़ुक मिज़ाजी भी कहीं कहीं अच्छी मिलती है । उर्दू और फारसी में इसकी प्रधानता ही है । प्रेम की पीर भी इसके अन्दर बड़ी ही मर्मस्पर्शनी व्यजना के साथ पाई जाती है । कहीं कहीं तो ऐसा मालूम होता है कि मानों भुक्त-भोगी अपनी अनुभूति लिख रहा हो । वस्तुतः प्रेमात्मक काव्य का जैसा स्वभाविक वर्णन घनानन्द, वोधा और ठाकुर आदि में पाया जाता है वैसा ही यदि नहीं तो उस से कम भी नहीं शेख में पाया जाता । पाठक 'आलम-केलि' यदि देख सके हैं तो हमें यहाँ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है । अनुप्रास, यमक और दूसरे भावोत्कर्षक अलंकार भी इसकी रचना में अच्छे मिलते हैं । शेख ने कुछ छंद भक्ति अथवा शान्ति रस के भी लिखे हैं । उसमें यह प्रगट है कि शेख शान्त रस भी अच्छा लिखती थी ।† यदि हम शेख को वोधा और तोप की श्रेणी में रखें तो शायद अनुचित न होगा ।

---

छंद नं० २३, ( शेख ) ।

† छंद नं० २०, २१ ( शेख ) ।

दरगारों के प्रभाव से बेरुचायें भी हिन्दी-काव्य की ओर मुड़ने लगी थीं। वे न केवल संगीत कला का ही शिष्य प्राप्त करना था वरन हिन्दी काव्य शास्त्र का भी व्यापक अध्ययन करते हुए काव्य-रचना करने लगी थीं। प्रवीणराय इसके लिए 'उन्नत उदाहरण' है। प्रवीणराय वस्तुतः काव्य कला कुशल और काव्य समिका थी। आचार्य केशवदास ने भी मुक्त कंठ से हमकी प्रशंसा की है। प्रवीण ने केशव का ही अनुकरण करते हुए साहित्य की विविध छान्दोग्यक शैली में रचना की है और इसके प्रायः सभी छंद काव्य-कौशल से चम्पू हैं। आचार्य केशव के सासग से हमकी रचना-शैली भाषा तथा विचारवादी सभी उन्हीं के ही समान है। कविता मरीचा, दोहा गारी इत्यादि छंद हमकी रचना में पाई जाती हैं। इसका रचा हुआ कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं है। संभवतः हमने किसी ग्रंथ की रचना भी महा की। शृंगाररसक काव्य की हममें विशेषता है और टीका भी है। आचार्य केशव तो इसकी कविता की इतना सराहना करते थे कि उन्होंने अपनी रामचरित्रा के लिए हमसे रामकलेवा के प्रसंग में गारी लिखाई है। यह गारी वास्तव में कलेवा के समय शिष्ट घरों में गाने योग्य है। उच्च कान्ति के साहित्यिक गुण भी इसकी रचना में पाए जाते हैं।

सर्वत्र भाग में दाहा जैसे छंदे छंदे छन्द से सुन्दर भक्ति-काव्य लिखने वाली स्त्रियों में दयाबाई और सदाबाबा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। भक्ति-काल में जिस प्रकार सत्तों ने जा कि भगवद्भक्त और सत्संगी आदमी थे तथा काव्य-शास्त्र से पूरा परिचित थे, अपनी

अपनी यानियों, दोहा, साखी आदि छंदों में लिखी हैं, उसी प्रकार दयाचार्द और सहजोर्गर्द ने भी किया है। इन्हें हम संत-धेणी में रख सकते हैं। दोनों देवियों संत चरनदास की शिष्या हैं। इसी-लिप् इन पर सत-काव्य का ऐसा प्रभाव पड़ा है। इनके काव्य में उच्च कोटि की साहित्यिक क्षमता तो नहीं है किन्तु संतों के समान विरक्ति, गुरुपूजा, निगुण-उपासना आदि की विचारावली साधारण भाषा में सुचारता से मिलती है। कहीं कहीं उक्ति-वैचित्र्य का भी आनंद मिलता है। संतों ने प्रायः आत्मा को प्रह्ला की प्रेमिका के रूप में मान कर समार में आने पर उससे पृथक् हुआ कहा है और सांसारिक जीवन को विरोग-जीवन मानते हुए प्रेम की पीर से भरी हुई मर्मस्पर्शिनी व्यजना के माध आत्मानुभूति का अच्छे चित्रण किया है। यही बात इन दोनों देवियों की रचनाओं में भी न्यूनाधिक रूप से पाई जाती है।

साहित्य-भ्रमरों से मदारराज नागरीदास का नाम छिपा नहीं है। यह बड़े सिद्ध और प्रसिद्ध महारत्ना और कवि हुए हैं। रसिकविहारी जी ने, इनकी धर्मपत्नी होना सब प्रकार से चरितार्थ किया है। यह महारानी भी भक्ति-रसशनाता और सहृदया कवि थीं। नागरीदास की रचनाओं के साथ जो रचनाएँ इनकी प्राप्त होती हैं वे वास्तव में बड़ी ही सुंदर हैं। इन्होंने ब्रजभाषा और मारवाडी दोनों में रचनाएँ की हैं और दोनों अपने अच्छे रूप में व्यवहृत हुई हैं। दोहा और पद-शैली की ही इनमें विशेषता है। इसी नाम के एक सुकवि और हुए हैं जिन्होंने शृंगारात्मक रचना कवित्त-सर्वथा शैली में की हैं। रसिक-

विहारी ने अपनी भावुकता का परिचय अपनी भक्ति पूर्ण रचनाओं में दी है।

हिन्दी-साहित्य के पुरुष कवियों में जिस प्रकार कुँडलिया छंद लिखने वाले श्री गिरि मरदान और श्री दामदयाल गिरि का कुँडलियाँ विशेष प्रसिद्ध है, उसी प्रकार आ-समाज में साई और छत्रकुवरि साई ने कुँडलिया छंद की रचना में विशेष स्थान प्राप्त किया है। छत्रकुँवरि साई ने तो कुँडलिया का एक विशेष रूप में रखा है। साई के चतुर्थ चरण की भावुति करते हुए इन्होंने न तो पद्यम चरण में अपना नाम या उपनाम ही रखा है और न कुँडलिया के प्रारम्भिक शब्द का यादृति उसके अन्तिम चरण में ही की है। इस प्रकार की कुँडलिया बहुत कम मिलती है और इसीलिए साई या उल्लेखनीय हैं। साई जी ने भक्ति पूर्ण रचना में इसी छंद का उपयोग किया है। यह भी एक विशेषता है क्योंकि प्रायः शक्ति-काव्य ही कुँडलिया-शैली से लिखा गया है। साई या नाम यहाँ विशेष उल्लेखनीय इसलिए है कि ये कविवर गिरिधर या की छा हैं और इन्होंने उनके उस सकलप को पूर्ण किया है जिस ने कुँडलिया-ग्रन्थ रचना के समय में कर लुके थे। जिस निरिधन सख्या में गिरिधर या ने कुँडलियों के बनाने का विचार किया था उतना के पूर्ण करने के पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई। अस्तु उस सख्या की पूर्ति साई ने की। गिरिधर और इनकी रचा हुई कुँडलियों में बड़ा अंतर है कि इनकी रचा हुई कुँडलियों में पहले साई शब्द का प्रयोग अवश्य मिलता है। उन्होंने अपने पति के

संकल्प-रघार्य उनका नाम भी थपनी कुंडलियों के उभी प्रकार रखता है जैसे गिरिधर दास स्वयं रखते थे । सभसे विशेष और ध्यान देने योग्य बात यह है कि इनकी कुंडलियों भापा, शैली आदि किसी भी दृष्टि से देखिये वैसी ही मिलती हैं जैसी गिरिधर दास की हैं । इन्होंने थपनी रचना उनकी रचना से नर्वया मिला दी है और यह मामूली योग्यता का काम नहीं ।

यह हम पहले लिए चुके हैं कि हिन्दी-साहित्य-रचना का कार्य विशेष रूप से उन्हीं देवियों ने किया है जो राजघरानों या धनी-मानी शिष्ट घरानों की सुगृहिणियाँ थीं । इसकी पुष्टि के लिए बहुत सी रानियों की रचनायें उपस्थित की जा सकती हैं । प्रस्तुत ग्रंथ में भी बहुत सी प्रधान रानियों की सुरचनायें भी रखी गई हैं । हम इन सब का एक विशेष वर्ग बना लेते हैं और साधारण घरों की स्त्री-कवियों से इन्हें प्रथक करके 'रानी-कवि-वर्ग' में रखते हैं । इनके देखने से यह प्रगट होता है जितना अधिक कार्य रानियों ने अधिक संख्या में किया है उतना अधिक कार्य उतनी अधिक संख्या में उस समय हमारे राजाओं ने नहीं किया । यह अवश्य है कि राजाओं में से बहुतों ने काव्य-शास्त्र जैसे गभीर विषयों पर भी सुन्दर रचनायें की हैं और रानियों ने नहीं की । किन्तु यह बात विचारणीय नहीं क्योंकि रानियों को काव्य-शास्त्रादि विषयों पर सुशिक्षा यदि साधारण स्त्रियों के समान अप्राप्य न थी तो दुष्प्राप्य अवश्य थी । प्रायः सभी रानियों ने भक्ति विषयक काव्य ही रचा है । कारण वश किसी किसी ने विप्रलंभ शृंगार-

सवधा कुछ रचनायें अवश्य कर दी हैं किन्तु समुदाय में व्यापकता विशेषतया भक्ति-काव्य की हो रहा है। हिन्दी-कवियों में वश-परम्परा सभ्य तो कवि श्रेणी ही चयनी है और न काव्य-रचना ही प्रगतिशील होता है। उद्भूत के समान उनमें कवियों के गुरु-शिष्य परम्परा के साथ भी कवि श्रेणी और काव्य-रचना की गति नहीं पाई जाना। रामा कवियों में कुछ ऐसा वश है जिनमें वश-परम्परा के साथ कविता करने वाला शक्तिवादी भी परम्परा चली है यद्यपि एक वश में उत्पन्न होने वाली शक्तियों ने काव्य-रचना-सम्पत्ति प्राप्त करके अपनी कवि सत्ता को शृंगारवादी प्रत्यक्ष किया है। पार्थक्य वेहोंने कि रामाई काव्यता 'ममदासी' जिन्होंने बादा चौपाई-सीली स प्रवधारमक दृष्ट्य भक्ति-काव्य प्रभावभाषा में लिखा है उन्हीं के यहाँ सुन्दरकुँवरि बाई जैसी मत्स्यकायकारिणी रामाई हुई हैं। सुन्दरकुँवरि बाई ने भी साहित्यिक विविध छंदमय शैली से शृंगारमय काव्य भी लिखा है और पद रचना भी की है। सुन्दरकुँवरि बाई के काव्य में उच्चकादि के साहित्यिक गुण पाये जाते हैं। उन्होंने भी पितनी कुचलिमा लिखा है वे सत्र सुन्दरकुँवरि बाई का साथ हैं। इनकी भाषा बड़ा ही शिष्ट स्वच्छ और सुगमस्थित है। साहित्य कवि और प्रभाव गुणों के साथ साथ भाव-नाम्नाम्य और भावनात्मक भक्ति का व्यञ्जन के साथ अच्छे रूप में पाये जाने हैं। शृंगारमय काव्य भी तोप और दास की श्रेणी का है। उल्हास, उपमा और रूपक आदि छल कारों की सुन्दर याचना अनुप्रास छन्द के साथ सब इनके कवित्त आदि

छंदों में पाई जाती है। शान्त-रस की कविता भी इनकी बड़ी ही सुन्दर है। इनकी रचनायें न केवल सियों की माधुर्य कलाओं में ही पढ़ाने योग्य हैं, परन्तु उच्च कलाओं में पढ़ाई जाने वाली पुरुष कवियों की रचनाओं के साथ रखी जाने की अधिकारिणी हैं। वर्यन-जैली भी इनकी चित्रोपमा और साकार है। चौर रस की भी कविता इन देवों ने की है, वह भी उसी ढङ्ग की है जैसी शृंगार-रस की। सुन्दर-कुँवरि बाई को हम इसलिए गीतकवियों में बहुत ऊँचा स्थान देते हैं। इन्होंने ११ ग्रंथों की रचना की है।

सुन्दरकुँवरि बाई के समान किन्तु साहित्यिक दृष्टि से उनमें कुछ उतर कर ग्यान दिया जा सकता है प्रतापकुँवरि बाई को। इन्होंने १५ ग्रंथ रचे हैं और तुलसीदास के ममान दोहा चौपाइयों में तथा कुछ अन्य छंदों में भी राम-काव्य लिखा है। इनके बराबर कदाचित् किसी दूसरी महिला ने राम-काव्य की ऐसी सफल रचना नहीं की। इनकी भाषा में राम-काव्य-प्रयुक्त परंपरागत त्रुटि भाषा का ही प्राधान्य है। वास्तव में त्रुटि भाषा राम-काव्य के लिए ही उठाई गई थी। कहीं कहीं 'हाज़िरी' 'हज़ार' आदि फारसी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। भाषा बड़ी ही संयत, शिष्ट और सुन्दर है। यद्यपि वह अनुप्रासों ने बहुत समन्वित नहीं है तो भी यथोचित रूप से कहीं कहीं अलंकारों से अलंकृत है। प्रतापकुँवरि बाई ने अपने काव्य-कौशल को अपने ही तक नहीं रखा, परन्तु उसे अपने मंचधियों और मस्त्रियों में भी प्रचलित किया है। रत्नकुँवरि बाई जी, जिन्होंने पद-जैली में अच्छी रचना की



है, यद्यपि योही ही की हैं, इसकी उदाहरण हैं। राजा शिवप्रसाद तिनारेहिन्द का नाम हिन्दी ससार में चिख्यात ही है, रत्नकुँवरि बीना इहाँ का दादी थीं। ये भी सुन्दर रचना करती थीं। कदाचित् यह दूसरी देवी हैं जिन्होंने प्रगल्भ-काम्योचित दोहा चौपाई वाली शैली में कृष्ण-काम्य लिखा है।

तुलसी और केशव के परचात राम-काम्य के क्षेत्र में जैसी रपाति राजा भरेश आमान् रघुराजसिंह जी को मिली है वैसी और किसी को नहीं प्राप्त हुई। चापेली विष्णुप्रसाद कुँवरि इहाँ की सुपुत्री थी। उन्होंने तीन ग्रंथों की रचना की है। 'धनध विलास' नामी ग्रंथ में तो राम चरित्र दोहा चौपाई की शैली से लिखा गया है। यह तो इन पर पड़े हुए इनके पिता के प्रभाव का फल है। दूसरा ग्रंथ 'कृष्ण विलास' और तीसरा राधा-राम विलास है। इस दोनों में कृष्ण काम्य लिखा गया है। विशेष अवलोकनीय तथा स्मरणीय बात यह है कि 'राधा-राम विलास' में पद्य के साथ गद्य भी लिखा गया है। हमारी समझ में इनसे पहले और शायद ही किसी दबी ने गद्य लिखा हो। इस प्रकार हम इन्हें गद्य लेखिका भी कह सकते हैं। इनकी रचना यद्यपि बहुत अप्पकाटि का नहीं है तो भी वह भरत सुन्दर और सराहनीय है। राम चरित्र लिखते हुए उन्होंने बहुत स्थलों पर तुलसीदास रामायण से सहायता भी ली है। न केवल भाव ही उन्होंने अपना

लिये मैं घरन् फहों कहीं तो तुलसीदास की पदावली भी रग्य ली है। राम-काव्य में जिस प्रकार शवधी का प्राधान्य है उसी प्रकार इनके कृष्ण-काव्य में, जो विराहित होकर कृष्ण-भक्ति-स्नात जयपुर के राज्य-भवन में रहने के प्रभाव का फल है, प्रज्जभाषा की प्रधानता है। अतः कहना चाहिए कि रानी साहया दोनों भाषाओं में साधारणतः अच्छी रचना करती थीं। कृष्ण-काव्य में पद-शैली की रचना का वाहुल्य है। कहीं कहीं इन्होंने कवित्त आदि दूसरे छंद भी लिये हैं।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास का अवलोकन करने वालों को यह ज्ञात ही होगा कि कला-काल के पश्चात् जय आधुनिक काल का उदय हुआ है तब समस्या-पूर्ति की पद्धति से मुक्तक-काव्य रचना की परम्परा का अच्छा प्रचार और प्रसार हुआ है। उसी समय में भिन्न-भिन्न स्थानों पर कवियों ने, जिनका अथ पश्चात्य-सभ्यता-साहित्य से प्रभावित राज-दरबारों में वैसा मान-सम्मान और आना-जाना न रह गया था, अपने अपने कवि-समाज या कवि-मंडल स्थापित कर लिए थे जिनके द्वारा समस्या-पूर्ति की परम्परा प्रचुर रूप से बहुत दिनों तक चलती रही और अब तक कुछ कुछ अंश में चली जा रही है। कुछ समाजों ने भारतेन्दु वाघू की 'कवि-वचन-सुधा' नामी साहित्यिक पत्रिका को देख कर उसी रूप में समस्या-पूर्ति तथा स्फुट कविता संबंधी पत्रिकाएँ निकाली थी जिनमें तत्कालीन सभी कवियों की पूर्तियाँ छपा करती थी।

समस्या-पूर्ति की शैली से मुक्तक काव्य करने वाली महिलाओं में सब से प्रथम चन्द्रकला बाई का नाम विशेष उल्लेखनीय है। करुणा-शतक,

राम चरित्र आदि कई ग्रंथों की भी इन्होंने रचना की है। कवि-समाज में इनका नाम ऐसा फैल गया था और इनकी पूर्तियों को टेम्बकर कवि लोग इनकी रचनाओं के लिए ऐसे उत्सुक रहा करते थे जिसका परिचय पाण्डों का इस पुस्तक से हो जायगा। इनकी पूर्तियों 'काव्य सुधा' भर पत्र में प्रकाशित होती थीं। इनकी रचना साहित्यिक-गुण-सम्पन्न और चमकीली होती है। पद्यावली सानुपासिक और चतुष्टय है। भाषा परिपक्व परिमार्जित और भाव पूर्ण है। मधुरता और सरसता भी पद्य-शक्तियों के साथ इनके रचना-सौन्दर्य को और भी उत्कृष्ट और मनोरम करती है। कल्पना भी इनकी प्रतिभामयी है। 'रामचरित्र' में राम काव्य और 'कल्याण शतक' में कल्याण रस की रचनाएँ अवलोकनीय हैं। शृङ्गारात्मक काव्य भी इनका सराहनाय है। इन्होंने कविता को कला की दृष्टि से अपनाया था और इसीलिए इन्होंने शृङ्गार रस की न्यूनाधिक रूप से वैसी ही रचना की है जैसे पुरुष कवि प्रायः किया करते हैं। छियाँ बहुधा इस प्रकार की रचनाएँ छपना स्वाभाविक कला के कारण नहीं किया करता यद्यपि कला की दृष्टि से भरजीलता को बुर रत्न हुए प्रेम पृथ शृङ्गारात्मक कविता वे कर सकती हैं और का भी है। छायाकल भी प्रेम के काव्यनिक चित्रों को हमारी कद छियाँ अपने काम्य में बड़ी चारता से चित्रित किया करती हैं। हाँ उनका रूप जसा अजरय नहीं हाता जैसा चद्रकला बाई जैसी दवियों के शृङ्गारात्मक रचनाओं में पाया जाता है। कदा कदा तो चद्रकला ने अतिराम की सो कदा अपने छंदों में दिखला दी है। सुन्दरकुँवर बाई

के पश्चात् यदि हम किसी देवी को ऊँचा स्थान देना चाहते हैं तो वह चंद्रकला चाहें ही हैं ।

यजभाषा और उसकी कविता को खड़ीबोली की इस घटना-घटाटोप में सुप्रकाश करने वालों में महाकवि रत्नाकर आदि के पश्चात् सुविश्यात् वियोगी हरि जी उल्लेखनीय हैं । हरि जी ने यह काव्य-कला-गुण जिनसे प्राप्त किया है वे भी बधाई और प्रशंसा की सुपात्रा हैं । छतरपुर के वर्तमान नरेश की महारानी श्री युगलप्रिया जी के ही वियोगीहरि शिष्य हैं । युगल-प्रिया जी इसीलिए विशेष उल्लेखनीय हैं । कृष्ण-भक्ति-काव्य, जिसे इन्होंने पद-जैली में विशेष रूप से लिखा है, वास्तव में सराहनीय है । इन्होंने ने कहीं कहीं आधुनिक समय के चहिरंग भक्त तथा अंतरंग विषयासक्तों की छुटकी भी ली है । भक्तों में 'परस्पर प्रशंसति' की परिपाटी सदा ही से अवधारण रूप में चली आई है । भक्त भगवान के भक्त को न केवल अपना पूज्यपाद ही मानता है वरन् उसे अपना स्वामी और गुरु सा भी समझता है । भक्त, भक्त का भी दाग होता है चाहे भक्त कैसा ही क्यों न हो । भक्त-समाज में यही सिद्धान्त है । देवी जी ने ऐसा न करके साम्राज्ञी के नये नीति-पूर्ण नीर-धीर प्रियेकी हस-न्याय के प्रभाव से इस छद्माकुला प्रणाली की आलोचना की है और जनता को द्वेधी वृत्ति-धारी-बगुजा-भक्तों से सचेत रहने की चिन्तावनी दी है । रचना साधारणतया यदि परमोच्च कोटि की नहीं तो किसी प्रकार घट कर भी नहीं है ।

राम-काव्य लिखने वाली देवियों में जिनका नाम हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, उनके पश्चात् यदि और कोई उल्लेखनीया हमें यहां

कोई जँचती हैं तो वह राना रामप्रिया देवी हैं। आप ने सवैया, ब्राटक, कवित्त, पद आदि विविध छंदों में जालित्य और मातृव्य गुण पूरा सुंदर रचना की है। यद्यपि रचना बहुत सुंदर नहीं है तथापि सराहनीय है। भक्ति भाव तो उस में खूब ही भरा हुआ है। पंशवला भा परिष्कृत और मीठ है। वाक्य विन्यास, अनुशास और अलंकार से यथाचित स्थानों पर अलंकृत है। सामयिक प्रभाव से रानी साहबा समस्या पूर्ति भी किया करती थी और अच्छी कर लेती थी।

यहाँ तक तो हमने प्राचीन महिलाओं की रचना का सूक्ष्म आलोचन मातृव्य विवेचन किया। अब वह समय हमारे सामने आता है जब से हमारे हिन्दी-साहित्य का आधुनिक-काल प्रारम्भ होता है और हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में खड़ीबोली के गद्य का प्रचार बड़े प्रबल-बल वेग से होने लगता है। जिसके कारण साहित्य का एक विभाग कुछ शिथिल और मद-नति-गामी हो जाता है। खड़ीबोली के प्रचार से मज भाषा का यद्यपि उतना प्राधान्य नहीं रह जाता जितना पूर्ववर्ती कालों में था। अब तक प्राचीन शैली से काय करने वाले जो मजभाषा में रचनाएँ करते हैं इनका सख्या उतनी अधिक नहीं है जितनी खड़ीबोली के लेखकों और कवियों की। पत्र-पत्रिकाओं के प्रचुर प्रचार एवं मुद्रण यन्त्रों के प्रचार से पुस्तक-प्रकाशन के कार्य के प्रसार से आज खड़ी बोली व्यापक और सब साधारण का भाषा हो रहा है ऐसी दशा में मजभाषा में रचना करना सुलभ साध्य नहीं रह गया। क्योंकि विर परिचित तथा निम्न व्यवहृत भाषा के स्थान पर किसी अपरिचित किंचित

हमारी चौधरानी के समय से नवोन्नति का प्रारम्भ देखते हैं। चौधरानी जी ने रचना-कार्य तो उतना सुस्थ नहीं किया किन्तु अपने पिता श्री मवीनचन्द्रराय को देखते हुए पञ्जाब प्रांत में, जहाँ उस समय उर्दू का विशेष मोलवाला था, हिन्दी का चिरस्मरणीय प्रचार-कार्य किया है। श्री शिवा की जागृति और उन्नति का श्रेय पञ्जाब प्रांत ॥ यदि किसी महिला रत्न को मिल सकता है तो वह इन्हीं को।

साहित्य-रचना का प्रथमनीय कार्य इस आधुनिक-काव्य में गिन महिलाओं ने किया है उनमें से रानी रघुवश्र कमारी का नाम प्रथम उल्लेखनीय है। इस देवी ने अपनी रचनाओं से स्त्री-सत्तार को सूचित किया है कि स्त्रियों का साहित्य पुरुषों के साहित्य से स्वतंत्र और पृथक् होना चाहिए। इन्होंने स्त्री-उपयोगी विषय चुनकर इन्हीं पर मौलिक रचनाएँ की हैं। 'आमिनी विद्यास' 'मनिता बुद्धि विद्यास' और 'सूय-शास्त्र विशेष उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। पुस्तक के नामों से ही इनके विषयों का पर्याप्त परिचय मिल जाता है। वास्तव में हमारी स्त्रियों को इस धार ध्यान देना और कार्य करना चाहिए। यह कहा जाता है कि क्या स्त्रियाँ पुरुषों के समान उल्लेख साहित्य का अध्ययन, उसका प्रवर्धन आदि नहीं कर सकतीं और क्या उन्हें ग्राहस्थोपयोगी विषयों पर ही सदैव निर्भर रहना चाहिए? उत्तर में यह कहना अनुचित ॥ न हाथा कि स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान उत्तकटि के साहित्य क्षेत्र में विचारण कर सकती हैं। किन्तु हमके साथ ही उन्हें उस गौरव-पूर्ण उत्तरदायित्व को मँदव अपने लक्ष में रखना चाहिए जो उन्हें धत्तन

विश्वास करके दिया गया है और जिसके आधार पर उन्हें गृह-लक्ष्मी और सहधर्मिणी आदि की उपाधियाँ दी जाकर पुरुष-समाज का जीवन-सार समर्पित कर दिया गया है। अस्तु। गार्हस्थ्य-सवधी विषयों में दक्षता प्राप्त करना स्त्रियों का एक परमोच्च कर्तव्य है। रानी रघुवंश कुमारी जी ने कविता, सवैया, चरवा, पद तथा सोहर आदि विविध छंदों में रचना की है। हमारी समझ में कदाचित् इन्होंने सुन्दर चरवाँ लिखे हैं। भाषा इनकी परम शुद्ध और सधी व्रजभाषा न होकर मिश्रित व्रजभाषा सी है। इसमें अवधी और कहीं कहीं खड़ीबोली की भी छुट है। किन्तु उस समय पूर्वी प्रान्तों में इसी प्रकार की भाषा का विशेष प्रचार था। इसलिये रानी साहया का इस भाषा में रचना करना न्याय-संगत ही है।

हिन्दी-साहित्य के कला-काल में जिस प्रकार भूषण ने वीर-स्तवन-काव्य विशेष रूप से लिखा है उसी प्रकार इस काल में स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी की धर्मपत्नी श्री घुंदेलावाला ने वीर-काव्य लिख कर अपने नाम को सार्थक किया है। घुंदेलखट भारतीय इतिहास के मध्यकाल में वीर वघेलों का प्रदेश था। घुंदेलावाला के शरीर और प्राण दोनों में वहाँ की वीर-रस-संस्कृत प्रकृति का पूरा प्रभाव था। इन्होंने स्वर्गीय लाला जी से काव्य-शास्त्र तथा छंद-शास्त्र का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था और इसीलिए इनकी कविता में काव्य-गुण चारुता से मिलते हैं। इनकी भाषा शुद्ध खड़ीबोली है। उसमें ओज-प्रसाद आदि गुण हैं। वह जोशीली और उत्तेजक है। शैली

इनकी साधारण और सरल है क्योंकि इनका उद्देश्य समाजोचित-साहित्य की रचना करने का था और वे अपनी बीर रसमयी वाणी को नवयुवकों और नवयुवतियों के हृदयों में पैठाना चाहती थीं। दोहा-शैली से नीति काव्य भी इन्होंने वृद्ध जैसे कवियों के समान अच्छा लिखा है। प्रेम पर भी इन्होंने कुछ रचना की है और कहीं कहीं उर्दू-साहित्य के भाव तथा उदाहरण उर्दू शायरों के साथ रस दिए हैं। इन्होंने एकबंद कवियों पर भी उपदेश पूर्ण कटाव किये हैं। कुछ रचनायें इन्होंने कथापकथन शैली से भी लिखी हैं। कुदेसाबाबा की का इन्होंने विरोध सार्धा के कारण साहित्य में हम अच्छा स्थान स्वीकार करते हैं। की समाज में इन्हें वही स्थान दिया जा सकता है जो सुदय कवि-समाज में भूषण जैसे कवियों को दिया गया है।

यह साहित्य लेखियों से लिया नहीं है कि आधुनिक काल के प्रारम्भ में तथा भारतेन्दु बाबू के परचात् तक समस्या-पूर्ति सम्बन्धी मुक्तक-काव्य की रचना का बड़ा प्रचार रहा है। समस्या-पूर्ति सम्बन्धी कतिपय पत्र और पत्रिकाएँ भी निकलती रही हैं। यहाँ जिस देवी जी का हम सूक्ष्म विवेचन करने जा रहे हैं वह इसी समय की शैली में रचना करने वाली हैं। इनका नाम रमा देवी है। इन्होंने मज्जिमापा और लकी सोली दोनों में रचनायें की हैं, जैसा आधुनिक समय के कतिपय कवियों ने भी किया है। इन्होंने कहीं कहीं ठेठ देहाती सोली का भी प्रयोग किया है। सामयिक प्रवाह से प्रभावित होकर इन्होंने जो रचनायें र्व्यंग और हास्य-गुर्य की हैं वे अत्यन्त मनोरञ्जक हैं। उर्दू हिन्दी



मिश्रित भाषा का भी इन्होंने उपयोग किया है। नीति-विषयक-रचनाओं में दोहा-शैली को ही प्रधानता दी है। समस्या-पूर्तियों में कहीं कहीं उक्ति-वैचित्र्य और कला-कौशल भी अच्छा मिलता है। हमारी समझ में रमा जी का भी स्थान साहित्य-क्षेत्र में ऊँचा ठहरता है।

खड़ीबोली के काव्य-जगत में नवीन पद्धति से काव्य-रचना करने वाली महिलाओं में श्रीमती तोरन देवी शुक्ल 'लली' जी सर्वाग्रगण्य हैं। 'लली' जी ने शुद्ध खड़ीबोली का प्रयोग जैसा अच्छा किया है वैसा कदाचित् किसी दूसरी देवी ने नहीं किया। इन्होंने सामयिकता को अपने सामने रख कर नवीन विषयों पर नवीन शैली से मनोहारिणी रचनाएँ की हैं। देशानुराग, प्रेम, वीर-भाव इनकी रचनाओं में विशेष प्रधानता रखते हैं। आपने काव्य-रचना की प्राचीन कविता, सर्वथा, दोहा, चौपाई आदि शैलियों को न अपना कर आधुनिक समय की नवीन छद्मात्मक शैलियों में ही रचना की है। रचना भाव-पूर्ण, प्रभावोत्पादिनी और रोचक है। इनकी कविता में श्रोज और वीरत्व का जो प्रादुर्भाव होता है वह वर्तमान खड़ीबोली के लिए नवीन और गौरवपूर्ण है। हम इन्हें आधुनिक समय में खड़ीबोली में रचना करने वाली देवियों की प्रधान प्रतिनिधि समझते हैं।

न केवल स्त्री-समाज को ही जिम्मे देवी पर गर्व है वरन् पुरुष समाज में भी जिनका नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है वे श्रीमती सुमद्रा कुमारी जी चौहान हैं। वर्तमान समय में इन्हें खड़ीबोली की सुन्दर रचना के लिए अच्छी ख्याति और प्रतिष्ठा मिली है। हाल ही में

इनकी रसुद रचनाओं का समग्र 'मुकुल' नाम का पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ है। जितना रचनायें इनकी अब तक देखने में आई हैं उनसे इनकी मौद प्रतिभा और प्रगल्भ कवित्व-शक्ति का पता चलता है। इन्होंने भी भिन्न भिन्न प्रकार के नवान छंदों में मुक्तक शैली से, जिसमें इतिवृत्तात्मक निदध-रचना ही विशेष रूप से हाती है, रचनायें की हैं। भाषा यद्यपि उच्चकादि का साहित्यिक लकोबाका नहीं है सो भी शुद्ध, सुस्पष्टरियन और पूर्ण परिष्कृत होती हुई अपनी साहित्यिक लकोबोली अवरय है और जिसमें कहीं कहीं उद् शब्द भी देखने में आते हैं। स्वदश प्रेम तथा अन्य नवान विषयों पर इन्होंने अपना हार्दिक अनुभूति की मार्मिक ध्यजना का प्रतिविम्ब हाकत हुए रसुद कवितायें लिखी हैं। कहीं कहीं तो इन्होंने प्राचीन कवियों के भाव से लिखे हैं किन्तु उन्हें कुछ नवीनता से अपने माँचे में हाक कर मौखिकता आने का प्रयत्न किया है। कहीं कहीं उद् छंदों का भी उपयोग किया है। बखत-शैली इनकी लजावना और चित्रापनता रचना है। हार्दिक भावों का साधारण भाषा में यथातथ्य प्रकाशन इनका रचनाओं का मूल उद्देश्य जान पड़ता है। मन का भी पवित्र धामा से इनकी बहुत सी रचनायें चमक उठी हैं। प्रेम रसकों में जान पड़ता है कि सुमदाकुमारी भी प्रेम की पुजारिनी और अक्षर्य की उपासिका और कल्पना की अनुरक्ता हैं। स्वाभाविक भावों और अनुभावों का भी चित्रण इन्होंने अरुद्धा किया है। बहुतरी रचनायें सा प्रेमा हैं जिनके देखने से यही कहना पड़ता है कि ये मुक्तभोगी हृदय से ही निकली हैं। वीर-रस की भी अपनी

उन्नत भावनाओं के साथ 'भांसी की रानी' जैसी रचनाओं में इन्होंने अच्छी धारा बहाई है। इन्होंने आद्योपात् खड़ीबोली में ही रचना की है और उच्चकोटि की रचना की है। हमारी समस्त में वर्तमान समय की खड़ीबोली की रचना करने वाली देवियों में इनका स्थान बहुत ऊँचा है।

खड़ीबोली के काव्य-क्षेत्र में इधर कुछ दिनों से एक नवीन आन्दोलन सा उठा है और वह उठा है कवीन्द्र रवीन्द्र की रहस्यात्मक रचनाओं के प्रभाव से। इस आन्दोलन में नवोदित कवियों को कहाँ तक सफलता मिली है, अभी नहीं कहा जा सकता। इस आन्दोलन से जिस नवीन काव्य-शैली का प्रचार हो रहा है उसे छायावाद या रहस्यवाद की संज्ञा दी गई है। वास्तव में रहस्यवाद जिसे कहा गया है उसका अच्छा रूप तो इन नवोदित कवियों की रचनाओं में नहीं पाया जाता; हाँ रहस्यवाद की उसमें छाया अस्थिर पाई जाती है और इसीलिए उसे छायावाद कहना भी युक्ति-संगत है। अनन्त-सौंदर्य, अमीम-प्रेम, और विचित्र आनन्द की ओर कल्पना की ऊँची उड़ान से उड़ने वाले यह कवि खड़ीबोली काव्य-क्षेत्र के प्रकृति-वन-विहारी विचित्र विहंगम हैं। यदि ज्ञानानुभव से सहायता लेकर ये लोग अपनी प्रगति को परिमार्जित और पुष्ट करते चले तो छायावाद-काव्य का उज्ज्वल भविष्य निश्चित हो जायगा।

इस नवीन शैली से प्रभावित होकर जिन देवियों ने वर्तमान समय की खड़ीबोली में काव्य-रचना प्रारम्भ की है उनमें श्रीमहादेवी वर्मा का

नाम सर्वोत्तम है। इन्हें अग्नेजां ससृज और हिंदा का उच्च शिवा में अपने कान्य को प्रौढ़ एवं परिष्कृत करने में बहुत बड़ी सहायता मिली है। दर्शन शास्त्र के विषय के अध्ययन से इनकी रुचि का ध्यात्मिक-रहस्य की ओर झुक जाना साधारण सी ही बात है। प्रेम के कल्पित चित्र जो इन्होंने सरल और सरस भाषा में चित्रित किये हैं वे बड़े ही मनोरम और स्वाभाविक हैं। अनुसृष्टि व्यक्ती भी इनमें अच्छी है। 'मरा जावन' शाशक जैसा रचनायें इनके लिए प्रमाण हैं। इनका रचनाओं में प्रेम भरे हृदय की मार्मिक पाड़ा और वेदना क्षीरी है। प्रकृति के साथ में खेलती हुई कल्पना इस वेदना के छत्र से प्रथित हाकर कैम उद्गार निकालती है। पाण्ड स्वयं इनकी रचनाओं में देख लें। आधुनिक शैली में प्रायः विरोध मूलक शब्दों का एक विधित संगुष्ण करके रहस्यवादी की धमोली छवि का रचना विधान किया जाता है। इस विधान का कुछ मूलक इनकी रचनाओं में भी पाई जाता है। भाषा वचन शुद्ध परिष्कृत और प्रौढ़ खरीबोली है फिर भी कहीं कहीं उसमें कुछ अव्यवस्था तथा व्याकरण की त्रुटि पड़कने लगती है। वर्णन-शैली इनकी निरालात्मक रचनाओं में साकार और सजीव है। पदानुवा में माधुर्य आलिंग्य और माधव है। वर्तमान खरीबोली के रहस्यवादी और ध्यात्वानी कवियों में इनका स्थान ऊँचा है।

यद्यपि दो एक दक्षिण ऐसा आर हैं कि जिनका उल्लेख न करना हमारी समझ में उनके साथ धन्याय करना होगा। इनमें से एक तो श्री राजदजी जी हैं, जो श्री सुमदा कुमारी चौहान की पत्नी बहन हैं।

आपने अपने समय की शैली के अनुसार खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों में कविता की है। यद्यपि कविता बहुत उच्चकोटि की नहीं है तथापि सरायनीय अवश्य है। कतिपय अनिवार्य कारणों से आपको अपनी प्रतिभा को दना देना पड़ा और रचना करना बंद करना पड़ा। यदि ये ऐसा न करके बराबर रचना-कार्य करती रहतीं तो सभवतः इन्हें स्तुत्य सफलता मिलती।

दूसरी उल्लेखनीय देवी है श्री सरस्वती देवी। आपके पिता बड़े ही सुयोग्य और सुकवि थे। पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय आपके पिता के मित्र हैं और इसीलिए आपसे परिचित भी हैं। देवी जी ने कई पुस्तकें लिखी हैं और प्राचीन नीति-काव्य लिखते हुए शतक-शैली का अनुकरण किया है। इन्होंने वर्तमान समय की पार्श्वस्थ सभ्यता के आतंक से प्रभावित होकर अपनी प्राचीन सम्मानित भारतीय संस्कृति-परंपरा की उदंड-उद्धत खलता से अवहेला करने वाली स्त्रियों को देखकर 'सुन्दरी-सुपथ' नामक ग्रंथ की रचना कर स्त्री-समाज के सामने सुन्दर आदर्श और उपदेश उपस्थित किये हैं। यद्यपि नवसमाज के सुधार की ओर अकर्षित नागरिक-जीवन न होने से इन्हें विशेष व्याप्ति नहीं मिली किन्तु हम समझते हैं कि यदि इनकी रचनायें प्रकाशित होकर पठित समाज के सामने आ जायें तो इनका अवश्य आदर होगा।

इस संग्रह में मित्रवर निर्मल जी ने एक 'कुसुम-माला' नाम से सुन्दर रचनाओं का गुच्छा भी रख दिया है और इसमें वर्तमान समय

की उन नूतनोदित महिला-कवयित्रियों की एक-एक सुन्दर रचनायें प्रथित करके एक मनु मालिका बनाई है जिसने हमें आकर्षित कर लिया— इसलिये पाठकों के सामने उसका भी सूक्ष्म विवेचन उपस्थित करना हमने अपना कर्तव्य समझा। क्योंकि ऐसा न करने से पुस्तक का एक बड़ा अविवेचित ही रह जाता। अस्तु।

हम मालिका की कवियों के देखने से यह ज्ञान होता है कि इनमें भी काव्य प्रतिभा है जो चाहे चतुर अपने अपने रूप में प्रस्तुति हो सकती है, यदि उस पुरुष सुघर और चतुरास प्राप्त हो सके। ये सभी देवियाँ जगन्नाथों में ही रचनाये करती हैं और इनकी रचनाये वर्तमान पत्र-पत्रिकाओं में यदा-कदा प्रकाशित भा जाती रहती हैं। 'निर्मल जी ने ऐसा कि अपने कुमुद-भावा'गत सविज्ञ भाषकधन में एक जगह लिखा है इन देवियों में स कविपय देवियों का रचनाय वर्तमान समय के नवोदित पुरुष-कवियों का रचनाओं से किता भा प्रकार कम नहीं है। कविता धर्मार्थ में पुरुषों की ही संपत्ति भी नहीं है। उस का और पुरुष दोनों समापता से हो सकते हैं। इन देवियों की सकलित कविताओं में काव्याश्रित सभी गुण वैसे ही पाये जाते हैं जैसे पुरुष कवियों में। इनमें से कदाचित ही किता को कदाचित मिली ॥ और कदाचित ही मिले। कियों प्राय जनता प्रदत्त प्रसिद्धि क प्राप्त करने में पुरुषों स अत्राप पाछ रह जाती हैं और बहुत ॥ कम देवियाँ कर्ति प्राप्त कर पाती हैं अथवा या कहिए कि केवल वे ही देवियाँ यशामागिता होती हैं जो गृहस्थ जीवन से अलग होकर साहित्यिक-जीवन का विशेष

रूप से रखती हैं और जिनकी रचनायें जनता के सामने किसी प्रकार उपस्थित हो जाती हैं। आजकल यदि सच पूछिये तो युग है विज्ञापन का। विज्ञापन-कला-कुशल चाहे वह किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाला क्यों न हो और चाहे वह भला-पुरा कैसा भी कार्य क्यों न करता हो, अवश्यमेव प्रमिद्धि-प्रसाद-प्राप्त कर लेता है और उन सत्पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्राप्त करता है जो अपना विज्ञापन आप नहीं करते।

इन देवियों में हमारी समझ में कई विशेष उल्लेखनीय हैं।

१. जाह्नवी देवी दीक्षित, इनकी भाषा सुन्दर मधुर और सरल है। कल्पना भी अच्छी है। वर्णन-शैली में भी सरलता है। २. शान्ति देवी, इनकी भाषा प्रौढ़ परिपक्व और सानुप्रासिक है। कहीं कहीं थलकार भी हैं। निबन्धात्मक-शैली से वर्णन-चातुर्य भी कल्पना-कौशल के साथ सरसता और मधुरता रखती हुई अच्छी है। ३. केशव देवी, अनुभूति-व्यञ्जना साधारण और स्पष्ट भाषा में इनमें विशेष पाई जाती है। ४. चुन्नी देवी, भाषा सुन्दर, सरस और भाव-पूर्ण है। पदावली सानुप्रासिक और अलंकृत है। काल्पनिक चित्र भी साकारता और सजीवता रखते हैं। ५. मुन्नी देवी, अनुभूति व्यञ्जना के साथ मृदु-मंजुल पदावली-पूर्ण सरस और मधुर भाषा में कल्पित चित्र-चित्रण इनका मनोरम है। ६. पार्वती देवी, संस्कृत-छंद की छटा है। परिपक्व भाषा, निबन्धात्मक वर्णन-शैली, इनकी रचनाओं में उल्लेखनीय है। ७. लीलावती, सानुप्रासिक, ओजस्विनी तथा प्रभावपूर्ण भाषा में इनकी काव्य-रचना अच्छी है। ८. सत्यवाला

देवी, उद्द शैली से साधारण भाषा में भाव-योजना पूर्ण 'अन्योक्ति' शीशक रचना इनकी सुन्दर और सराहनीय है। : चकारी, आनस्थिनी, सबल और प्रौढ़ भाषा में इनका राष्ट्रीय भावा से पूर्ण रचना उल्लेखनीय है। इससे उत्तेजना मिलती है और इनकी सशक्त प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। इनके सिवा और भी अनेक देविर्पा हैं जिनकी कविताओं को देखकर उनके भविष्य का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है।

## तुलनात्मक-विवेचन

हिन्दी-सम्भार में आज कल समालोचना का जो प्रवाह विरोध रूप से चल रहा है उसमें तुलनात्मक शैली का ही विशेष प्राधान्य है। कुछ दिनों से तो केवल तुलना मात्र का ही लोग तुलनात्मक आलोचना मानने लगे हैं। यद्यपि तुलना और तुलनात्मक आलोचना दोनों में बहुत अंतर है। यह प्रयत्नी यहाँ तक बढ़ गई है कि उन कवियों की भी तुलनायें की जाती हैं जिनका धारण में तुलना नहीं हो सकता। क्योंकि वे कति भिन्न विषयों पर पृथक् पृथक् शैली से और प्रत्येक पद्धति से रचनायें करते हैं। ऐसा दृष्टा में उनमें सादर्य कुछ भी नहीं रहता है अंग्रेज की भाषा विरोध रहता है। साम्य और वैषम्य दोनों ही यद्यपि तुलना के अन्वयन हैं तथापि साम्य की ॥ विशेषता रहती है।



समालोचना के इस सामयिक प्रवाह को देखते हुए हम भी यहाँ उद्य प्रधान देवियों की रचनाओं पर तुलनात्मक शैली से आलोचना-लोक डालना चाहते हैं। इन देवियों की तुलनायें दो प्रकार से हो सकती हैं। प्रथम स्त्रियों से स्त्रियों की तुलना, दूसरे स्त्री-कवयित्रियों की पुरुष-कवियों से तुलना। जहाँ तक प्रथम प्रकार की तुलना की बात है वहाँ तक तो यह बहुत ही स्वाभाविक और उचित है किन्तु दूसरे प्रकार की तुलना में हमें कुछ अस्वाभाविकता और अनुपयुक्तता सी जान पड़ती है। क्योंकि पुरुष कवियों के साथ उन देवियों की तुलना करना—जिन्हें पुरुषों के समान न तो साहित्यावलोकन, काव्य-शिक्षा, कला-कौशला-अभ्यास के उपयुक्त समस्त साधन ही सुलभ हैं और न सामाजिक नियमों के कारण सुयोग्य कविममाज के साथ सम्पर्क-संबंध की ही सुविधा प्राप्त है, जो काव्य-रचना के लिए न केवल परमावश्यक ही है वरन् अनिवार्य है। इस प्रकार विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष-कवियों के साथ किसी भी स्त्री-कवि की तुलना करना यदि अनुचित नहीं तो असंगत अवश्य है। क्योंकि दोनों ही परिस्थितियों, भावानुभूतियों, संस्कृतियों, विचारधाराओं और उन सब से प्रभावित होने वाली काव्य-रचनाओं में अवश्यमेव विशेष अन्तर रहता है। फिर भी यदि बहुत सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो तुलनात्मक आलोचना के लिए कुछ न कुछ सामग्री मिल ही सकती है।

हमने पहले लिखा है कि स्त्रियों ने प्रायः काव्य-रचना-क्षेत्र में सभी प्रकार पुरुष-कवियों का अनुकरण किया है। प्रायः उन्होंने

अपने समय की उसी भाषा, उसी शैली, उसी रचना परम्परा को अपनाया है जिन्हें हमारे पुरुष-कवियों या महाकवियों ने उठा कर प्रवर्तित किया है। उसी आधार पर यहाँ हम कुछ दवियों की तुलना कुछ कवियों से करते हैं। किन्तु यह कह देना आवश्यक है कि इस तुलना से हमारा यह भाव नहीं है कि जिन देवियों की तुलना जिन पुरुष कवियों या महाकवियों से यहाँ की जा रही है उनका स्थान उन पुरुष कवियों के समान साहित्य के क्षेत्र में मान्य है और वे उसी काटि की कवयित्री हैं। तात्पर्य केवल यह है कि यहाँ तुलनात्मक आलोचना के द्वारा विचार साम्य अथवा भाव-वैषम्य की धार कुछ सकेत कर दिया जाय और यह दिखला दिया जाय कि का कवियों ने कहा तक पुरुष-कवियों के साथ काव्य-रचना के क्षेत्र में सफलता से काव्य किया है।

सब से प्रथम हम यहाँ मीराबाई को ही लेते हैं। मीराबाई का नाम आज हिन्दी समार में स्वर्णचरों जिला गया है। बहुत मीरा ने अपने समय के अनुसार कृष्ण-नाम का अष्टमी रचना की है। कुछ छंद तो मीरा के पुत्र हैं जिनके विषय में अब तक यह नहीं निश्चित हो सका कि वे वास्तव में मीरा के ही लिखे हुए हैं अथवा किसी अन्य कवि के। उदाहरण में हम काहू कही मुखवा

छंद को लेते हैं। यह छंद देव कवि का रचा हुआ कहर जाता है। ऐसी दशा में निरचय रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हमारा

भी विचार यही है कि इस प्रकार के छंद मीराबाई के रचे हुए नहीं हैं वरन् वास्तव में वेव जैसे पुरुष कवियों के ही रचे हुए हैं। क्योंकि मीराबाई को काव्य-शास्त्र अथवा छंद-शास्त्र का ऐसा प्रौढ़ ज्ञान न था जैसा इस प्रकार के छंदों से प्रगट होता है। मीरा ने अपने समय के गीति-काव्य की शैली से ही कृष्ण-काव्य की रचना की है और भाषा भी प्रायः राजपूतानी मिश्रित ब्रजभाषा रखी है। अस्तु, भाषा के विचार से मीरा की तुलना हम किसी कृष्ण-भक्त कवि से नहीं कर सकते। उन छंदों के विषय में जिन में शुद्ध ब्रजभाषा मिलती है हमारी तो यह धारणा है कि वे वास्तव में मीरा के नहीं हैं और इसीलिए हम उनके आधार पर मीरा की तुलना किसी कवि से नहीं करना चाहते। शैली के विचार से हम मीराबाई की तुलना उन कृष्ण-भक्त कवियों से अवश्य कर सकते हैं जिन्होंने गीति-काव्य की शैली से भक्ति-विषयक रचनाये की हैं।

अब यदि भक्ति-पद्धति पर हम विचार करें तो ज्ञात होता है कि मीरा ने सूर और नंददास जैसे भक्त-कवियों के समान वात्सल्य और सख्य-भाव की भक्ति न रख कर माधुर्य-भाव की भक्ति विशेष रूप से रखा है। कृष्ण को इन्होंने अपना प्रियतम मानते हुए अपने को उनकी दासी या परिचारिका ही माना है। हाँ, साथ ही कहीं कहीं इन्होंने कृष्ण को अपने पति ( स्वामी ) के रूप में मान कर अपने को उनकी चरण-सेविका, प्रिया दिसलाया है। जैसे—

“ घड़ी एक नहि आवड़े तुम दरसण दिन मोय ” (छंद नं० २)

“ पिय इतनी विनती सुन मोरी ।”

(छंद न० ३)

कहीं कहीं मीरा ने कृष्ण को ससार-सागर से पार करने वाले परमेश्वर के रूप में मानकर अपने को ससार-सागर में फँसा हुआ दिखाया है और उनमें पायना की है ।

‘ मेरा बेटा लगाव दीओ पार प्रभुजी घरन करूँ हूँ ।”

(छंद न० ४)

ऐसी दशा में हम यह कह सकते हैं कि मीरा के हृदय में भिन्न भिन्न प्रकार के भक्ति-भावों का प्रभाव समय समय पर पड़ा है और इसीलिए इन्होंने भिन्न भिन्न प्रकार के भक्ति भावों की रचनाएँ की हैं । यदि कहीं वे कृष्ण को समस्त धराधरमय जगत का स्वामी मानती हैं उन्हें अपना स्वामी माननी है तो कहीं वे उन्हें अपना स्वामी, अपना प्रियतम और बेटा पार करने वाला भी कहती हैं । इनकी जीवनी से भी यह प्रगट होता है कि इन पर न केवल कृष्ण-भक्तों का ही प्रभाव पड़ा बल्कि तुलसीदास का भी, जो दास्य भाव के भक्त थे, वहरा प्रभाव पड़ा था । ऐसे पद भी मीरा के मिलते हैं जिनके देखने से कबीर की माधुर्य भक्ति और विरोध मूलक भावविन्यास-शैली का भी प्रभाव इन पर जात होता है । जायसी जैसे सत कवियों के प्रेम पीर की भी कलक इनके हृदयाद्गारों में कलक पड़ती है ।

दरद की मारी बन बन डोलूँ ”

(छंद न० ८)

भक्त और भगवान के बीच माया के कारण जो विषम वियोग की वेदना उत्पन्न होजाती है और जिसका संकेत कृष्ण-काव्य के विप्रलम्भ शृंगारात्मक भाग में तथा सूफ़ी-संत कवियों के रहस्यात्मक प्रेम-गाथा-काव्य के एक पक्ष में मिलता है उसका भी संकेत मीरा के कतिपय पदों में पाया जाता है । कहीं कहीं कयीर के ज्ञानाभासात्मक विचारधारा की भी पुट हनकी पंक्तियों में पाई जाती है ।

“ना कोई मारे ना कोई मरता तेरा यह अज्ञान ।

चेतन जीव तो अजर अमर है यह गीता को ज्ञान ”

(छंद नं० ६)

किन्तु उसमें निगुण्य एवं निराकारवाद की शैली की स्पष्ट झलक नहीं है जैसी कबीर में है । मीरा वस्तुतः साकारोपासना और सगुण ब्रह्म की भक्ति में ही लीन रहती थी । सत्गुरु-महिमा की भी कहीं कहीं सूक्ष्म झलक है ।

“सत्गुरु भवसागर तरि आयो”

(छंद नं० १०)

सूर के पदों का भी समिश्रण इनके काव्य में कहीं कहीं किया गया जान पड़ता है ।

“करम गति टारे नाहि टरे”

(छंद नं० १२)

इस प्रकार अब हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि यदि मीरा के जितने भी पद मिलते हैं उन सबके भावों पर दृष्टि डाली

तो कबीर, सूरदास, तुलसी, दस तथा जायसल आदि पुरुष महाकवियों के भावों का प्रतिबिम्ब पूर्ण रूप से मिलता है और इस आधार पर मीरा की तुलना न्यूनाधिक रूप से इनके साथ की जा सकती है। हाँ यह अवश्य है कि हम महाकवियों के समान न तो मीरा में भावोत्कर्ष ही है, न काव्य कौशल है और न भाषा आदि का सौष्टव ही। भाव साम्य अवश्य है और यही हो भी सकता था। मीरा प्रेम-रस सन्निभ भक्तिभावपूर्ण, सहृदय कवयित्री थीं। भावुकता और प्रतिभा उनमें अवश्य ही उलट्ट थी। इसीलिए अपने समय की प्रायः सभी प्रधान रचना-शैलियों, विचारधाराओं और भक्ति भाव-प्रवृत्तियों का जे कर उन्होंने सुन्दर रचनायें की हैं। कियों में तो हम यदि मीरा के सर्वोत्तम स्थान हैं तो कदाचित् अनौचित्य न होगा।

आलम प्रायः प्रीति शैली यदि आलम से किसी प्रकार बड़ कर नहीं तो उनसे कम भी नहीं है। प्रेम की या सुन्दर धारा आलम का सरल स्वाभाविक और स्पष्ट रचनाओं में मिलती है शैली में भी बड़ा प्रवाहित हाता हुई जान पड़ता है। यह तो निर्विवाद ही मान सकते हैं कि दोनों में भाव भावना-साम्य स्वभावतः हा था। यदि ऐसा न होता और दाना की प्रवृत्ति एक सी न होती तो दोनों में अनुगत ही न होता। आलम ने शैली की एक ही पंक्ति को देख कर यह जान लिया था कि शैली में वे सब गुण विद्यमान हैं जो उनमें हैं। दोनों की रचनायें भी ऐसी मिलती जुलती हैं कि कहीं कहीं तो उनका एक दूसरे से प्रयुक्त करना बहुत ही कठिन हो जाता है।

सामयिक प्रभाव तो दोनों में ही पाया जाता है। प्रेम की जो अनुभूति और सरसता की जो सुन्दर व्यजना आलम में है लगभग वही, शेर में भी है। नायक-नायिका-भेद तथा अन्य प्रकार कला-पूर्ण काव्य को लेकर हम शेर को कला-काल के साधारण पुरुष-कवियों की कक्षा में रख सकते हैं। यह अवश्य है कि शेर की रचना में सानुप्रासिक और अलंकृत पदावली उतनी विशेष नहीं जितनी कला-काल के पुरुष-कवियों में पाई जाती है। सब से विशेष बात जो शेर की रचना में हमें मिलती है वह है उसकी शुद्ध, सरल, सुव्यवस्थित और सरस व्रजभाषा। शेर के पहले और शेर के बाद भी बहुत दिनों तक ऐसी सुन्दर व्रजभाषा में ऐसी गठी हुई कविता और किसी भी महिला ने नहीं की। यह कहने में श्रुति न होगी कि शेर की भाषा ठाकुर और बोधा की भाषा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। अब एक प्रश्न यह उठ सकता है कि शेर को ऐसी सुन्दर साहित्यिक व्रजभाषा से ऐसा पूर्ण परिचय कैसे प्राप्त हो सका? शेर की प्रति दिन व्यावहारिक भाषा जहाँ तक सम्भव है उसके जाति-संस्कार-प्रभाव से खड़ीबोली ही रही होगी जो उर्दू और फ़ारसी के साँचे में मुसलमानों के द्वारा ढाली गई थी और जिसका प्रयोग-प्रचार मुसलमानों के घरों में विशेष रूप से था। यदि यह कहा जाय कि आलम के साथ में रह कर शेर ने व्रजभाषा के इस साहित्यिक रूप का ऐसा पूर्ण परिचय प्राप्त किया था तो भी कुछ पुष्ट प्रमाण का प्रतिविम्ब इसमें नहीं झलकता। संपर्क-सम्बन्ध का प्रभाव अवश्य पड़ता है परन्तु इतना नहीं। अब एक तो अनुमान इस विषय में यह

हा सकता है कि कदाचित् शैल-स्नेहासूत्र पान से मदोन्मत्त भावुक आलम ने ही प्रम प्रमाद में आकर शैल के नाम से रचना की हो जो प्रम शैल ही की रचना प्रसिद्ध हो गई है। इस अनुमान की पुष्टि के लिए काई अकाम्य तक, पुष्ट प्रमाण और युक्त-युक्ति जब तक नहीं है तब तक यह केवल विवाद ग्रन्थ और विचारणीय हो है।

शैल की रचना बहुत ऐसी प्रतीत होती है मानो किसी अच्छे सु-कवि की रचना हो। उसमें चान्दोचित्य, चमत्कार-चातुर्य, भाषा सौष्ठव, कला पूर्ण-काव्य का कौशल सभी अच्छे रूप में प्राप्त होता है। इसी आधार पर हमारा यह अनुमान है कि कदाचित् प्रसन्न होकर ही आलम ने अपने छुदा पर शैल के नाम की मुहर लगाकर उसे प्रसार करने के लिए यह सुन्दर मुक्तक-काव्य रच दिया है। अनुमान कुछ और आगे बढ़ कर तथ्य की ओर मुड़ने लगता है किन्तु है अभी यह विचारणीय और अन्वेषणीय ही।

शैल में कहीं-कहीं कृष्ण भक्ति का भी रंग चढ़ा हुआ प्रतीत होता है। इसे हम सामयिक प्रभुत्व ही कह सकते हैं।<sup>(७)</sup> निष्कर्षतः हम यही कहना चाहते हैं कि जो छंद शैल के नाम से मिलाते हैं यदि वे वास्तव में शैल के छंद हैं तो शैल का स्थान श्री-समाज में तो उच्चतर है हा पुरुष कवियों में भी यह ऊँचा है। हमारी समकाल से छियों में तो शैल की तुलना चन्द्रकला आई, जैसी दो एक देवियों से



हो सकती है और पुरुषों में ठाकुर, आलम, लछिराम और दास जैसे सु-कवियों से भी की जा सकती है ।

जिस प्रकार पुरुष कवियों में केवल कुंडलिया-छंद लिखने के लिए और नीति-काव्य की दोहा-शतक-शैली की कुंडलिया-शैली में रूपान्तरित करने के लिए कविवर गिरिधरदामजी का नाम अपना विशेष महत्त्व रखता है उसी प्रकार साईं का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है और न केवल स्त्री-समाज में ही वरन् पुरुष-समाज में भी । सच बात तो यह है कि जो प्रशंसनीय बात चाण कवि के सुपुत्र ने उत्तरार्द्ध 'कादम्बरी' की रचना करके अपने पिता के संकल्प के पूरा करने में और चन्द्र कवि के सुपुत्र ने 'रासो' की पूर्ति करके चंद्र की आज्ञा के परिपालन करने में दिखलाई है वही बात साईं ने भी अपने जीवन-धन के संकल्प को पूरा करने में दिखलाई है । किसी विशेष कवि की अधूरी रचना को इस प्रकार पूर्ति देना कि तनिक भी अन्तर न हो सके, एक बड़ी ही कठिन और श्लाघनीय बात है । साईं को जैसी स्तुत्य सफलता इससे मिली है वह कहने की बात नहीं । अब हम साईं की तुलना ही क्या करें ? क्योंकि केवल कुंडलिया छंद लिखने में उसके सामने मुख्यतया गिरिधर कविराय, दीनदयालगिरि जैसे कवि ही आते हैं । गिरिधरदास के साथ तो साईं का पूर्ण साम्य है ही । दीनदयालगिरि ने भी साईं की रचना बहुत कुछ मिलती-जुलती है । हाँ, अन्तर यह अवश्य है कि गिरि जी ने अपनी रचनाओं में अन्योक्ति की प्रधानता रखी है और इस प्रकार अपने कला-काल की रुचि को दिखलाया है । साईं ने यह नहीं

किया। क्योंकि वस उसी शैली, उसी भाषा और उसी विचार धारा का स्रोत हुए रचना करनी थी जो गिरिधरदास की रचना में पाई जाती है। छंद-रचना में साई किसी भी कु बलिया लेखक पुन्य कवि से कुछ भी कम नहीं। छत्र कुँवरियाई ने भी कु बलिया छंद में रचना का है किन्तु हमारे विचार से वह साई क सामने तुल्य नहीं करनी।

सुन्दर कुँवरियाई की हा रचना ऐसी सुन्दर हुई है कि वह भी कला-काल के द्वितीय श्रेणी के सु-कवियों में स्थान पा सकती है। कु बलिया छंद खिलने में यद्यपि इन्हें साई के समान सफलता नहीं मिली तथापि हमसे इनकी और रचना का महत्व म्यून नहीं हो सकता। कवित्त, सदैवों में इन्होंने नितना भी रचना की है वह अष्टष्ट कोटि की है। वहीं-कहीं तो इनके कवित्त ऐसे सुन्दर बन पड़े हैं कि वे अनिराम और पन्नाकर के कवित्त का स्मरण कराते हैं। कवित्त का शाय इन्होंने बहुत कुछ पन्नाकर की ही शैली में रखा है। पदावली भी इनका बहुत कुछ पन्नाकर की सी ही छत्र रखती है। इन्होंने भी राधा और कृष्ण को अपना रचना का आधार बनाकर शृंगारालसक मुक्तक-काव्य लिखा है। यह धवरप किया है कि विप्रलभ शृंगार को बहुत विशेषता नहीं दी। वचन चानुर्य भी मार्मिक यत्रया के साथ इनके कवित्तों में अन्धी है। भाषा मधुर मार्दवमयी और सरस है साथ ही चलरुत और सानुमासिक भा है। इस विचार से साई की कला-काल के द्वितीय श्रेणी वाले किसी भी सु-कवि ने साथ तुल्य सन्ती है। छिवों में इनकी समानता कोई यदि कर सकती है तो वह चन्द्रकला साई ही है।

जैसा हम पहले लिख चुके हैं मुक्तक काव्य-रचना करनेवाली देवियों में चन्द्रकला का बहुत ही ऊँचा स्थान है। हिज बगदेव, जो अपने समय के प्रसिद्ध कवियों थे, तथा जदिराम, जहर आदि से इन्होंने रूप ठहरा ली है। कहीं-कहीं तो इन्होंने ऐसी चोगी और शनोगी चातुर्य दिखलाई है कि बलात् यह कहना पड़ता है यह रचना किमी देवी की न होकर एक प्रौढ़ सुकवि की है। समस्या-पूर्ति करने में जितना सराहनीय श्रम इन्होंने किया है उतना यदि ये किमी पुस्तक की रचना में करतीं तो आज हमें यहाँ पर कोई दूसरा ही पृष्ठ लिखना पड़ता और उसकी विवेचना करते हुए हिन्दी के किमी अरुंधे सुकवि से इनकी तुलना करके साहित्य में ऊँचा स्थान देना पड़ता। जो कुछ सामग्री हमारे पास है उसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि श्री-समाज-गगन में चन्द्रकला वास्तव में चन्द्रकला है।

स्थानाभाव से हम इस प्रसंग को विस्तृत नहीं करना चाहते यद्यपि हमारी इच्छा यह अवश्य थी कि हम हम पर विशेष प्रकाश डालें। शेष जितनी भी देवियों की रचनायें यहाँ संग्रहीत हैं वे सब इस समय सौभाग्य में जीवित रह कर रचना-कार्य करती ही जा रही हैं। ऐसी दशा में हमको उनकी सुप्रतिभा से अभी और भी बड़ी बड़ी आशायें हैं। प्राचीन नियमानुसार जीवित कवियों की आलोचना करना भी अच्छा नहीं कहा गया। वास्तव में जब तक कोई कवि

आवित रह कर रचना-कार्य निरंतर करता जाता है तब तक यह निरिच्छ रूप में नहीं कहा जा सकता कि उसका प्रतिभा किस काटि की है। यह केवल तथा साध्य ण्य टीक होती है जब उसकी प्रतिभा के विकास की संभावना न रह जाय और उसके रचना-कार्य की सदा के लिए इतिथी हो जाय। वनमान समय के सदानाका में जो कवयित्रियाँ सुन्दर रचनाएँ कर रहा हैं यद्यपि उनकी आकाशना करना अच्छा प्रयत्न होता है तथापि हम इया आया स कि उनकी सुप्रतिभा ने पूरा रूप से प्रस्तुति होकर सभी कोई ऐसा सुन्दर पुस्तक नहीं रच सा है जिसका विषय आकाशना की जा सक और जिसमें कि उनकी रचना की अग माना जाकर उनका निरिच्छ रूप निधारित किया जा सके। जो कुछ भा रचनाएँ अब तक इन महिलाओं ने उपस्थित की हैं वे बहुत ही सतार-मर और आशाजनक हैं।

## पुस्तक-परिचय

हमें अत्यन्त प्रसन्नता है कि आज यह दिन आ गया जब हमें अपने साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी में लियों के उस काव्य-साहित्य के भी शुभागमन का स्वागत करने का अवसर मिल रहा है। आज तक जहाँ तक हम जानते हैं हमारे किसी भी विद्वान लेखक ने हम ओर ध्यान नहीं दिया था। अर्द्ध शताब्दी के अनेकों विद्वानों ने अपने विनाश के कुछ परम प्रधान श्रियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है तथा मुझा दयामनाद मुनि ने भी कुछ शब्द कहा है। इनके सिवा किसी भी हिन्दी-साहित्य

के इतिहास-लेखक ने स्त्रियों के रचना-कार्य का उल्लेख नहीं किया। साहित्य-इतिहास-मूलक कुछ अच्छे ग्रंथ जो आधुनिक समय में प्रकाशित किये गये हैं वे भी स्त्री साहित्य की ओर उपेक्षा की दृष्टि रखते हैं। 'कविता-कौमुदी' आदि ग्रंथों में कहीं कहीं मीरा, सहजो और दया जैसी देवियों की थोड़ी सी रचनाएँ दे दी गई हैं और वे भी एक साधारण दृष्टि से। स्त्रियों का रचना-कार्य जैसा कि इस लेख से स्पष्ट हो गया होगा अपना एक महत्व-पूर्ण स्वतन्त्र इतिहास रखता है और एक स्वतन्त्र विषय बनकर एक बड़े ग्रंथ की आवश्यकता दिखलाता है।

मित्रवर निर्मल जी ने, यद्यपि मित्र के नाते हमें न कहना चाहिए, अपने इस सुन्दर ग्रंथ से स्त्री-साहित्य के इतिहास का मार्ग खोल दिया है। जिस पर हम आशा करते हैं कि हमारे खोज करने वाले सुयोग्य लेखक इस अंग की पूर्ति करने का प्रयत्न करेंगे। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में अपने ढंग का यह ग्रंथ अप्रतिम है। न केवल सूपम जीवनी और सुन्दर रचनाएँ ही इसमें संग्रहीत की गई हैं वरन् प्रत्येक देवी की रचनाओं की मार्मिक और सूपम आलोचना भी जीवनी के साथ साथ कर दी गई है जिससे ग्रन्थ का महत्व और भी बढ़ गया है। अन्त में 'कुसुम-माला' के नाम से जो नवोदित कवयित्रियों की रचनाओं का संग्रह किया गया है वह उन्हें प्रोत्साहित करता हुआ रचना-कार्य के पथ पर अग्रसर करने की क्षमता रखता है। ग्रन्थ और भी उपादेय बनाया गया है उस शब्द कोष से, जो पुस्तक के अंत में 'परिशिष्ट' के रूप में दिया गया है। यत्र-तत्र टिप्पणियों के रूप में इतिहास-मूलक

जीवित रह कर रचना-कार्य निरंतर करता जाता है तब तक यह निरिच्छत रूप में नहीं कहा जा सकता कि उसकी प्रतिभा किम कोटि की है। यह केवल तभी साध्य जब ठीक होती है जब उसकी प्रतिभा के विकास की संभावना न रह जाय और उसके रचना-कार्य की मर्यादा के लिए इतिधा हो जाय। वर्तमान समय के खदीमोखी में जो बचपित्रियाँ सुन्दर रचनाएँ कर रहा हैं यद्यपि उनकी आलोचना करना अच्छा प्रतीत होता है तथापि हम इसा आशा से कि उनकी सुप्रतिभा ने पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होकर अभी कोई ऐसी सुन्दर पुस्तक नहीं रच दी है जिसकी विषय आलोचना की जा सके और जिससे कि उनकी रचना का अम माना जाकर उसका निरिच्छत रूप निधारित किया जा सके। जो कुछ भी रचनाएँ अब तक इन महिलाओं ने उपरिष्कृत की हैं वे बहुत ही सतोष प्रद और आशाजनक हैं।

## पुस्तक-परिचय

हमें अत्यन्त प्रसन्नता है कि आज यह दिन आ गया जब हमें अपने साहित्य के क्षेत्र में दिव्यी में स्त्रियों के उस काव्य-साहित्य के भी शुभागमन का स्वागत करने का अवसर मिल रहा है। आज तक यहाँ तक हम जानते हैं हमारे किसी भी विद्वान लेखक ने इस छोटे स्थान नहीं दिया था। अद्वैत मिश्रब्रह्मा ने अपने विनोद में कुछ परम प्रधान दृष्टियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है तथा मुन्शा दवीप्रसाद मुस्लिम ने भी कुछ खोज की है। इनके सिवा किसी भी हिन्दी-साहित्य

के इतिहास-लेखक ने स्त्रियों के रचना-कार्य का उल्लेख नहीं किया। साहित्य-इतिहास-मूलक कुछ अच्छे ग्रंथ जो आधुनिक समय में प्रकाशित किये गये हैं वे भी स्त्री साहित्य की ओर उपेक्षा की दृष्टि रखते हैं। 'कविता-कौमुदी' आदि ग्रंथों में कहीं कहीं मीरा, सहजो और दया जैसी देवियों की थोड़ी सी रचनाएँ दे दी गई हैं और वे भी एक साधारण दृष्टि से। स्त्रियों का रचना-कार्य जैसा कि इस लेख से स्पष्ट हो गया होगा अपना एक महत्व-पूर्ण स्वतन्त्र इतिहास रखता है और एक स्वतंत्र विषय बनकर एक बड़े ग्रंथ की आवश्यकता दिखलाता है।

मित्रवर निर्मल जी ने, यद्यपि मित्र के नाते हमें न कहना चाहिए, अपने इस सुन्दर ग्रंथ से स्त्री-साहित्य के इतिहास का मार्ग खोल दिया है। जिस पर हम आशा करते हैं कि हमारे खोज करने वाले सुयोग्य लेखक इस श्रंग की पूर्ति करने का प्रयत्न करेंगे। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में अपने ढंग का यह ग्रंथ अग्रतिम है। न केवल सूक्ष्म जीवनी और सुन्दर रचनाएँ ही इसमें संग्रहीत की गई हैं वरन् प्रत्येक देवी की रचनाओं की मार्मिक और सूक्ष्म आलोचना भी जीवनी के साथ साथ कर दी गई है जिससे ग्रन्थ का महत्व और भी बढ़ गया है। अन्त में 'कुसुम-माला' के नाम से जो नवोदित कवयित्रियों की रचनाओं का संग्रह किया गया है वह उन्हें प्रोत्साहित करता हुआ रचना-कार्य के पथ पर अग्रसर करने की क्षमता रखता है। ग्रन्थ और भी उपादेय बनाया गया है उस शब्द कोष से, जो पुस्तक के अंत में 'परिशिष्ट' के रूप में दिया गया है। यत्र-तत्र टिप्पणियों के रूप में इतिहास-मूलक

सो यानें लिखी गई हैं वे पाठकों को महिला-साहित्य के विषय में खोज करने की ओर प्रोत्साहित करती हैं। उनमें मार्मिकता और विचार शीलता का अत्यन्त आभास है। समग्रतः रचनायें भा एसी हैं का अपनी पूरा महत्ता और उल्लेखनीयता रखता हैं। सभी उदाहरण शिष्ट सुन्दर, रोचक और सुपाठ्य हैं। साथ ही वे उन सब विरापताओं को सूचित करते हैं का भिन्न भिन्न दृष्टियों में पाई जाती हैं।

अन्त में इस सुन्दर और सराहनीय ग्रन्थ के लिए हम प्रसन्नता प्रगट करते हुए यह आशा रखते हैं कि हमारे हिन्दी-भक्तों के भावुक पाठक इसका पूर्ण रूप से सम्मान करेंगे साथ ही वे इस पर विचार करते हुए स्त्री-साहित्य की ओर विशेष ध्यान देंगे। यहाँ हमें अपनी बहनों से यह आग्रह निवेदन करना भी अनिवार्य जान पड़ता है कि वे इस ग्रन्थ से सहायता लेते हुए, इसका पूर्ण अध्ययन करके, इसी की शैली से अपने स्त्री-साहित्य का अभ्येष्ट और विराप विवेचन करने का प्रयत्न करें और इस प्रकार इसका रक्षा करते हुए भावी सभ्यता के लिए एक स्थापना स्त्री-साहित्य का स्वतन्त्र भास्तिन्व प्रदान करें, आशा है।

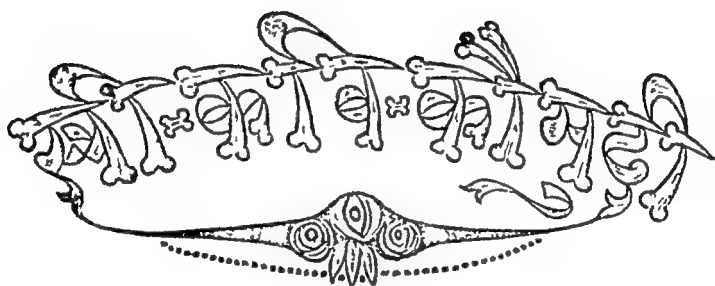
प्रकाश  
२० १ १ १

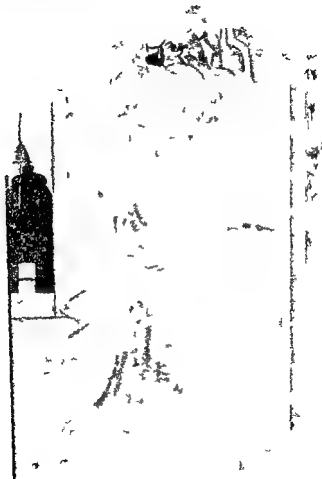
}

विद्वज्जन कृपाकाशी

रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०







मरे वा गिरिधर गांपान दूसरा न बाइ ।

## मीराबाई

**मी**राबाई जोधपुर, मंडता के राठौर रतनसिंह की एक लौटी बेटी थी। इनका जन्म चौकडी नामक ग्राम में हुआ था। इनका विवाह सम्वत् १५७३ में मेराड़ के प्रसिद्ध महाराणा गीमोदिया-कुल-भूपण भोजराज के साथ हुआ था। इनके जन्म और मृत्यु के सम्वत्तों का ठीक ठीक पता नहीं चलता। स्वर्गीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का कहना है कि मीराबाई सम्वत् १६२० और १६३० में मरी होंगी।

मीराबाई का समय क्या है? इस विषय में बड़ा मतभेद है। गुजराती साहित्य में भी मीराबाई के जन्म-मृत्यु के समय के सम्वन्ध में घोर मतभेद चला आ रहा है। मीराबाई के सम्वन्ध में 'मिश्रबधु' लिखते हैं, "ये बाई जी मेड़तिया के राठौर रतनसिंह जी की पुत्री, राय ईंदा जी की पौत्री और जोधपुर में बसनेवाले प्रसिद्ध राव जोवा जी की प्रपौत्री थी। इन्होंने संवत् १५७३ में चौकडी नामक ग्राम में जन्म लिया और इनका विवाह उदयपुर के महाराणा कुमारभोज राज के साथ हुआ। मीराबाई का देहान्त झारिका जी में सं० १६०३ में हुआ। पहले बहुतों का मत था कि मीराबाई राजा कुम्भकारण की स्त्री थीं, और बाई जी का जन्मकाल सं० १४७५ का लोग मानते थे। परन्तु जोधपुर के

दिया। वे मीरा को गोपाल की भक्ति तथा सन्तों की संगति से अलग रखने का उपचार किया करती थीं। किन्तु इनके हृदय पर साधु-संगति का ऐसा गहरा रंग चढ़ गया था कि लाख कोशिश करने पर भी महाराणा विक्रमादित्य सिंह इनका हृदय घर-गृहस्थी की ओर न फेर सके। विक्रमादित्य सिंह ने मीरा के लिए विप का प्याला भेजा किन्तु वे उसे चरणामृत समझ कर पी गईं। कहते हैं कि इनके शरीर में विप का कुछ भी असर न हुआ। विक्रमादित्य सिंह ने साम, दाम, दंड, भेद सभी से मीरा को घर लौट आने के लिए मजबूर किया किन्तु उन्हें सफलता न मिली। मीरा को अपने देवर पर बहुत दुःख हुआ। उन्होंने एक दिन महारामा तुलसीदास को इसी सबन्ध में यह पद लिख कर भेजा —

श्रीतुलसी सुख निधान दुख हरन गुसाईं ।  
 वारहिं वार प्रनाम करूँ अब हरो सोक समुदाई ॥❧  
 घर के स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बढ़ाई ।  
 साधु सग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई ॥  
 बाल पने ते मीरा कीन्हीं गिरधर लाल मितार्ई ।  
 सो तो अब छूटत नहि क्यो हूँ लगी लगन वरियाई ॥

---

❧ यहाँ इकार को सानुस्वार होना चाहिये था। क्योंकि प्रथम तुक में सानुस्वार इकार ही आया है। मालूम होता है कि मीरा के समय में तुक के इस सूक्ष्म साम्य पर ध्यान नहीं दिया जाता था।

मेरे पात पिता के सम हो हरि भक्तन सुखदाई ।  
 हमको कहा उचित करियो है सो लिखियो समुझाई ॥  
 इस पद के उपर में गोरशामी तुलसादास जी ने उन्हें यह ॥ शिष्य  
 भेजा—

जाके प्रिय न राम वैदेही ।

तजिये ताहि कोटि पैरी सम यद्यपि परम सनेही ॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण वधु, भक्त महतारी ।

बलि गुरु, तज्यो कन प्रज वनितन, मे सध भगलकारी ॥

नातों नेह राम से अनियत सुहृद सुमेख्य जहाँ लीं ।

अजन कहा आँख जो फूट बहुतक कहीं कहीं लीं ॥

तुलसी मो सध भावि परम हिय पूज्य भानवें प्यारो ।

जासों होय सनेह रामपद याही मतो हमारो ॥

गोस्वामी जी का यह उत्तर पाने पर भागबाई जी वित्तोद मोदकर  
 रोका खड़ी गई ।

यहाँ भी मीराबाई का मन न लगा तब वे मैदता से बुन्दारन खड़ी  
 भाई । यहाँ मीराबाई ज्योत गोस्वामी का दर्शन करने गई । उन्होंने  
 कहा ॥ हम शिष्यों छ नहीं मिलते । मीराबाई ने कड़वा भेजा—'मैं  
 नहीं जानती थी कि गिरधरादास के सिवा यहाँ और भी पुण्ड हैं । यह  
 मुनते ही जान गोस्वामी जंगे पैर बाहर आकर भागबाई को सत्कार के साथ  
 भीतर ले गये । बुन्दारन में कुछ दिन रह कर मीराबाई द्वारका खड़ी  
 गई । महाराणा विक्रमादित्य मिह ने कई भक्तों को मीराबाई के छे जाने

को द्वारका भेजा किन्तु वे वहाँ से न लौटीं । भक्तों का कहना है कि ये श्री रणछोड़ जी के मन्दिर में गईं और वहीं उसी मूर्ति में समा गईं ।

मीराबाई के पद भक्ति रस से परिपूर्ण हैं । इनके पद शायः सभी मन्दिरों और गांवों में बड़े प्रेम से गाये जाते हैं । इनके हृदय में गिरधर गोपाल का आगध प्रेम था । ये गोपाल की मूर्ति के सामने नाचतीं, गातीं और इन्हीं की सेवा सुश्रुषा में जीन रहती थीं । महाकवि देव जी ने इनके सम्बन्ध में एक कवित्त लिखा है :—

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,

कोई कहौ रंकिनी कलंकिनी कुनारी हौं ॥

कैसो परलोक नरलोक वरलोकन में,

लौन्हों मैं असोक लोक लोकन ते न्यारी हौं ॥

जन्म जाहि मन जाहि 'देव' मुकुजन्म जाहि,

जीव क्यों न जाहि टेक टरन न टारी हौं ॥

वृन्दावन वारी बनवारी के मुकुट पर,

पीत पट वारी वाहि मूरति पै वारी हौं ॥६६

मीराबाई ने कई ग्रन्थ बनाये हैं । उनमें से 'नरसीजी का मायरा' भी एक है ; इसे मुंशी देवीप्रसाद जी ने देखा था । दूसरा ग्रन्थ 'गीत गोविन्द की टीका' है । तीसरा ग्रन्थ 'राग गोविन्द' है । इनके भजनों का

६ कुछ लोगों का कहना है कि यह छंद मीराबाई का ही रचा हुआ है ।

३

पिय इतनी बिनती सुण मोरी, कोइ कहियो रे जाय ॥  
 औरन सूँ रस-वतियाँ करत हौ, हमसे रहे चित चोरी ।  
 तुम बिन मेरे और न कोई मैं सरनागत तोरी ॥  
 आवण कह गये अजहुँ न आये दिवस रहे अब थोरी ।  
 मीरा कहै प्रभु कब रे मिलोगे अरज करूँ कर जोरी ॥

४

मेरा वेड़ा लगाय दीजो पार प्रभु जी अरज करूँ हूँ ॥  
 या भव में मैं बहु दुख पायो संसा सोग निवार ।  
 अष्ट करम की तलब लगी है दूर करो दुख भार ॥  
 यों संसार सब बह्यो जात है लख चौरासी धार ।  
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर आवागमन निवार ॥

५

म्होंरो जनम मरन को साथी,  
 थों ने नहिं विसरूँ दिन राती ।

तुम देख्यो बिन कल न परत है जानत मेरी छाती ।  
 ऊँची चढ़ा चढ़ पंथ निहारूँ रोय रोय अँखियाँ राती ॥  
 यां संसर सकल जग मूठो मूठा कुलरा नाती ।  
 दोउ कर जोड़्यो अरज करत हूँ सुण लीजो मेरी वाती ॥  
 ये मन मेरो बड़ो हरामी ज्यूँ मदमातो हाथी ।  
 सत गुरु दस्त धखो सिर ऊपर आँकुस दै समझाती ॥

८

हेरी में तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जाणे कोय ।  
 सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोणा होय ॥  
 नभ मंडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलणा होय ।  
 घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय ।  
 जौहरी की गति जौहरी जानै, की जिन जौहर होय ।  
 दरद की मारी बन बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोय ।  
 मीरा की प्रभु पीर मिटेगी, जब वैद सँवलिया होय ॥

९

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊं बाटड़ियाँ ।  
 दरसण बिन मोहिं पल न सुहावै, कल न पड़त है आँखड़ियाँ ॥  
 तलफ तलफ के बहु दिन बीते, पड़ी विरह की फाँसड़ियाँ ।  
 अब तो बेगि दया कर साहब, मैं हूँ तेरी दासड़ियाँ ॥  
 नैण दुखी दरसण को तरसै, नाभि न बैठै साँसड़ियाँ ।  
 रात दिवस यह आरत मेरे, कब हरि राखै पासड़ियाँ ॥  
 लगी लगन घूटण की नाहीं, अब क्यों कीजै आटड़ियाँ ।  
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर, पूरौ मन की आसड़ियाँ ॥

१०

पायो जी, मैने नाम रतन धन पायो ।  
 वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो ॥



जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी रोवायो ।  
 खरपै नहिं कोई खोर न लेवै, दिन दिन बढ़त सवायो ॥  
 रात की नाव खेवदियों सतगुरु अबमागर तर आयो ।  
 भीरा के प्रभु गिरधर नागर हरख हरख जस गायो ॥

११

बसो मेरे नैनन म नैंदलाल ।  
 मोहनो भूरति सौवरि सूरति नैना बने बिसाल ।  
 अघर-मुधा रस मुरली राजित घर पैजन्ती भाल ॥  
 पुत्र पटिका कटितन सोभित नूपुर मन्द रसाल ।  
 भीरा प्रभु सतन सुखदाई, भक्त बल्लल गोपाल ॥

१२

करम गति दारे नाहिं टरे ।  
 सतवादी हरिचँद मे राजा नीच घर नीर भरे ।  
 पाँच पाहु अरु कुती ग्रीपदि हाइ हिमालय गरे ॥  
 जग किया बलि लेख इन्द्रासन सो पाताल घरे ।  
 भीरा के प्रभु गिरधर नागर विष से अमृत करे ॥ ॐ

१३

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ।  
 दूसरो न कोई साधो सकल लोक जोई ॥

---

ॐ ऐसा ही पद आ० मुरदाभ और श्रीकृष्णरहस्य भी कहा जाना है ।

भाई छोड्या वंधु छोड्या छोड्या सगा सोई ।  
 साधु संग बैठ बैठ लोक-लाज खोई ॥  
 भगत देख राजी भई जगत देख रोई ।  
 असुवन-जल साँच साँच प्रेम वेलि वोई ॥  
 दधि मथ घृत काढ़ लियो डार दर्ई छोई ।  
 राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगण होई ॥  
 अब तौ घात फैल गई जाणे सब कोई ।  
 मीरा राम लगण लागी होणी होय सो होई ॥

१४

मीरा मगन भई हरि के गुन गाय ।  
 साँप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय ।  
 न्हाय-धोय जब देखन लागी सालिगराम गई पाय ॥  
 जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह वनाय ।  
 न्हाय-धोय जब पीवण लागी हो गई अमर अँचाय ॥  
 सूल सैज राणा ने भेजी दोज्यो मीरा सुनाय ।  
 साँभ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल विछाय ॥  
 मीरा के प्रभु सदा सहाई राखे विघन हटाय ।  
 भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पै बलि जाय ॥

१५

नहिं ऐसो जनम बारम्बार ।  
 क्या जानूँ कछु पुन्य प्रगटे मानुसा अवतार ॥

कहा भयो तीरथ व्रत कोन्हें कहा लिए करवट कासी ॥  
 इहि देही का गरव न करना माटी में मिलि जासी ।  
 यों संसार चहर की बाजी, सांझ पड्या उठ जासी ॥  
 कहा भयो है भगवा पहिन्यों घर तज भये सन्यासी ।  
 जोगी होय जुगति नहि जानी उलट जनम फिर आसी ॥  
 अरज करों अबला कर जोरे स्याम तुम्हारी दासी ।  
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर काटो जम की फौंसी ॥

१९

म्होरे घर आयो प्रीतम प्यारा ।

तन मन धन सब भेंट करूँगी भजन करूँगी तुम्हारा ।  
 वो गुणवंत सुसाहिव कहिए मोमें औगुण सारा ॥  
 मैं निगुणी गुण जानू नार्हीं वैछो बगसण सारा ।  
 मीरा कहै प्रभु कवहिँ मिलोगे तुम बिन नैण दुखारा ॥

२०

हे री मोसूँ हरि बिन रह्यो न जाय ।

सासू लड़े, रीस जनावे ननदी पिव जी रह्यो रिसाय ।  
 चौकी मेलो भले ही सजनी ताला द्योन जडाय ।  
 पूर्व जन्म की प्रीति हमारी सो कहँ रहे लुकाय ।  
 मीरा कहे प्रभु गिरधर के बिन दूजौ न आवै दाय ।

२१

प्रभू जी थे कहाँ गयो नेहड़ी लगाय ।

मैं तो दाधी विरह की रे काहे कूँ औखद देय ॥  
 मांस गलि गलि छीजिया रे करक रखो गल मांहि ।  
 आँगुरियों से मूँदड़ी म्हाँरे आवन लागी बांहि ॥  
 रहु रहु पापी पपीहा रे पिव को नाम न लेय ।  
 जे कोइ विरहिन साम्हले तो पिव कारन जिव देय ॥  
 खिन मंदिर खिन आँगने रे खिन खिन ठाढ़ी होय ।  
 घायल ब्यूँ घँमू खड़ी म्हाँरी विथा न बूझे कोय ॥  
 काटि करेजो मैं धरूँ रे कौआ तू ले जाय ।  
 ज्यों देसों म्हाँरो पिव वसै रे वे देखत तू खाय ॥  
 म्हाँरे नातो नाम को रे और न नातो कोय ।  
 मीरा व्याकुल विरहिनी रे पिय दरसन दीजो मोय ॥

२४

गोहने गोपाल फिरूँ ऐसी आवत मन में ।  
 अवलोकत बारिज वदन विवस भई तन में ॥  
 मुरली कर लकुट लेउँ पीत वसन धारूँ ।  
 आछी गोप भेष मुकुट गोधन सँग चारूँ ॥  
 हम भई गुल काम-लता वृन्दावन रैनौं ।  
 पसु पंछी मरकट मुनी शुवन सुनत वैनौं ॥  
 गुरुजन कठिन कानि, कासों री कहिये ।  
 मीरा प्रभु गिरिधर मिलि ऐसे ही रहिए ॥

२५

वेरा कोई नहिं रोकनहार, मगन होय मोरा बली ॥  
 लाज सरम कुल की मरजादा, सिर से दूर करी ।  
 मान अयमान दोऊ घर बटके, निकसी ॥ जान-बानी ॥  
 रूँपो अठरिया, लाल कियदिया, निरगुन सेज बिछी ।  
 पैचरगी मालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली ॥  
 बाजूबद बहूला सोहै, सेंदुर माँग मरी ।  
 सुमिरन भाल हाथ में लौन्हा, सामा अधिक मली ॥  
 सेज मुखमणा मोरा सोवै, सुभ है आज घरी ।  
 तुम जाओ राणा घर अपने, मेरी बेरी नाहिं सरी ॥

२६

दरस निन वृत्तन लागे नैन ।  
 जब तें तुम बिहारे पियप्यारे, कबहुँ न पायों नैन ॥  
 सबद सुनत मेरी छतिया कौंवे, मोठे लागें नैन ।  
 एक टकटकी पथ निहारूँ, भई छमासो रैन ॥  
 भिरह विधा कौंसू कहूँ सजनी, बह गई करबत ऐन ।  
 मोरा के प्रभु कब हो मिलोगे, दुखमेदन सुखदेन ॥

२७

सखी, मोरी नींद नमानी, हो ।  
 पिय को पथ निहारत सिगरी रैन बिहानी, हो ॥  
 सब सखियन मिलि सीस दई, मन एक न मानी, हो ।

## ताज

**ता**ज नाम की एक स्त्री-कवि हो गई हैं। इनमें प्रगाढ़ कृष्ण-भक्ति थी। इनके जन्म और मृत्यु के संवत्तों का ठीक ठीक पता अभी तक नहीं चला है। सिहोर, रियामत भावनगर निवासी गुजराती और हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक गोविन्द-गिल्ला भाई के पास इनके सैकड़ों छंद लिखे हैं। किन्तु उनको भी ताज कवि के सम्यन्ध में कोई प्रमाणिक बात नहीं मालूम है। शिवसिंह सरोज में, इनका जन्म संवत् १६५२ लिखा है। मुंगी देवीप्रसाद जी ने सं० १७०० के लगभग इनका समय माना है। ये जाति की मुसलमान थी। हमने गोविन्द-गिल्ला भाई से इनके विषय में पत्र व्यवहार किया था। उन्होंने हमारे पास ताजकी कई कवितायें भेजी हैं। किन्तु इनकी जीवनी पर कुछ विशेष प्रकाश नहीं ढाला। गोविन्द-गिल्ला भाई इन्हें करौली राज्य में होना मानते हैं। आप अपने ११-१२-२५ के पत्र में लिखते हैं :—

“ताज नाम की एक मुसलमान स्त्री-कवि करौली ग्राम में हो गई है। वह नहा-धोकर मंदिर में भगवान का नित्यप्रति दर्शन करती थी; इसके पश्चात् भोजन ग्रहण करती थी। किन्तु एक दिन वैष्णवों ने

उसे विधर्मिणी समझ कर मंदिर में दर्शन करने से रोक दिया । इससे ताज उस दिन उपवास करके मंदिर के आँगन में ही बैठा रह गई और वृष्ण के नास का जप करती रही । जब रात हो गई तब ठाकुर जी स्वयं मनुष्य के रूप में भोजन का थाल लेकर ताज के पास आये और कहने लगे— तुने आज ज़रा सा भी प्रसाद नहीं खाया, ले भब हुने ला । कल प्रात काल जब सब वैष्णव आवें तब उनस कहना कि— तुम लोगों न मुझ कल ठाकुर जी का प्रसाद और दर्शन का सौख्य नहीं दिया, इसने आज रात को ठाकुर जी स्वयं मुझे प्रसाद दे गये हैं और तुम लोगों को अदेश कह गये हैं कि ताम को परम वैष्णव समझो । इसके दर्शन और प्रसाद ग्रहण करने में शकस्त कमा मत बालो । नहीं ता ठाकुर जी तुम लोगों से माराज हो जावेंगे । प्रात काल जब सब वैष्णव आवे तो ताज ने सारी बातें उनस कह सुनाई । ताम के सामने भोजन का थाल रक्खा दम्भ कर के अग्र्यन्त चकित हुए । ये सभी वैष्णव ताज के पैर पर गिर पड़े और चमा प्रार्थना करने लगे । तब से ताम प्रतिदिन भगवान का दर्शन करके प्रसाद ग्रहण करने लगा । पहले ताम मंदिर में जाकर ठाकुर जी का दर्शन कर आती थी तब और दूसरे वैष्णव दर्शन करने आते थे ।

“ताम कवि परम वैष्णव और महा भगवद्भक्त थी । वही ठाकुर जी की कृपा से यह कवि हो गई । जब मैं करीबी गया था, तब बनेक वैष्णवों के मुख से मैंने यह बात सुनी थी । वही मैंने इनकी अनेकों कविता भी सुनी । उसी समय मैंने इनकी कितनी ही

कवितायें लिख भी ली थीं। ताज की दो सौ कविता मेरे हाथ की लिखी हुई मेरे निजी पुस्तकालय में हैं।” ❀

गोविन्द-गिल्ला भाई

सिहोर

भावनगर-राज्य

मथुरा के कविराज चौबे नवनीत अभी मौजूद हैं। वे पहले प्रायः फाँकरोली (मेवाड़) में रहते थे। उनका कहना है कि “ताज एक मुसलमान स्त्री-कवि थी और पंजाब की रहने वाली थी। कृष्ण से प्रेम हो जाने पर कविता की ओर इसका ध्यान हो गया था।”

अनेक सज्जनों का यह अनुमान है कि शाहजहाँ बादशाह की बेगम ताजगीबी (मुमताज महल) ‘ताज’ नाम से कविता लिखती थी। इसी प्रकार अनेक दंतकथायें ताज कवि के सम्बन्ध में सुनी जाती हैं किन्तु कोई बात प्रमाणिक नहीं जँचती।

ताज कवि पंजाब निवासिनी थी, और मुसलमानिन थीं, इस पर तो किसी को भी सदेह नहीं हो सकता। क्योंकि इस बात का पता उसके निम्नलिखित कवित्त से चलता है। इस पद्य की भाषा भी सिद्ध करती है कि यह पंजाब की ही रहने वाली थी। कवित्त यह है :—

---

❀ दुःख है कि श्री गोविन्द-गिल्ला भाई का सन् १९२६ में देहान्त हो गया।



२

कालिन्दी के तीर नीर-निकट कदम्ब कुंज,  
 मन कछु इच्छा कीनी सेज सरोजन की ।  
 अन्तर के यामी कामी कँवल के दल लेकें,  
 रची सेज तहाँ शोभा कहा कहौं तिनकी ॥  
 तिहिँ समै 'ताज' प्रभु दंपति मिले की छवि,  
 वरन सकत फोऊ नाहीं वाहि छिन की ।  
 राधे की चटक देखे अंखिया अटक रहीं,  
 मोन को मटक नाहिँ साजत वा दिन की ॥

३

चैन नहीं मनमें न मलीन सुनैन भरे जल में न तई है ।  
 'ताज' कहै परयंक यों वाल ज्यो चंपकी माल बिलाय गई है ॥  
 नेकु बिहाय न रैन कछु यह जान भयानक भारि भई है ।  
 भौन में भानु समान सुदीपक अंगन मे मनो आगि दई है ॥



## खगनिया

**ख**गनिया जिला इलाक़ में रणधीन पुरग नामक ग्राम की रहने वाली थी। इसके पिता का नाम बासू था और जानि की तेलिन थी। यह पढ़ी लिखी तो विशेष रूप से नहीं थी किन्तु पहेलियाँ बनाने में बड़ी प्रवीण थी। इसकी पहेलियों को साधारण लोग बहुत पसन्द करते हैं। बहुत से लोग इसकी पहेलियाँ सुनकर इससे लिख ले जाते थे और उन्हें कम्प्य कर लेते थे। आज भी कितने ही लोगों को खगनिया की पहेलियाँ कम्प्य हैं। उसार के एक सहृदय मित्र न खगनिया की कुछ पहेलियाँ हमारे पास भेजा हैं। उन्होंने खगनिया के सम्बन्ध में यह छंद भी लिख भेजा है —

सिर दै लिण तल की मेटी,  
धूमति हौं तेलिन की बटी।  
यहाँ पहेला बहले दिया,  
मैं हौं बासू केर खगनिया ॥

इसन ग्रामीण भाषा में कविता लिखी है। इसकी पहेलियाँ यदि थोड़ा दृष्टि से तो अत्यन्त साधारण हैं किन्तु उनमें कुछ ऐसा रस है जो सभी लोगों को पसन्द आता है। इसन अपनी पहेलियों में अपने पिता का भी नाम रखता है। समार में बहुत से तर्की और तेलिन हो गई हैं किन्तु उनमें खगनिया का नाम आज भी अमर है। इसका समय

सं० १६६० विक्रमी के लगभग माना जा सकता है । इसकी कुछ पहेलियाँ हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

१

झाधी हाथ हथनियाँ कौंधे, चले जात हैं वरुचा बाँधे ॥

गज

२

आधा नर आधा मृगराज, युद्ध विआहे आवे काज ।  
आधा टूट पेट में रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

नरसिंह

३

लम्बी चौड़ी आँगुर चारि, दुहो ओर तें डारिनि फारि ।  
जीव न होय जीव को गहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

कंधी

४

चारि पाँव बाँधे ते मोटि, अपने दल मां सवतें छोडि ।  
दुखी सुखी सवके घर रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

चोली

५

भीतर गूदर ऊपर नांगि, पानी पियै परारा मांगि ।  
तिहिं की लिखी करारी रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

दावात

६

धाम्हन ग्यावै पटवा फार, लाली है रगति बहि क्यार ।  
नेरे नहा दूर भौ रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

कचौरी

७

रहत पातौंगर बाके काधे, गुजत पुहुपन पै मन साधे ।  
फारा है पै रस को गहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

भौरा

८

तिगिया धूमि एक अनोखी, बाल चलति है चलनल बाजी ।  
मरना जीना तुरत बताय, नेकु न अजहु पानी प्याय ।  
हाथन भौ है भारे गहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

नाही

९

इक नारी है मोहक नगी, मटपट बन जाती है जगी ।  
रकत पियासी खासी रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

गलवार

१०

कोऊ बाको नेकु न प्याय, सब ही बाको लेंय मुनाय ।  
पास सबहि के हो बह रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

रुपया

११

चुप्पी साधे नेकु न घोले, नारी वाफी गाठें खोले ।  
 दरवाजन माँ ऐसेन लटके, चोरन तें स्वावत घेखटके ॥  
 रच्छा घर की करता रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

ताला

१२

आँखिन माँ सब लेंय लगाय, लरिका वाते हैं सुख पाय ।  
 तनुक न ऊजर कारो रहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

काजल

१३

दुइनों एक अजीब अनोखी, बड़ी करारी रगति चोखी ।  
 जाते ये दोनों लग जातीं, बिनु देखे नहिं बाहि अघाती ॥  
 बिना न याके जीवन रहै, वासू केरि खगनिया कहै ।

आँख

१४

पटियाँ आँखिन माँ बंधवावैं, कोल्हू माँ हैं बाहि चलाव ।  
 मौन रहे पै विपदा सहै, वासू केरि खगनिया कहै ॥

कोल्हू का बैल



## शेख

**शेख** गान्धि की मुसलमान थी। इसका विवाह खालस नाम के एक मुकवि ॥ हुआ था। गुरु शिवमिह ने अपने शिवमिह सरान में खालस को सनातन मार्ग पर लिखा है और इसका जन्म सन् १७१२ में बताया है। ये श्रीरङ्गजेव के पुत्र शाहजादा मुहम्मद क शायर में रहा करते थे। खालस के जन्म-मरु के दो बार वर्ष पीछे शेर का जन्म माना जा सकता है। शेख के जन्म और मृत्यु का ठीक ठीक समय निश्चित ज्ञान नहीं हो सका है।

शेख रंगरत्न था। कपड़े रंगा करती थी। एक बार खालस ने, जब उनकी शेख से आज पहचान नहीं था, इसे अपनी पगड़ी रंगने का दी। भूल से एक कागज का टुकड़ा जिसमें खालस ने आधा दोहा लिखकर फिर किसी समय उस पूरा करने के लिए बोध दिया था, उसमें बंधा ही रह गया। पगड़ी रंगने समय शेख ने उस कागज के टुकड़े को खाल कर दिया। उसमें दोहे की एक पंक्ति लिखी थी —

“कनक घरी सी कामिनी काहे को कटि छीन।”

शेख ने इस दोहे की पूर्ति इस प्रकार कर दी —

“कटि को कचन काटि निधि, कुचन मध्य घरि दोन ॥”

शेख ने दोहे की पूर्ति करते, कपड़ा रंगने के बाद उस कागज को फिर उसी में बांध दिया। जब अखबार को यह पगड़ी मिली थी

उन्होंने दोहे की ऐसी सुन्दर पूर्ति देखी, तब वे तुरन्त शेख के घर पहुँचे । उन्होंने शेख को पगड़ी की रगई के अलावा कितनी ही अशक्तियाँ पुरस्कार में दीं । उसी दिन से दोनों में अगाध प्रेम हो गया । आलम ने मुसलमानी मत को स्वीकार करके शेख के साथ अपना विवाह कर लिया ।

भुंशी देवी प्रसाद जी ने भी इसी प्रकार की एक घटना लिखी है, वह इस प्रकार है :—

“एक दिन आलम अपनी पगड़ी हमें रंगने को दे गये । इसने रंगते समय उसके छोर में एक कागज़ का परचा बंधा देखा तो उसमें ये तीन पद नायक की प्रशंसा में लिखे थे :—

प्रेम रँग पगे जगमगे जगे जामिनि के,  
जोवन की जोति जगि जोर उमगत हैं ।

मदन के माते मतवारे ऐसे धूमत हैं,  
भूमत हैं मुकि मुकि भूँपि उघरत हैं ॥

आलम सा नवल निकार्ड इन नैननि कां,  
पाँखुरी पटुम पै भँवर थिरकत हैं ।

शेख ने उसके नीचे निम्नलिखित चौथा पद लिख कर कवित्त पूरा कर दिया :—

चाहत हैं उड़िवे को देखत मयंक-मुख  
जानत हैं रैन ताते ताहि में रहत हैं ॥

आलम ने ज्योंही चौथा चरण पढ़ा त्योंही वे प्रेम में मस्त होकर रंगरेजिन के घर आये । वह उस समय रोटी खा रही थी । उन्होंने

पूछा कि यह चौथा चरण किसने लिखा है तो वह हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और बोली कि साहब मैंने लिखा है। यह सुन कर आलम के हृदय में प्रेम और प्रमथना का हटना कुछ आवेश हुआ कि विरिमरुलाह कह कर उसके सग भोजन करने का बंट गये। इसके बाद विवाह होजाने पर दोनों चिरिचठ होकर का-उ-नस का मजा लेने लगे।”

आलम और रोज बड़े प्रेमी जीव थे। रात के एक पुत्र भी था उसका नाम था 'जहान'। एक दिन शाहजादा मुमताज ने रोज से मजाक में पूछा—“क्या आलम की धीरेत आप दाई है?” रोज ने उसी समय जवाब दिया—“हाँ जहाँपनाह जहान की माँ मैं दाई हूँ।” शाहजादा रोज का जवाब सुनकर बड़ा क्षणित हुआ। उसने रोज को बहुत सा धन दिया।

रोज और आलम का कविनामों का एक समूह 'आलम केलि' नाम का लाला भागवानदीनल की सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है। पुस्तक के अन्त में लिखा है—

“इति श्री आलम कृत कविव 'आलम केलि' समाप्तम्।” “सम्बद् १७२३ समये आरम्भ बड़ी बाण्नी बार शुक्र ॥”

इसके सिवा 'माधवानन्द काम कदली' नामक सरहृत्त ग्रन्थ का बहुत बाद भी इ-ही का किया हुआ बतलाया जाता है। किन्तु इस ग्रन्थ का

---

छेद है कि आलामा का १८७३ को काशी में स्वर्गावाप्त हो गया।



अभी तक पता नहीं चल सका है । “आलम-केलि” में आलम और शेख के ४०० छंद संग्रहीत हैं । छंदों में कविता और सर्वथा प्रधान हैं ।

आलम और शेख का सम्बन्ध प्रेम-भय था । इनके छंदों से साहित्य समझता सच्ची कृष्णभक्त और अनूठी प्रतिभा का परिचय मिलता है । हमारा विचार है कि ‘आलम’ की प्रतिभा से ‘शेख’ की प्रतिभा कुछ ऊँची है । लोग कहते हैं कि आलम, शेख के लिए मुसलमान हो गये । किन्तु हमारी राय में ‘आलम’ की सुसंगति पाकर ‘शेख’ कृष्ण-भक्ति के रंग में रंग कर वृत्तार्थ हो गई । सच्चे कवियों का कोई धर्म नहीं होता । वे तो धर्म के दिखाऊ बंधनों को तोड़कर सच्चे प्राकृतिक सौन्दर्यमय प्रेम-पथ के पथिक होते हैं । ‘शेख’ रंगरेजिन ही न थी वरन् ऐसा जान पड़ता है कि वह सच्चे प्रेम-रग में स्वयं रँगी हुई थी । वह बड़ी प्रतिभाशालिनी और हाज़िर जवाब थी ।

स्वर्गीय मुशो देवीप्रसाद जी के पुस्तकालय में आलम और शेख के ४०० छंद मौजूद हैं । इन दोनों का कविता-काल साधारणतः संवत् १७४० से सं० १७७० तक माना जाता है । हम यहां ‘शेख’ की कुछ चुनी हुई कविताएँ उद्धृत करते हैं :—

१

रात के उनींदे अलसाते मदमाते राते,

अति कजरारे दग तेरे यों सोहात हैं ।

तीखी तीखी कोरनि करोरे लेत काठे जिउ,

केते भये घायल औ केते तलफात हैं ॥

## स्त्री-करि-कौमुदी

६

जोगी कैसे फेरनि बियोगी आवै बार बार,  
 जोगी छै है तो लगि बियोगी विनलातु है ।  
 जा छिन ते निरखि किसोरी हरि लियो हेरि,  
 ता छिन ते खरोई धरोई पियरातु है ॥  
 'सेख' प्यारे अति ही बिहाल होइ हाय हाय,  
 पल पल अग की मरोर मुरझातु है ।  
 आन बाल होति तिहि तन प्यारी बलि बाहि,  
 बिरही जरनि ते निरख जरयो जातु है ॥

७

सीस फूल सीस धखो भाल टोका लाल जखो,  
 कछु सुक मगल में भेदु न बिचारि हौं ।  
 बेसरि की चूनी जोति सुटिला की दूनी दुति,  
 बीरनि के नागिन तरैयाँ ताकि वारि हौं ॥  
 'सेख' कहै स्याम विधु पून्यो को मो देखि मुख,  
 बुद्धि प्रिसरैगी बेगि सुधि न सँभारि हौं ।  
 मम के से नपत दुरैगे नहीं भ्यारे यारे,  
 दोपक दुराय तव दोपति निहारि हौं ॥

८

रस में प्रिरस जानि कैसे बसि कीजै आनि,  
 हा हा करि मो सों अब बोलि हो तो लरैगी ।

औरनि के आधे नाउँ आधो रैन दौरि जाउँ,  
 राधा जू के संग पै न आधौ डग भरौंगी ॥  
 'सेख' होत न्यारे ऐसी पीर लाये प्यारे तुम,  
 अबहीं हौं बिरह बखाने पीर हरौंगी ।  
 आज हू न ऐहै कोऊ कालि चलि जैहै सौँह,  
 परौं लगि हौं ही वाके पाँय जाय परौंगो ॥

९

मोती कैसी ढरनि ढरकि आवै नैना नेकु,  
 तुमैं ढौरी लागी जानौ गौरी ढरि आई है ।  
 'सेख' भनि ताकों हाय हाय करौं पाय परौं,  
 आय बाय ऐसी जीय कैसे करि आई है ॥  
 नेह नहीं नैननि सनेह नहीं । मन माहिं,  
 देह नहीं विकल वियोग जरि आई है ।  
 मूठे ही कहत परवस मखो जात हौं सु,  
 परवस नहीं वरवस वरिआई है ॥

१०

प्रीति की परनि वैरी बिरह की जीति भई,  
 हारे सब जतन जहाँ लौं जानियत है ।  
 वेदन घटै न बिघटी सी वहै जाति 'सेख',  
 आन आन भांति उपचार आनियत है ॥

केलि के अरम्भ खिन खेल के वड़ाइवे को,  
प्रोढ़ा जो प्रवीन सो नवोढ़ा है ढरति है ॥

१३

निरखैं निघाहैं तेई गोरी हैं कठोरी हम,  
चोरी ही में चाहैं पतझारी कैसे पात हैं ।  
'सेख' कहि एक बार कान्हार की खोरि आयें,  
ठौर रहै मानस, कठोर सोई गात हैं ॥  
मोहिनी से बोल कारे तारनु, की डोल मिली,  
बोल डोल दोऊ बटमारे बात बात हैं ।  
नैना देखें स्याम के ते वैना कैसे सुन माई,  
बना सुनैं तिनै कैसे नैना देखे जात हैं ॥

१४ ✓

निधरक भई अनुगवति है नन्द घर,  
और ठौर कहूँ टोहे हू न अहटाति है ।  
पौरि पाखे पिछवारे कौरे कौरे लागी रहें,  
आँगन देहली याहो बीच मँडराति है ॥  
हरि रस राती 'सेख' नेकहूँ न होइ हाती,  
प्रेम मदमाती न गनति दिन राति है ।  
जब जब आवति है तब कछु भूलि जाति,  
भूल्यो लेन आवति है और भूलि जाति है ॥

गाढ़े जु हिया के पिय ऐसी कौन गाढ़ी तिय,  
 गाढ़ी गाढ़ी भुजन सो गाढ़े गाढ़े गहे हो ॥  
 लाल लाल लोथन उनीद लागि लागि जात,  
 साँची कहौ 'सेख' प्यारे में तौ लाल लहे हो ।  
 रस बरसात सरसात अरसात गात,  
 आये प्रात कहौ वात रात कहाँ रहे हो ॥

१८

तुम निरमोही लोग औरै कछु वृम्भत हैं,  
 कहा एतौ वात को परेखो जिय मानिये ।  
 भावै सोई आवै जु वियोगी दुख पावै जातें,  
 परबस भये येती मनहि न आनिये ॥  
 अब नैना लागे भागे कैसे छुटियत है जू,  
 पैँडे के चलत सोई नीके पहिचानिये ।  
 नैननि के तारे तुम न्यारे कैसे होहु पीय,  
 पायन की धूरि हमें दूरि कै न जानिये ॥

१९

जुग है कि जाम ताको सरम न जानै कोऊ,  
 विरही की घरी और प्रेमी को जु पल है ।  
 'सेख' प्यारे कहियो सँदेसो ऊधो हरि आगे,  
 ब्रज वारिये को घरी घरी घृत जल है ॥

हाँसी नहीं नैसकु उकासी देत जोग तन,  
 बिरह बियोग म्हार औरै दावानल है ।  
 सिर सों न खेनै पग मेले न परे लौं जाय,  
 गिरि ॥ ते भारो यहाँ बिरह सबल है ॥

२०

मिटि गयो मौन पौन साधन को सुधि गई,  
 भूली जोग जुगति त्रिमाखा तप बन को ।  
 'सेख' प्यारे मन को बनारो भयो प्रेम नेम,  
 तिमिर अज्ञान गुन नास्यो बालपन को ॥  
 चरन कमल ही की लोचनि में लोच घरी,  
 रोचन हूँ राख्यो सोच भिटो धाम धन को ।  
 सोक लेस नेक ॥ कलेस को न लेस रखो,  
 सुमिर श्री गोकलेस गो कलेस मन को ॥

२१

पैंडो सम सूयो बड़ों कठिन किंवार द्वार,  
 द्वारपाल नहीं तहाँ सबल भगति है ।  
 'सेख' भनि तहाँ मेरे त्रिगुवन राख हैं जू,  
 दीन वधु स्वामी मुरपतिन को पति है ॥  
 बेरी को ॥ बैरु भरियार्ह को न परचेस,  
 होने को हटक नाहीं छीने को सकति है ।

हाथी की हँकार पल पाछे पहुँचन पावे,  
चाँदी की चिंधार पहिले ही पहुँचति है ॥

२२

जीत गई प्राननि अनीति भई भीति सब,  
बोति गयो औसर बनावै कौन बतिया ।  
ऊक भई देह धरि चूक है न खेह भई,  
हूक बढ़ी पै न बिषि टूक भई छतिया ॥  
'सेख' कहि सोंस रहिये की सकुचनि कवि,  
कहा कहौ लाजनि कहौगे निलज तिया ।  
और न कलेस मेरो नाथ रघुनाथ आगे,  
भेसु यहै भाखियो सँदेस यहै पतिया ॥

२३

थोरी वार है जु कछु थोरे सो मैं ताकि आई,  
ओरो सो बिलाइ कहीं खिन ही मे खोइगो ।  
धीरज अधारते रह्यो है खंग धार जैसो,  
आँसुन की धार सो न धूरि है जु धोइगो ॥  
आहि सुनि आई औ न चाहि ताहि पाई फेरि,  
देखि 'सेख' मजनूँ बिनाही नींद सोइगो ।  
नीकै कै निहारि वाके वसननि झारि डारि,  
तार तार ताकि कहूँ वार सो जु होइगो ॥

२४

विद्युरे ते बलभोर धरि न सक्त धीर,  
 वपजी विरह पीर ज्यों अरनि तर की।  
 सतिनि सँभारि आनि मलय रगि लाया,  
 तैना उकी अवली कहूँ ते मधुकरि की ॥  
 बैठ्या आय कुच बीच उडि न सक्त नीच,  
 रहि गई रेख 'सेख' दत दुहुँ पर की।  
 मानहु पुराणन सुमरि बैरु समु जू सों,  
 माव्या सम्यराणि रहि गई फोंक सर की ॥ २३

२५

रूप सुधा मकरन्द पिय त तऊ अलि कट वियोग अरे हैं।  
 'सेख' कहै हरि सों कहियो अलि प्यान प्रवृद्ध समान करे हैं ॥  
 जो मन मूरति क निरखे हम दम्बत हो गिरि गात गरे हैं।  
 जोति प्रसग पतग गरे इक मोई के मूमत तल सरे हैं ॥

२६

जोनन के फूल बन फूलनि मिलनि चला,  
 बीच मिा काह सुधि बुधि बिसपाई है।  
 बाँसुरी सुनत भइ बाँसुरियो बाँसुरी सु,  
 बाँसुरी की काहि 'सेख' बाँसुनि अयाई है।  
 थकि यहराइ यहराइ बैठिया न कहूँ,  
 ठहराइ जीय ऐसी पनि ठहराई है।



बारूनी बिरह आक बाक बकवास लगी,  
गई हुती छाक दैन आपु छकि आई है ॥

२७

केसू कुर हरे अध जरे मानो क्वेला धरे,  
कौलहाई कोयल करेजा भूँजे खाति है ।  
फूली बन बेली पै न फूली हौ इकेली तन,  
जैसी तलबेली औ सहेली न सुहाति है ॥  
चहुँघा चकित चंचरीकन को चारु चौंप,  
देख 'सेख' रातो कौंप छाती खोंप जाति है ।  
होन आयो अंत तंत मंत पै न पायो कछु,  
कत सो बसाति ना बसंत सो बसाति है ॥

२८

जाकी बात रात कही सो मैं जात आजु लही,  
भो तन तिरीछे हँसि हेरि सुख दियो है ।  
ऐसी देखी आन कोऊ सो न देखी आन तुम,  
बाके देखे मानस मरु कै कोऊ जियो है ॥  
कै तो कहूँ बांधो डर बेधिवे को ठौर नहीं,  
'सेख' ऐसी रावरे कठोर मन कियो है ।  
पीरो नहीं प्रेम पीर सीरो न सिथिल भयो,  
चीरो नहीं चित या सुहीरो है कि हियो है ॥

## स्त्री कवि-कौमुदी

२९

सरिन घुलावै कान्ह मुखदि न लावै मुकि,  
 द्वितियो निकाारी बीनि बेगि ही बगर तें ।  
 हौं न भई हाती कहीं बाही की मुहाती ऐसी,  
 मान रस माती हौं न बाला डोली डर तें ॥  
 जो लौं कहूँ मुरली की घोर मुनी कान 'सेख'  
 परी ही में देहली दुहेची भई घर तें ।  
 परी तिहि काज हुती पीरी पीरी बाल जनु,  
 सीरी भई मुनि छुटि बीरी गई कर तें ॥

३०

जोहीं भीह भीजी आँखि ताकि है जु तीजिये से,  
 जीवी कहे ज्याइहै अमर पद आइ लै ।  
 अबर परारे ते दिगम्बर बनै है सोदि,  
 छलक छुआये गज छाल वन छाइ लै ॥  
 'सेग' कहै आपी कोऊ जैनी है कि जापी यदो,  
 पापी है तो नीर पैठि नागन नहाइ लै ।  
 आग घोरि गग में निहग हूँ कै बेगि चलि,  
 आगे आउ मैल घाइ बेल गैल लाइ लै ॥

## छत्रकुँवरि बाई

**छ**त्रकुँवरि बाई रूपनगर (राजपूताना) के राजा सरदारसिंह जी की बेटी और ब्रजभाषा के प्राचीन कवि नागरीदास जी की पोती थीं। ये अपने 'प्रेम-विनोद' नामक ग्रन्थ में अपना परिचय इस प्रकार देती हैं.—

रूपनगर नृप राजसी, निज सुत नागरिदास ।  
 तिनके सुत सरदार सी, हौं तनया मैं तास ॥  
 छत्रकुँवरि मम नाम है, कहिये को जग माँहि ।  
 प्रिया सरन दासत्व तें, हौं हित चूर सदाँहि ॥  
 सरन सलेमावाद की, पाई तासु प्रताप ।  
 आश्रय है जिन रहसि के, वरन्यो ध्यान सजाप ॥

इनका विवाह महाराजा बहादुरसिंह जी ने वैशाख सुदी १३ सम्बत् १७३१ में कोठडे के गोपालसिंह जी खीची से किया था। इसलिए इनका जन्म सं० १७१५ के लगभग मानना चाहिए। ये बहुत दिनों तक अपने पति के पास रह कर फिर रूपनगर चली आईं। एक स्थान पर यह भी लिखा मिलता है कि ये राजा सरदारसिंह की खवास थी। बाल्यकाल ही से इन्हें कृष्ण-प्रेम का चस्का लग गया था। उन्हीं की गुणावली के वर्णन करने में ये अपना समय बिताती थीं। ये अपने बाबा नागरीदास के ग्रंथों का अधिक अध्ययन किया करती थीं। इसी से इनके हृदय में कृष्ण जी के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार

सम्पन्न और प्रेम से इनके हृदय में भक्ति भाव-भरी कविता करने की इच्छा पैदा हुई ।

अतः में इन्होंने सत्येमावाय के निम्नार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली । हमका पता ठीक ठीक नहीं चलता कि इनका मरण किये सम्भव में हुआ । इनका 'प्रेम विनोद' नामक ग्रन्थ सम्भव १७७६ आषाढ शुक्ल तीन बृहस्पतिवार को समाप्त हुआ था । इनकी कविता सरस, कृपा भक्ति के रस में रेंगी हुई सुन्दर है । 'प्रेम विनोद' से इनकी कुछ रचनाएँ यहाँ दी जाती हैं —

१

श्याम मन्त्री हँमि कुँवरि दिसि, बोली मधुरी बैन ।  
सुमन लेन चलिष अरै, यह बिरियोँ मुख दैन ॥  
यह निरियोँ मुख दैन, जान मुमुकाय चली जव ।  
नवल सखी बरि कुँवरि, रग सहचरि बिधुरी सज ॥  
प्रेम भरी सय सुमन चुनत, नित तित साँझी हित ।  
ये दुहुँ वेगस अग फिरत, निज गति मति मिश्रित ॥

---

७ कुँडलिया छंद का यह नियम है कि वह जिस शब्द से प्रारम्भ होता है उसी पर समाप्त भी होता है । किन्तु यहाँ आ की कुँडलियों में यह नियम सर्वथा चरितार्थ नहीं होता । प्रायः कुँडलिया लिखन वाले सभी कवियों ने पंचम पद में अपने नाम या उपनाम दिए हैं परन्तु यहाँ जी ने ऐसा नहीं किया ।

२

गरवाही दीने कहूँ, इक टक लखन लुभाहिं ।  
 पगपग द्वै द्वै पैड़ पै, थकित खरी रहि जाहिं ॥  
 थकित खरी रहि जाहिं, दगन दग छुटै न छुटै ।  
 तन मन फूल अपार, दुहूँ फल लाह सुलटै ॥  
 नैनन नैनन सलग बैन सो नहिं धनि आवै ।  
 उमड़न प्रेम समुद्र थाह तिहिं नाहिन पावै ॥

३

फूलन संझा समय अति, फूले सुमन सुरंग ।  
 फूले नैन दुहन के, फूलि समात न अंग ॥  
 फूलि समात न अंग रंग तिहिं सुगल सन्धारै ।  
 सौंझी सुरत सुआय लैन तव सुमन विचारै ॥  
 प्यारी भूमक मुकात डार भूमत अलवेली ।  
 कर पहुँचै तहँ नाहिं, चढ़ावत कध नवेली ॥

४

लेत सुमन बेलीन तें, मोतिन की सी बेलि ।  
 वृन तोरत लखि छकि तहाँ, नागरि सखी नवेलि ॥  
 नागरि सखी नवेलि, अपन पौ सर्व निवारै ।  
 सुमन गहावत सघन, भूम निरवारै डारै ॥  
 अरुम्मत प्यारी वसन जहां द्रुम बेलिन माँही ।  
 सुरभावत नव नारि, अपुन उरम्मत उरमाहीं ॥

८

मिला मिली की रीति जो चलन लगी इहि वाग ।  
 रहिये तिहि सामिल तहाँ, जो प्रसंग जिहि जाग ॥  
 जो प्रसंग जिहि जाग तिहीं वानिक गति गहिऐ ।  
 अलि मनोज वर फिरत, दुहाई देत सुलहिऐ ॥  
 मिल विछुरन न सलाह, लाह दैहैं ग्रह साँझी ।  
 मिलै मेल है रंग अनंग रस सुरहैं साँझी ॥

९

कछु मुसुकत मतराय कछु, कहाँ कुँवरि सकुचात ।  
 वात तिहारी ये कछु, मोहि न समझी जात ॥  
 मोहि न समझी जात, कहा झकझोर मचाई ।  
 साँझी खेलन-वेर, यहै अत्र नियमा आई ॥  
 कहिहैं गोप कुँवारि, गई कव की कित न्यारी ।  
 गेह चलन की वेर, अवै क्यों करत अवारी ॥



## प्रवीणराय

**प्र**वीणराय बेरया थी। यह भावका (धुवेखलड) के महा  
राजा इन्द्र आतसिंह की क बहूँ रहती थी। महाकवि केशवदास  
दास ने इसी के निम्न 'कवि प्रिया' ग्रन्थ की रचना की थी। केशवदास  
भी 'कवि प्रिया' के प्रथम प्रभाव के अतिम दाहे में कहते हैं —

सविता जू कविता दर्ह, ताकहँ परम प्रकारा ।

ताक काज कवि प्रिया, कीही केशवदास ॥

यह केशवदास की शिष्या थी। इन्हीं की सगति से इसने भी  
कविता करना सीख लिया था। 'कवि प्रिया' में केशवदास ने  
ने प्रवीणराय की बड़ी प्रशंसा की है। कुछ उदाहरण नीजिए —

तत्री तुमुरु सारिका, सुख सुरन सों लीन ।

देव-सभा सी देखिये, रायप्रवीण प्रवीन ॥

अर्थात्—रायप्रवीण की अति सुन्दर बीणा देव-सभा की है।  
क्योंकि जैसा देव-सभा लक्ष्मी (वृहस्पति) तुमुरु (गधक) सारिका मानी  
अम्बरा तथा सलोगुणी देवताओं से संयुक्त रहती है वैसे ही रायप्रवीण  
की बीणा भी तार, लूँचा, सारिका हृदय सुरों से युक्त है।

सत्या रायप्रवीण युत, पुरतडर सुरवर गेह ।

इन्द्रजीत तासो बेंधे, केशवदास सनेह ॥

अर्थात्—प्रवीणराय ( पातुर ) सत्यभामा के समान है । क्योंकि जैसे सत्यभामा में कृष्ण के प्रति सुन्दर प्रेम था वैसे ही रायप्रवीण में भी अपने पति के प्रति सुन्दर प्रेम है । जैसे सत्यभामा के घर में पारिजात वृक्ष था वैसे ही इसके घर में भी सुरों का वृक्ष अर्थात् जिसमें सातों सुर निकलते हैं ऐसी वीणा है । जैसे सत्यभामा पर श्रीकृष्ण जी अनुरक्त थे वैसे ही राजा इंद्रजीत भी इससे बँधे हैं अर्थात् अनुरक्त हैं ।

नाचति गावति पढ़ति सब, सबै वजावत वीन ।

तिनमें करति कवित्त इक, रायप्रवीन प्रवीन ॥

अर्थात्—इंद्रजीत सिंह के यहाँ जितनी वेश्यायें थी वे सभी नाचने, गाने, पढ़ने और वीणा बजाने में अत्यन्त कुशल थीं, किन्तु उनमें रायप्रवीण केवल कविता करने में ही अति प्रवीण थी ।

रतनाकर लालित सदा, परमानदहि लीन ।

अमल कमल कमनीय कर, रमा कि रायप्रवीन ।

अर्थात्—यह प्रवीणराय है कि लक्ष्मी है । क्योंकि लक्ष्मी रत्नाकर द्वारा लालित हुई है तो यह भी रत्न-समूह से सदा लालित रहती है । ( रत्न-जटित आभूषण पहने रहती है ) और लक्ष्मी परमानंद ( नारायण ) की सेवा में लीन रहती है तो यह भी अत्यंत आनन्द में सदा निमग्न रहती है । लक्ष्मी के हाथ में निर्मल सुन्दर कमल रत्न है तो यह भी हाथ में सुन्दर कमल ( कमल नामक आभूषण ) रखती है ।



रायप्रवीन कि शारदा, मुचि रुचि राजत अग ।

वीणा पुस्तक धारिणी, राजहस सुत सग ॥

अर्थात्—यह प्रवीणराय है कि शारदा है । क्योंकि शारदा का अग स्वेत कान्ति से रजित है और इसका अग भी श गार की कान्ति से रजित है । शारदा वीणा और पुस्तक लिपू रहती है और यह भी वीणा और पुस्तक लिपू रहती है । शारदा के साथ राजहस रहता है और यह भा इस-जात ( मूयवशी ) राजा के साथ रहता है ।

शृपम वाहिनी अग उर, वासुकि लसत प्रवान ।

शिव सँग सोहै सरंदा, शिवा की रायप्रवीन ।

अर्थात्—यह पावती है वा रायप्रवीण, क्योंकि पार्वती शिव का अग हाने स शृपम-वाहिनी हैं, उनके उर में वासुकी नाग पड़ा रहता है और प्रवीण भी हैं । वे सरंदा शिव के सग रहती हैं । इसी प्रकार प्रवीणराय भी अपने अग पर धर्म को बहन करती है अर्थात् वेरपा होने पर भा वेरपा-श्रुति प्राद केवल एक राजा ही से सम्बन्ध रखती है अतः पतिव्रता है । उस पर पूजों की भाला धारण करती है और उत्तम वाणा भी रखती है तथा भवदा सुन्दर रूप-युक्त शोभा देती है ।

सुधरन वरन सु सुधरननि, रचित रुधिर रुचि लान ।

तन मन प्रगट प्रवीन मति, नवरँग रायप्रवीन ।

अर्थात्—प्रवाणराय केमी है कि माने का सा सुन्दर रंग है । साने के बने हुए सुन्दर आभूषण उमकी कान्ति में लुप्त होते जात हैं । उसके तन से और मन स मति की प्रवीणता प्रगट होती है ।

प्रवीणराय बड़ी मुन्दरी थी। बेरया होने पर भी अपने को पतिव्रता समझती थी। पढ़ी लिखी थी। कविता करने में अत्यन्त प्रवीण थी। महाराज इन्द्रजीत सिंह ने अनेक बेरयाओं से युक्त संगीत का एक झखाड़ा बनवाया था, जिसमें यह प्रधान थी।

प्रवीणराय कविता करती थी, इसलिए महाराज इन्द्रजीत को अत्यन्त प्यारी थी। उस समय भारत में मुगल सम्राट् अकबर का शासन था। प्रवीणराय की काफ़ी प्रशंसा हो रही थी। अकबर बादशाह ने भी अपने किन्नी हिन्दू दरबारी से उसकी प्रशंसा सुनी। उसने प्रवीणराय को बुला भेजा। प्रवीणराय ने इन्द्रजीतसिंह के पास जाकर यह सबैया पढ़ा :—

आई हौ ब्रूमन मन्त्र तुम्हें निज स्वासन सो सिगरी मति गोई ।  
देह तजौं कि तजौं कुल कानि हिए न लजौं लजि हैं सब कोई ।  
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त बिचारि कहौ तुम सोई ।  
जामे रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भग न होई ॥

इन्द्रजीत सिंह ने प्रवीणराय को अकबर के पास नहीं जाने दिया। हमसे अकबर ने नाराज़ होकर इन्द्रजीत सिंह पर एक करोड़ का जुरमाना कर दिया और प्रवीणराय को ज़बरदस्ती बुला भेजा। प्रवीणराय अकबर के दरबार में गई। यह बड़ी चतुर और पतिव्रता थी। इसने दरबार में जाकर पहले अकबर बादशाह को यह सबैया सुनाया :—

अग अनंग तहीं, कुछ संभु सु केहरि लंक गयन्दहि घेरे ।  
भौंह कमान तहीं मृग लोचन खंजन क्यों न चुगै तिलि नेरे ॥

है कच राहु तहीं उदै इदु सु कीर के निम्बन चाचन मेरे ।

कोऊ न काहु सों रोस करै ॥ डरै डर साह अकबर तरे ॥

प्रवीणराय ने बादशाह के सामने कई गीत गाए । इस समय रायप्रवीण का अवस्था कुछ उलने पर आ गई थी । बादशाह अकबर ने इसका अवस्था देखकर एक दोहे का आधा पद कहा —

युवन चलत तिय देह ते, चटक चलत किहि हेत ।

प्रवीणराय ने उत्तर दिया —

मनमथ थारि ममाल को, सौति सिहारो लत ॥

बादशाह ने फिर आधा पद कहा —

ऊँचे है सुरबम किये सम है नरवस कीन ।

प्रवीणराय ने उत्तर दिया —

अप पताल यस धरन को दरकि पयानो कीन ।

अकबर बादशाह प्रवीणराय की कविता पर मुग्ध हो गया । उसने प्रवीणराय से अपने दरबार में रहने के लिए कहा और उसे धन दीर्घत का भी खोम दिया । किन्तु प्रवीणराय ने बादशाह से यह बोधा कहकर बिदा माँगी :—

धिनती राय प्रवीणकी, मुनिये साह सुजान ।

जूठी पतरी भस्वत हैं, थारी-बायस-स्वान ॥

प्रवीणराय का प्रवीणता और कविविशुष देखकर बादशाह अकबर बहुत प्रसन्न हुआ । उसने उसे इन्द्रजीत के पास उसी समय भेज दिया । केशवदास जी के उद्योग और महाराज बीरबल की प्रेरणा से अकबर

बादशाह ने महाराज इन्द्रजीत सिंह का एक करोड़ के जुमाना भी माफ कर दिया ।

प्रवीणराय का लिखा हुआ कोई ग्रन्थ हमने नहीं देखा और न उसके रचना-काल के ही सम्यन्ध में हम कुछ ठीक ठीक कह सकते हैं । केशवदास जी के समय में तो यह थी ही । इसलिए इसका समय भी वही हो सकता है जो केशवदास जी का है । इसकी जो फुटकर रचनायें हमारे देखने में आई हैं उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत की जाती हैं :—

१

सीतल सरीर ढार, मंजन कै घनसार,  
 अमल अँगोछे आछे मन मे सुधारि हौ ।  
 देहीं न अलक एक लागन पलक पर,  
 मिलि अभिराम आछी तपन उतारि हौ ॥  
 कहत 'प्रवीणराय' आपनीन ठौर पाय,  
 सुन वाम नैन या वचन प्रतिपारि हौ ।  
 जबहीं मिलेंगे मोहि इन्द्रजीत प्रान-प्यारे,  
 दाहिनो नयन मूँदि तोहीं सौं निहारि हौ ॥

२

कमल कोक श्रीफल मँजीर कलधोत कलश हर ।  
 उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु स्वल्प नीलधर ॥  
 सरवन शरवन हेम मेरु कैलास प्रकासन ।  
 निशि वासर तरुवरहिं काँस कुन्दन दढ़ आसन ।

इमि कहि 'प्रवीन' जल थल अपक अविध भजित तिय गौरि सँग ।  
कलि रलित वरज बलदे सलिल इहु शीश इमि वरज डँग ॥

३

दूर दुरकुट कोटि कोठरी निवारि राखों,  
चुनि दै धिरैयन को मूँदि राखों जलियो ।  
सौरग में सौरग सुनाइ के 'प्रवीन' धीना,  
सौरग दै सौरग की जोति करौं थलियो ॥  
बैठि परथक् पै निसक हूँ कै अक भरो,  
करौंगी अघर पान मैन मत्त मिलियो ।  
मोहि मिलैं इद्रपीत धीरज नरिन्द राय,  
एहोषद् । आज नहु मद् गति चलियो ॥

४

छूटा लटै अलवली सी चाल भरे मुखपान खरी कटि छीना ।  
बारि नकाग उधारे उराजन मोहन हेरि रही जु प्रवीनी ॥  
बात निराक कहै अति मोहि सों मोहि सों प्रीति निरतर कीनी ।  
छौं डि महानिधि लोगन की हित मेरा सो क्यों निसरै रसभीनी ॥

५

अन गारि तुम कहें दहि हम कहि कहा दूलद राय जू ।  
फतु वाप विप्र परदार सुनियत करा कहत कुचाय जू ॥  
फा गनै किनने पुरुष कोहैं कहत सब ससार जू ॥  
सुनि कुवर चित दै करनि ताका कहिय सब व्योहार जू ॥

बहु रूप सो नवयोवना बहु रत्नमय वपु मानिये ।  
 पुनि वंश रत्नाकर वन्यो अति चित्त चंचल जानिये ॥  
 शुभ शेष फण मणिमाल पलिका परति करति प्रबंध जू ।  
 करि शीश पश्चिम पाँय पूरव गात सहज सुगंध जू ॥  
 वह हरी हठि हिरनाक्ष दैयत देखि सुन्दर देह सो ।  
 वरवीर यज्ञचरात वर ही लई छाँनि सनेह सों ॥  
 हूँ गई विह्वल अंग पृथु फिरि सजे सकल सिंगार जू ।  
 पुनि कछुक दिन वश भई ताके लियो सरवस सार जू ॥  
 वह गयो प्रभु परलोक कीन्हौ हिरणकश्यप नाथ जू ।  
 तेहि भाँति भाँतिन भोगियो भ्रमि पलन छाँड़याँ साथ जू ॥  
 वह असुर श्रीनरसिंह माखो लई प्रवल छडाइ के ।  
 लै दई हरि हरिचंद राजहिं बहुत गोसुख पाइ के ॥  
 हरिचन्द विश्वामित्र को दई दुष्टता जिय जानि कै ।  
 तेहि वरी बलि वरिवंड वर ही विप्र तपसी जानि कै ॥  
 बलि बांधि छल—बल लई बावन दई इन्द्रहिं आनि कै ।  
 तेहि इन्द्र तजि पति कखो अर्जुन सहस भुज का जानि कै ॥  
 तव तासु मद छवि छक्यो अर्जुन हत्यो ऋषि जमदग्नि जू ।  
 सो परशुराम सगोत जाखो प्रवल बलि की अग्नि जू ॥  
 तेहि वेर तबही सकल चित्रिन मारि मारि बनाइ कै ।  
 इक बीस बेरन दई विप्रन रुधिर-जल अन्हवाइ कै ॥  
 वह रावरे पितु करी पत्नी तजी विप्रन थूँकि कै ।

अरु कहत हैं सन रावणादिक रहे ता कहैं दूँढि कै ॥  
 यहि लाज मरियत ताहि तुम सों भयो नातो नाथ जू ।  
 अरु और मुख निरखैं न ब्या ल्यो राखिया रघुनाथ जू ॥३॥

६

नीकी घनी गुननारि निहारि नगारि तऊ अँलिया ललचाती ।  
 जान अजानन आरति दोठि बसीठि के ठौरन औरन हाती ॥  
 आतुरता पिय के जिय की लखि प्यारी 'प्रवीन' बहै रसमानी ।  
 ब्या ब्या कछु न प्रसाति गोपान की त्या ल्यों फिरै घर में मुसुकाता ॥

७

सैन कियो उर सों उर लाय कै पानि दुहैं कुच सपुट कीने ।  
 कोटि उपाय उपाय सखीनि भुराइ भुराइ बिसासिनि दीने ॥  
 देखि कला कल प्यारी 'प्रवीन' सुवीन भयो मुख नैननि लीने ।  
 नेक कपोलन आँगुरी लाय कै दुरख दुराइ महा रस भीने ॥

८

मान कै पैठी है प्यारी 'प्रवीन' सो देखे बने नहीं जात बनायो ।  
 आतुर है अति कौतुक सों उठ लाल बल अति मोद बनाया ॥

---

७ उपयुक्त सान पद्य केशव की रामचंद्रिका के हैं । केशवदास ने यह गारा राम के विवाह की कथा लिखते समय प्रवीणराय से लिखाई थी । देखा स्वर्गीय आला भगवानदीन जी का कहना है ।

जोरि दोऊ कर ठाढ़े भये करि कातर नैन सों सैन बतयो ।  
देखत बेदी सखी की लगी भित हेखो नहीं इत यो बहरायो ॥

९

दोहा लाल कण्ठो सुन्यो, चित दै नारि नवीन ।  
ताको आधो बिटु युत, उत्तर दियो 'प्रवीन' ॥

१०

चिबुक कूप, मद डोल<sup>†</sup> तिल, बँधत अलक की डोरि ।  
दृग भिस्ती, हित-ललकि तित, जल-छवि भरत झकोरि ॥ॐ




---

ॐ ये पाँच छंद पं० कृष्णविहारी मिश्र के छोटे भाई पं० विपिनविहारी मिश्र ने भेजे हैं ।

<sup>†</sup> पानी भरने का डोल ।



## दयावाई

**द**यावाई महात्मा चरनदास की शिष्या थीं। मसिह सहजोवाई इनकी गुरु बहन थीं। ये चरनदास जी स्वजातीय थीं। इनका भी जन्म चरनदास जी के जन्म स्थान मेवाड़ के केहरा नामक गाँव में हुआ था। ये अपने गुरु जी के साथ दिल्ली में छात्र रहने लगीं और भगवद् भक्ति में अपना समय बिताकर वहीं अपना शरीर त्यागा। स्वभावानी के सम्पादक का कहना है कि सन् १७२० और सन् १७७२ के बीच के किसी सम्बन्ध में इनका जन्म होना पाया जाता है।

इनकी दयावाई की बाना नामक एक पुस्तक सन्तधानी-मुक्तक-माला में मणरा के खेलवेदियर प्रेस में प्रकाशित हुई है। जिसमें 'दया दौध' और विनय मालिका नामक पुस्तकें सम्मिलित हैं।

दयाबाय सन् १८१८ वि० में बना। दयाबाय के अन्त में यह दोहा लिखा है—

सबत ठारा सै समै, पुनि ठारा गये बीति ।

चैत सुद्री तिथि सातवीं, भया प्रथ सुभ रीति ॥

इसमें 'गुरुमहिमा' ग्रन्थ के अंग 'सूर का अंग 'सुमिरन का अंग' शीर्षकों द्वारा अनेक दोहे और चर्चों का समग्र है। इसमें दयावाई जी ने अपने गुरु चरनदास जी का बड़ी महिमा गाई है। इनके सभी पद भक्ति-रस में परिपूर्ण हैं।

इस ग्रन्थ के पदों में दयावाई जी ने अपने नाम दया, दया-दास और दयाकुँवरि रखे हैं। पता नहीं ये तीनों नाम दयावाई के ही हैं या इनमें से दो और किसी के। सम्भव है किसी 'दयादास' नामक साधु सज्जन ने अपने पद इस पुस्तक में रख दिये हों? क्योंकि दयावाई जी का अपनी रचना में तीन प्रकार से नाम का प्रयोग करना कुछ असम्भव सा जान पड़ता है। 'दया कुँवरि' नाम से यह प्रगट होता है कि गायद ये किसी राज-घराने की स्त्री रही होंगी। क्योंकि 'कुँवरि' का प्रायः राजकुमारियों के नाम के साथ प्रयोग होना है। कुछ भी हो दयावाई जी परम भक्त और भगवद्-भक्ति-परायणा थी। उन्होंने अपनी बानी में प्रेम की व्याख्या सुन्दर रूप में की है।

'मिश्रयधु-विनोद' में दयावाई का नाम नहीं दिया गया। कविता-कौमुदी-कार ने भी दयावाई के सम्बन्ध में थोड़ा ही सा परिचय दिया है। सन्तबानी के सम्पादक ने इनकी एक दूसरी पुस्तक 'विनय-मालिका' नाम से प्रकाशित की है। किन्तु हमारी समझ में यह पुस्तक दयावाई जी की रची हुई नहीं है। मालूम होता है यह चरनदास जी के शिष्य और दयावाई के गुरु भाई किसी 'दयादास' नामक सज्जन की रचना है। इसी 'दयादास' के नाम से अनेक पद दयावाई जी के 'दयाबोध' में भी पाये जाते हैं। दयावाई जी के 'दया' और 'दया कुँवरि' नाम से जितने पद मिले हैं उन्हें हम उन्हीं के रचे हुए मानते हैं। 'विनय-मालिका' और 'दयाबोध' की कतिपय

२

ज्ञान-रूप को भयो प्रकास,  
 भयो अविद्या तम को नास ।  
 सूक्त पखो निज रूप अभेद,  
 सहजै मिट्यो जीव को खेद ॥  
 जीव ब्रह्म अन्तर नहिं कोय,  
 एकहिं रूप सर्व घट सोय ।  
 विमल रूप व्यापक सब ठाईं,  
 अरध उरध मधि रहत गुसाईं ॥  
 जग-विवर्त सो न्यारा जान,  
 परम-द्वेव रूप निरवान ।  
 निराकार निरगुन निरवासी,  
 आदि निरंजन अज अविनासी ॥



## कविरानी

वंशी-राज्य के आश्रय में बहुत से कवि रहने आये हैं और रहते हैं। राव राजा बुधसिंह जी के आश्रय में कविराज लोकनाथ चौबे नाम के एक कवि रहने थे। इनका जी कविरानी जी भी मुकवि थीं। राव राजा बुधसिंह जी सन् १७२२ से सन् १८०२ तक वर्तमान थे। यही समय कविरानी जी का भी माना जा सकता है।

कविरानी जी के पति कविराज लोकनाथ चौबे एक अच्छे कवि थे। इन्हीं का सम्बन्ध से कविरानी जी को भी कविता करने का प्रवृत्ति अभ्यास हो गया था। ये कविता अपने पति के समान सरस, सुन्दर और सरम करती थीं।

एक बार कविराज लोकनाथ चौबे राव राजा बुधसिंह के साथ दिल्ली गये। राव राजा बुधसिंह ने उन्हें किर्पी बरख से बटक (सिख लानी) के उस पार जाने का हुक्म दिया। कविरानी जी ने जब सुना कि राव राजा बुधसिंह ने उन्हें बरख-पार जाने का हुक्म दिया है तो वह अत्यन्त दुःखी हुई क्योंकि वे बड़ी धार्मिक रमणी थीं। उन्हें यह डर था कि यदि कविराज जी बरख-पार जायेंगे तो वहाँ कहीं उनका धर्म न भ्रष्ट हो जाय। क्योंकि वहाँ अधिकतर मुसलमानों का निवास था। कविरानी जी ने अपने पति कविराज जी को एक कविता लिख भेजी।

कविराज जी ने वह कवित्त राव राजा सुधसिंह जी को सुनाया । सुधसिंह जी को वह कवित्त बहुत पसन्द आया ।

कविरानी जी ने कोई पुस्तक लिखी थी या नहीं, इसका अभी तक कुछ पता नहीं चला । इनके बनाये हुए कुछ ही छंद सुने जाते हैं । बूंदो के वर्तमान कविराज रामनाथ सिंह से भी हमने पूछ-ताछ की थी किन्तु उन्होंने भी दो छंदों के सिवा और कोई छंद नहीं बताया । वे यह थे :—


१

मैं तो यह जानी हो कि लोकनाथ पति पाय,  
 संग ही रहौंगी अरधङ्ग जैसे गिरजा ।  
 एते पै बिलक्षण है उत्तर गमन कीन्हों,  
 कैसे कै मितत ये वियोग विधि सिरजा ॥  
 अब तो जरूर तुम्हे अरज करे ही वने,  
 वे हू द्विज जानि फरमाय हैं कि फिरजा ।  
 जो पै तुम स्वामी आज अटक उलंघ जैहौ,  
 पाती माहि कैसे लिखूं मिश्र मीर मिरजा ॥

२

बिनती करहुगे जो बीर राव राजाजी सो,  
 सुनत तिहारी बात ध्यान मे धरहिगे ।  
 पाती 'कविरानी' मोरी उनहि सुनाय दीन्हो,  
 अवसि विरह-पीर मन की हरहिगे ॥

वे हैं बुद्धिमान सुखदान वड़भागी वड़े ,  
धरम की बात सुन मोद सों भरहिंगे ।  
मेरी बात मानौ राव राजा सों अरज करौ,  
लौटन को घर फरमाइस करहिंगे ।



## रसिकविहारी \*

रसिकविहारी जी, महाराज नागरीदासजी की दासी थी। इनका असली नाम बनीठनी जी था। ये हमेगा महाराज की सेवा में रहा करती थीं। महाराज की संगति से इन्हें भी कविता करने का अच्छा अभ्यास हो गया था। उन्होंने कविता का कोई ग्रन्थ नहीं रचा। 'नागर-समुच्चय' नामक ग्रन्थ में, जो महाराज नागरीदासजी की कविताओं का संग्रह है, रसिकविहारी जी की भी कविताएँ संग्रहीत हैं। इस ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर नागरीदासजी की कविता के साथ ही साथ 'आनकवि कृत' इस नाम से इनके बहुत से पद छपे हुए हैं।

'नागर-समुच्चय' ज्ञान-सागर प्रेस, यम्बई से प्रकाशित हुआ है। वह अत्यन्त अशुद्ध ग्रंथ है। इस ग्रन्थ में छपे हुए रसिकविहारी जी के पदों से यह प्रगट होता है कि ये बड़ी धर्मपरायणा और कृष्ण-भक्त थीं। इनका देहान्त महाराज नागरीदासजी की मृत्यु के कुछ पीछे आपाद सुदी

---

छइसी नाम के एक दूसरे कवि हिन्दी संसार में विख्यात है। पाठक उनसे परिचित ही होंगे।

† सूरदास की प्रचलित की हुई पद-शैली का प्रचार इतना अधिक हो गया था कि वह राजपूताना, मारवाड़, उत्तरी गुजरात, पूर्वी पंजाब और युक्तप्रान्त में भी अपनाई गई थी।

१५ सवत् १८२२ में हुआ था। 'नागर समुच्चय' में इनके दो पद छपे हुए हैं उनमें से कुछ चुने हुए पद यहां दिये जाते हैं —

१

रतनारो हो थारी आँखडियों ।

प्रेम छकी रस-बस अलसाणी जाणि कमल की पोंछणियों ॥

सुन्दर रूप लुभाई गति मति हों गई अयूँ मधु मोंछणियों ।

'रसिकविहारी' बारी प्यारी कौन बसी निसि कोंछणियों ॥

२

हो मालो द छे रसिया नागर पनों ।

सारों देखैं लाज मरों छों आवों किण जतनों ॥

छैल अनोरों क्यों कह्यो मानै लोभी रूप सनों ।

'रसिकविहारी' छे बुरी छे हो लाग्यो म्हारो मनो ॥

३

पावस श्रुत वृंदावन की दुति दिन दिन दूनी बरसै है ।

छवि सरसै है ।

छम मूम सावन घना घन बरसै है ॥

हरिया सरवर सरवर भरिया जमुना नार फलोले है ।

मन मोले है ।

प्यारी जी रो बाघ मुहावणो मोर धोले है ॥

आभा आया बीच बिमकै जलधर गहरो गाजे है ।

न राजे है ।



स्यामा सुन्दर मुरली रली वन बाजै है ॥

‘रसिकविहारी’ जी रो भीख्यो पीताम्बर प्यारी जी री चूनर सारी है ।

सुखकारी है ।

कुंजा कुंजा भूल रमा पिय प्यारी है ॥

४

कैसे जल लाऊँ मैं पनघट जाऊँ ।

होरी खेलत नद लाडिलो क्यों कर निवहन पाऊँ ॥

वे तो निलज फाग मदमाते हौं कुल-बधू कहाऊँ ।

जो छुवें अचल ‘रसिकविहारी’ धरती फार ममाऊँ ॥

५

कुंज पधारो रंग-भरी रैन ।

रँग भरी दुलहिन रँग भरे पीया स्यामसुंदर सुख दैन ॥

रँग-भरी सेज रची जहाँ सुन्दर रँग-भख्यो उलहत मैन ।

‘रसिकविहारी’ प्यारी मिलि दोउ करौ रंग सुख-चैन ॥

६

आज वरसाने मगल गाई ।

कुँवरलली को जनम भयो है घर घर वजत बधाई ॥

मोतिन चौक घुरावो गावो देहु असीस सुहाई ।

‘रसिकविहारी’ की यह जीवनि प्रगट भई सुखदाई ॥

७

आज बधावो वृषभान के धाम ।

मंगल कलश लिए आवत हैं गावत ब्रज की बाम ॥

कौरवि के की रति प्रगटी है रूप धरे अभिराम ।

‘रसिकविहारो’ की यह जोरी हौनी राधा नाम ॥

८

मैं अपना मन भावन लीनीं, इन लोगन को कहा न कीनीं ।

मन दै मोल लयो री सजनी, रत्न अमोलक न ददुलारे ॥

नवल लाल रँग भीनो ।

कहा भयो सब क मुख मोरे, मैं पायो पीध प्रधीनीं ।

‘रसिकविहारी’ प्यारा भातम, सिर बिचनों लिख दानों ॥

१०

धीरे भूलो री राधा प्यारी जी ।

नवल रँगाली सबै मुलावत गावत सखियों सारी जी ॥

फरहराम अचल चल बचल लाज न जात सँभारी जी ।

हुजन ओर दुरे लखि दखत प्रीतम ‘रसिकविहारी’ जी ॥

११

ये बाँसुरियावारे ऐसो जिन बतराय रे ।

यो न धोनिष । धरे घर बसे लाजनि दनि गइ हाय रे ॥

हौं धाई या गैलहि सो रे । नैन बल्यो धौं जाय रे ।

‘रसिकविहारी’ नौव पाय कै क्यों इतनो इतराय रे ॥

१२

कै तुम जाहु चले जिन घरो मेरी सारी ।  
 सुन श्याम सुन श्याम सौहैं तिहारी ॥  
 याही बेर छिनाइ लेउँ कर ते पिचकारी ।  
 अब कुछ मोपै सुन्यो चहत हौ गारी ॥  
 घर मे सीख्यो यह ढग हे रसिकविहारी ॥

१३

भीजै म्हाँरी चूनरी हो नँदलाल ।  
 डारहु केसर—पिचकारी जनि हा । हा ! मदन गुपाल ॥  
 भीज बसन उघरो सो अँग अँग बडो निलज यह ख्याल ।  
 'रसिकविहारी' छैल निडर थे पाले को जजाल ॥

१४

दोहा—गहगह साज समाज-जुत, अति सोभा उफनात ।  
 चलिबे को मिलि सेज-सुख, मंगल-मुदमय-रात ॥  
 रही मालती महकि तहँ, सेवत कोटि अनंग ।  
 करो मदन मनुहार मिलि, सब रजनी रस-रंग ॥  
 चले दोउ मिलि रसमसे, मै न रसमसे नैन ।  
 प्रेम रसमसी ललित गहि, रंग रसमसी रैन ॥  
 'रसिकविहारी' सुख सदन, आए रस सरसात ।  
 प्रेम बहुत, थोरी निसा, है आयो परभात ॥

१५

चडि गुलाल धूँधर गर्द, वनि रघो लाल त्रितान ।  
 चौरी चारु निकुञ्ज म, ब्याह फाग सुख-दान ॥  
 पूजन के सिर सेहरा, फाग रँग मँग बेस ।  
 भोंर ही में चलत दोड, लै गति सुलभ सुदेस ॥  
 भोज्या केसर—रग सों, लगे असन पर पीत ।  
 कालै चावर चौक में, गहि बँहियों दोठ भात ॥  
 रघ्यो रगीली रैन में, होरी के बिब ब्याह ।  
 मनी बिहारन रसमयी, 'रसिकबिहारी' नाह ॥

१६

होरी होरी कहि बोलै सब मज की नारि ।  
 नदगोंब-वरसानो हिलि मिलि गावत इत वत रस की नारि ॥  
 उडत गुलाल अरुण भयो अबर चलत रग पिचकारि कि नारि ।  
 'रसिकबिहारी' भानु दुलारा नायक सँग खेलें खेलवारि ॥

१७

बाजै आज नद भवन बधाइयों । ॐ  
 गह गह आनन भवन भया है गापी सब मिलि आइयों ॥  
 महरिन गावहि कै भयो सुत है मृला अगन भाइयों ।  
 'रसिकबिहारी' माननाथ लखि दत असीस सुहाइयों ॥

ॐ यह मंत्र रूप है ।

## ब्रजदासी

**ब्र**जदासी जी महारानी बाँकावती के नाम से प्रसिद्ध थीं। ब्रज-  
दासी इनका उपनाम था। इनका असली नाम महारानी  
ब्रजकुँवरि बाई था। ये जयपुर राज्य में लिवाण के कछवाहा राजा  
आनंदराम जी की पुत्री थीं। लिवाण में महाराजा भगवानदासजी एक  
सुप्रसिद्ध और वीर पुरुष हो गये हैं। अकबर बादशाह ने उन्हें कई बार  
अपने चंगुल में फँसाना चाहा किन्तु वे अकबर के चक्कर में न आये।  
उन्होंने दो-चार स्थानों पर अकबर का अपमान भी किया था इससे अकबर  
बादशाह उन्हें बाँका कहा करता था। इसीसे उस वंश में जितने  
महाराजा हुए वे बाँकावत के नाम से प्रसिद्ध हो गये और महारानियाँ  
बाँकावती के नाम से पुकारी जाने लगी।

ब्रजदासी जी का जन्म सम्वत् १७६० वि० के लगभग हुआ होगा  
क्योंकि इनका विवाह कृष्णगढ़ के महाराजा राजसिंह से संवत् १७७६  
ई० में घुन्दावन में हुआ। महाराज राजसिंह की पहली रानी का  
देहान्त हो चुका था। ब्रजदासी जी दूसरी रानी थीं। महाराज  
इनका बड़ा आदर करते थे। इनके दो सत्ताने थीं, एक पुत्र और  
दूसरी कन्या। पुत्र का नाम वीरसिंह और कन्या का नाम सुन्दर-  
कुँवरिबाई था जो बड़ी प्रवीण, भक्त और सुकवियत्री हो गई है।

महाराजी मज्जिदासी जी की कविता में बड़ी रुचि थी। ये भागवत और प्रेम सागर में कृष्ण भगवान की सारी कथाएँ पढ़ा करती थीं। इनके हृदय में भागवत के प्रति इतना अनुराग उत्पन्न हुआ कि उन्होंने संस्कृत श्लोकों का पद्यों में उल्था कर डाला, जो आज मज्जिदासी भागवत के नाम से प्रसिद्ध है।

मज्जिदासी द्वारा भागवत बड़ी सुन्दर पुस्तक है। भक्त लोग उसका बड़ा आदर करते हैं। उसका कविता निर्दोष और भावपूर्ण है। इसमें दोहों और चौपाइयों का बाहुल्य है। इसकी भाषा मज्जिभाषा और वैतवाड़ी का मिश्रित रूप है। इसमें कहीं कहीं राजपूताना भाषा के भी शब्द आ गये हैं। इनका मूल्य-सम्बन्ध ठीक ठीक पता नहीं है। हम इनकी कुछ रचनाएँ उद्धृत करते हैं।

१

नमो नमा आ हस नमो सनकादि रूप हरि ।  
नमा नमा आ नार्द दव श्रुपि जग को सम सरि ॥  
नमा नमा आ व्यास नमा शुकदव सुस्वामी ।  
नमा परीक्षित राज श्रुपिन में शान्ती नामी ॥

---

७ दाहों और चौपाइयों में प्रवच-काव्य के लिखने की शैली जायसी ने प्रारम्भ की थी। इसको प्रबलता महात्मा तुलसीदास ने दी। कृष्ण-काव्य में भी उसी शैली का प्रयोग किया गया है।

नमो नमो श्री सूत जू, नमो नमो सोनक सकल ।  
नमो नमो श्री भागवत, कृष्ण-रूप छिति मे अटल ॥

२

श्री गुरु-पद वन्दन करूँ, प्रथमहिं करूँ उछाह ।  
दम्पति गुरु तिहुँ की कृपा, करो सकल मो चाह ॥  
बारवार वन्दन करौँ, श्रीवृषभानु कुँवारि ।  
जय जय श्री गोपाल जू, कीजै कृपा मुरारि ॥  
वन्दौ नारद, व्यास, शुक, स्वामी श्रीधर सग ।  
भक्ति कृपा वन्दौ सुखद, फलै मनोरथ रंग ॥  
कियो प्रगट श्रीभागवत, व्यास-रूप भगवान ।  
यह कलिमल निरवार-हित, जगमगात ज्यो भान ॥  
कखो चहत श्रीभागवत, भापा बुद्धि प्रयान ।  
कर गहि मोहिं समर्थ हरि, देहैं कृपा-निधान ॥

३

व्यास भागवत आरँभ माँही, प्रभु को आन हृदय सरसाही ॥  
ऐसो वचन कहत सुनि आन, प्रभु सों परम प्रेम उर ठान ॥  
परम प्रेम परमेश्वर स्वामी, हम तिहिं ध्यान धरत हिय मानी ।  
यहै त्रिविध भूठो संसारा, भांति भांति बहु विधि निरधारा ॥  
अरु साँचों सो देत दिखाई, सो सत्यता प्रभुहिं की छाई ।  
जैसे रेत चमक मृग देखै, जल के भ्रम मन माहिं सपेखै ॥  
जल-भ्रम भूठ रेत ही सत्य, भ्रम सो दीख परत जल छत्य ।

जल भ्रम काच भाहिं क्या हात, सो मूठो सति कांच वदोत ॥  
 यों मूठो सबही ससारा, सोंचो हौ स्वामी करतारा ।  
 प्रभु में नहिं माया सम्बन्ध, न्यारो हरि ते माया बध ।  
 उपजन, पालन, प्रलय सँसारा, होत सबै प्रभु से निस्तारा ॥  
 व्यापन है रह्यो प्रभु मच ठौर, जगमगात जग में जग-मौर ।  
 सबहिं वस्तु को प्रभु ही ज्ञाता, आप प्रकारा रूप मुखदाता ॥  
 हृदय बीच बिधि के चिन आय, दाने चारों वेद पढाय ।  
 जिन वेदन में बड़े पडित, मोहित होइ रहे गुन मडित ॥

४

अबै व्यास जू कहत हैं, यहै भागवत मोंडि ।  
 कर्म सबै निहकाम अब, बखान करि मुख पाँडि ॥





गिरधर कविराय और उनकी स्त्री की रचनायें विश्वकुल मिलती जुड़ती हैं। कविराय का जन्म जिन सवत् के लगभग माना जाता है उसी सवत् के द्वा-चार वर्ष बाद इनकी स्त्री का भी जन्म हुआ होगा।

इनका सम्भारथान अवध का कोई गाँव जान पड़ता है क्योंकि कुंडलिया की भाषा में अधिकांश शब्द अवध के आस पास की बोली आते हैं। इनकी रचनाओं से ऐसा मालूम होता है कि यह उन्हें और प्रारसा भी अच्छी तरह जानती थीं। कुंडलियों का प्रचार प्राचीन में बहुत है। इनकी सैकड़ों कुंडलियाँ लोगों को कदरस्थ हैं। कुंडलियों में नीति-व्यवहार कुशलता और विनोद की काका सामग्री विद्यमान है। हम यहाँ इनकी स्त्री की बनाई हुई कुछ सुनी हुई कुंडलियाँ उद्धृत करते हैं —

१

साई । बेटा बाप के विगरे भयो अकाज ।  
हरिनाकस्यप फस को गयठ दुहुन को राज ॥  
गयठ दुहुन को राज बाप बेटा में विगरी ।  
दुरभन दावागार हँसे महिमण्डल नगरी ॥  
फह गिरधर कविराय युगन ते यह खलि आई ।  
पिता पुत्र के बैर नका कहु कौने पाई ॥

२

साइ बैर न काजिए गुरु पठित कवि यार ।  
चौरिया बस करायनहार ॥

यज्ञ-करावनहार राज-मन्त्री जा होई ।  
 विप्र, परोसी, वैद्य आपकी तपें रसाई ॥  
 कह गिरधर कविराय युगन त यह चलि आई ।  
 इन तरह मो तरह दिये बनि आवे साई ॥

३

साई ऐसे पुत्र ते बाँझ रह बरु नागि ।  
 गिरधरे बेटा बाप मे जाय रहें समुगारि ॥  
 जाय रहे समुगारि नागि के हाथ मिकाने ।  
 कुल के धर्म नसाय ओर परिवार नसान ॥  
 कह गिरधर कविराय मातु भूखे बहि ठाई ।  
 अस पुत्रनि नहि होय बाँझ रहतिउँ बरु साई ॥

४

साई पुरपाला पखा आसमान त आय ।  
 अधहि पंगुहि छोड़ि कै पुरजन चले पराय ॥  
 पुरजन चले पराय अध एक मन्त्र विचाखा ।  
 पंगुहि लीन्हैउँ कध पीठ बाके पगु धाम्यो ॥  
 कह गिरधर कविराय सुमति ऐसी चलि आई ।  
 बिना सुमति को रंक पक रावन भो साई ॥

५

साई सत्य न जानिए खेलि शत्रु सँगमार ।  
 दाव परे नहि चूकिये तुरत डारिये मार ॥

६

धुरत डारिये मार नरद कशी करि दोजै ।  
कशी होय तो होय मार जग में जस लीजै ॥  
कह गिरधर कविराय युगत याही चलि आई ।  
कितना मिलै पिघाय दानु को मारिय साई ॥

६

साई सहों न जाइये जहाँ न आपु सुहाय ।  
वरन विपै जानै नहीं गदहा दासै छाया ॥  
गदहा दासै छाया गऊ पर दागि लगावै ।  
सभा पैठि मुमुक्षाय यही सब नृप को भावै ॥  
कह गिरधर कविराय मुना रे मेरे भाई ।  
तहाँ न करिये वास धुरत बठि आइय साई ॥

७

साई सब ससार में मतलब को व्यवहार ।  
जब लगि पैसा गोंठ में तब लगि ताको धार ॥  
तब लगि ताको धार धार सँग ही सँग डोलै ।  
पैसा रहा न पास धार मुक्त ते नहि बोलै ।  
कह गिरधर कविराय जगत यह लेखा भाई ।  
बिना बेगरजी प्राप्ति धार बिरला कोइ साई ॥

८

साई जग में योग करि युक्ति न जानै कोय ।  
जब नारी गीने चली चढ़ी पालकी रोय ॥

चढ़ी पालकी रोय न जाने कोई जिय की ।  
 रही सुरत तन छाँय सुछतियों अपने हिय की ।  
 कह गिरधर कविराय अरे । जनि होहु अनारी ।  
 मुँह से कहै वनाय पेट में बिनवै नारी ॥

९

साई' घोड़े अछत ही गदहन पायो राज ।  
 कौआ लीजै हाथ में दूर कीजिए वाज ॥  
 दूर कीजिए वाज राज पुनि ऐमो आया ।  
 सिंह कीजिए कैद स्यार गजराज चढायो ॥  
 कह गिरधर कविराय जहाँ यह चूकि बड़ाई ।  
 तहाँ न कीजिय भोर साँझ उठि चलिये साई' ॥

१०

साई' अवसर के परे को न सहे दुख द्वन्द ।  
 जाय विकाने डोम घर वे राजा हरिचन्द ॥  
 वे राजा हरिचन्द करी मरघट रखवारी ।  
 फिरे तपस्त्री भेष धरे अर्जुन बलधारी ॥  
 कह गिरधर कविराय तपे वह भीम रसोई' ।  
 को न करै घटि काम परे अवसर के साई' ॥

११

साई' कोउ न विरोधियो छोट बड़ो इक भाय ।  
 ऐसे भारी वृत्त को कुल्हरी देत गिराय ॥

कुल्हरी देत गिराय मार के जमी गिराई ।  
 टूफ टूफ के काटि समुद्र में देत बहाई ॥  
 कह गिरधर कविराय पृथि जिहि के घर जाई ।  
 हरनाकुम अरु कस गये बलि रावन साई ॥

१७

साई अपन बित्त की मूलि न कटिण फाय ।  
 तन लग मन में राखिय जग लग काज न होय ॥  
 जब लग काज न हाय मूलि कबहुँ नहि कहिये ।  
 दुर्जन तातो होय आप सियरे है रहिये ॥  
 कह गिरधर कविराय रात चतुरन के ताई ।  
 करतूती कहि देत आप कटिण नहि माई ॥

१३

माई अपने भ्रात को कन्हूँ न दीनै रास ।  
 पनक दूर नहि कीनिए मदा राखिये पास ॥  
 सदा रागिये पाम ब्राम कन्हूँ नहि दीनै ।  
 रास दिये लकेम ताहि की गति मुन लोचै ॥  
 कह गिरधर कविराय राम सों मिलियो पाई ।  
 पाय विभीषण राज लकापति बायो माई ॥

१८

माई नदी समुद्र को मिलि बहूपनि जानि ।  
 जानि नाम मो मिलत ही मान-मदत को हानि ॥

मान-महत की हानि कहो अब कैसी कीजै ।  
जल खारा होइ गयो ताहि कहु कैसे पीजै ॥  
कह गिरधर कविराय कच्छ औ मछ सकुचाई ।  
बड़ी फजीहत होय तवै नदियन की साईं ॥

१५

साईं समय न चूकिये यथा शक्ति सनमान ।  
को जानै को आइ है तेरी पौरि प्रमान ॥  
तेरी पौरि प्रमान समय असमय तकि आवै ।  
ताको तू मन खोलि श्रक भरि कंठ लगावै ॥  
कह गिरधर कविराय सवै यामे सधि जाई ।  
शीतल जल फल फूल समय जनि चूकौ साईं ॥

१६

साईं ऐसी हरि करी बलि के द्वारे जाय ।  
पहिले हाथ पसारि कै बहुरि पसारे पाय ॥  
बहुरि पसारे पाय कहो राजा न बतायो ।  
भूमि सवै हरि लई बाँधि पाताल पठायो ॥  
कह गिरधर कविराय राम राजन के ताई ।  
छल बल कर प्रभु मिलै ताहि को तुष्टे साईं ॥

१७

साईं अगर उजार मे जरत महा पछताय ।  
गुन गाहक कोऊ नहीं गीत सुवास सुहाय ॥

गीत सुधास सुहाय सून बन कोऊ नाहीं ।  
 कै मोदक कै हिरन सुतौ कछु जानत नाहीं ॥  
 कह गिरधर कविराय बडा दुख यहै गुसाई ।  
 अगर आफ की राख भई मिलि एकै साई ॥

१८

साई हसन आप ही त्रिनु जल सरवर दास ।  
 निर्जल सरवर त डरें पच्छी पथिक उदास ॥  
 पच्छी पथिक उदास छाँह विभ्राम न पावैं ।  
 जहाँ न फूलत कमल और तहाँ भूलि न आवैं ॥  
 कह गिरधर कविराय जहाँ यह युक्ति बढाई ।  
 तहाँ न करिये सौँक प्रात ही चलिये साई ॥

१९

साई लोक पुकार द रे मन तू हो रिन्द ।  
 यह यकीन दिल में धरो मैं सबको खाविन्द ॥  
 मैं सबको खाविन्द एक खालक हकताला ।  
 खिलकत है यह फना और हर से पर चाला ॥  
 कह गिरधर कविराय आपना दुखी दुखाई ।  
 मन सुदाय ला जिसम बोंग हर दम द साई ॥



## प्रतापकुँवरि बाई

**प्र**तापकुँवरि बाई जी जासण परगना जोधपुर के भाटी ठाकुर गोयद-  
दासजी की पुत्री और मारवाड के महाराजा मानसिंह जी की  
रानी थीं। चंद्रवंश के यदुकुल क्षत्रियों की अनेक शाखाओं में से भाटी  
एक प्रबल और प्रसिद्ध शाखा है। भाटियों की भी कई शाखाएँ हैं। इनमें  
एक शाखा का नाम रावलोट है। रावलोट शाखा की भी दो शाखाएँ  
थीं। देरावरिया रावलोट और जैसलमेरिया रावलोट। श्रीमती  
प्रतापकुँवरि के पिता गोयंददास जी देरावरिया रावलोट भाटी थे। देरा-  
वरिया रावलोटों के मूल पुरुष रावल मालदेव थे। प्रतापकुँवरि के  
पिता आठवीं पीढ़ी में हुए थे।

महाराज मानसिंह के तेरह रानियाँ थीं जिनमें पाँच रानियाँ भाटिया  
वंश की थीं। देरावरिया के रावल अपने घर की लड़कियों का विवाह  
राजा-महाराजों के यहाँ करते थे। क्योंकि भाटिया जाति की स्त्रियाँ  
सुन्दर और धृढ़ होती थीं। महाराजा मानसिंह की पाँच भाटिया  
रानियों में श्रीमती प्रतापकुँवरि बाई तीसरी रानी थीं। प्रतापकुँवरि  
बाई जी के पिता गोयन्ददास के चार संताने थीं। तीन पुत्र गिरधर-  
दास, अजय सिंह और लछमनसिंह चौथी कन्या श्रीमती प्रतापकुँवरि  
बाई थीं। किन्तु गिरधरदास जी के कोई संतान न थी। इससे



उन्होंने अपना भाई तख्तमलसिंह के बड़े कमरसिंह को गोद ले लिया। कमरसिंह के दो बहने या चो महाराज प्रताप सिंह का ब्याह भी था। एक का दानव सम्बन्ध १६६१ में हुआ गया और दूसरा रतनकुँवरि का हुआ था जो इंदर का महाराज था।

प्रतापकुँवरि का राज्यकाल हुआ मरने पराए और उन्नतिशीला दिव्यवती थी। इनके पिता इनका सम्बन्ध किया बड़े घर में करन का उद्योग कर रहे थे। उसी समय राममनेहा साधुओं के महत्पूर्ण दास या कारण बस आखण्ड में आकर रहने लग। पूणदास जा बड़े भक्त और भगवत्-रसिक महत्तम थे। महत्तम जी म और माधवदास जा स बड़ा मित्रता हुआ गई। गोधवदास जी ने अपना मन्तव्य महत्तम पूणदास का सुनाया। पूणदास भी ने कहा कि बाई जी का भाग्य यति उत्तम है आप चिता न कीजिए। पहले इनके बढ़ाने खिखान का प्रबंध कीजिए। महत्तम जी ने बाई जी के खिखाने-बढ़ाने का विरोध उद्योग किया। साधु-सम्प्रदाय में पढ़ कर बाई जी भक्ति भाव में लिस रहने लगीं। उन्होंने महत्तम पूणदास को अपना गुरु मान लिया और अत तक अपने इस गुरु-भाव का निगन्ता रहीं। बाई जी के उत्तम विचारों का अधिक धन महत्तम पूणदास या का ही है।

आपका विवाह मारवाड़ के महाराज मानसिंह के साथ हुआ। इनके कोई मतान नहीं थी। महाराज मानसिंह का स १६०० में नहान हो गया। तथा स ब साधु भाव से रहने लगीं और भगवद्भक्ति में अपना समय बिताने लगीं। महाराजा मानसिंह का मृत्यु के बाद

गहमदनगर के महाराजा तरवतमिह राज सिंहासन पर विराजमान हुए। तरवतमिह का व्यवहार प्रतापकुँवरि चाई जी के साथ बहुत उत्तम था।

प्रतापकुँवरि चाई जी को राज्य से कई बड़े बड़े गाँव मिले थे। उसकी नारी ग्रामदनी इन्हीं को दी जाती थी। उस ग्रामदनी से चाई जी अपना काम चलातीं तथा धर्म-पुण्य के लिए हजारों रुपया दान दिया करती थी। इनकी कीर्ति इससे वहाँ बहुत हुई। ये श्री रामचंद्रजी की भक्त थी। इन्होंने मारवाड़ में गुलाब सागर तालाब पर पक्का मिरर-बध मन्दिर फाल्गुन वरी ६ सं० १६०२ में बनवाया और उसमें श्री रामचंद्रजी की मूर्ति स्थापित कराई। पुष्कर में इन्होंने पक्का घाट बनवाया और अपने पतिदेव के इष्टदेव जालंधर जी का मन्दिर आषाढ़ सुदी १३ सं० १६०४ में बनवाया। जोधपुर के गोल मुहल्ले में एक बहुत बड़ा रामद्वारा अपने गुरुभाई दामोदरदास जी के लिये बनवाया जिनसे इनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। गुलाब सागर का मन्दिर बहुत उत्तम बना है। इससे बनाने में चाई जी ने लाखों रुपये खर्च किये थे। मन्दिर में सैकड़ों बहुमूल्य तरवीरें जड़ी हुई हैं। दान-पुण्य में चाई जी अद्वितीय थी। जब तक मारवाड़ में इनका बनवाया हुआ यह मन्दिर रहेगा तब तक चाई जी की भी कीर्ति अटल रहेगी।

व्रता के दिनों में ये सहस्रों रुपये दान दे डालती थी। वैतरणी एकादशी के उपलक्ष में २०००० ब्राह्मणों को दान देती थी। चारणों और कविता कहने वाले भाटों को भी ये भन देती थीं। चारणों और

भाटों ने इन बाई जी की प्रशंसा में अनेकों कवितायें रचा हैं। उनमें से एक दाहा यह है —

कजर दे उस फारणे, लाखों लाख पसाव ।

यह रानी नृप मान री, हेरावरि दरियाव ॥

सन्वत् १६२१ में महाराजा खखतसिंह का देहान्त हो गया। महाराज के देहान्त हो जाने पर बाई जी का बड़ा दुःख हुआ। अतः मैं इन्होंने ससार का धमार समझकर श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति में मन लगाया। जब इनकी अवस्था ७० वर्ष की हुई तो इन पर रोगों का प्रकोप होने लगा। इन्होंने अपना सारा धन दान दत्ता प्रारम्भ कर दिया। इन्होंने अतः समय में कनेरों रुपया दान द दिया। किन्तु भाग्यवश ये राग से मुक्त न हो सकी और अतः में माघ बड़ी १२ सन्वत् १६७३ में इनका देहान्त हो गया।

प्रतापकुंवरि बाई जी का जब से महत् पूर्णदान से सम्पन्न हुआ था तभी से इनका प्रवृत्ति कविता करने की ओर मुक्त गई थी। ये हिन्दी भाषा के पढ़ने लिखने में अधिक मन लगाती थीं। इन्होंने अपने गुरुमाई दामोदर दास के कहने से कविता में बड़ी उत्तम पुस्तकें लिखीं। इनकी कविता भगवद्भक्ति में पूर्ण हैं। इनके सारे ग्रन्थ ईदर की महारानी श्रीमती रतन कुंवरि बाई में छपवाये हैं। इनकी पुस्तकों का विवरण इस प्रकार है —

- १ ज्ञान-स्वागर २ ज्ञान प्रकाश ३ प्रताप पक्षीसी ४ प्रमयागर
- ५ रामचन्द्र-नाम-महिमा ६ रामगुण-सागर ७ रघुवर स्नेह-खाजा

५. राम-प्रेम-सुखसागर ६. राम-सुजस-पचीसी १०. पत्रिका सं० १६२३  
चैत्र वदी ११ की ११. रघुनाथ जी के कवित्त १२. भजन पद हरजस  
१३. प्रताप-विनय १४. श्रीरामचन्द्र-विनय १५. हरिजस-गायन ।

यद्यपि उस समय मारवाड और राजपूताने आदि में कृष्ण-भाक्ति का ही प्राबल्य एवं प्राधान्य था तथापि वाई जी ने वैष्णव शाखा के रामानुजीय संप्रदाय की रामभक्ति का अनुसरण किया है । हिन्दी में रामभक्तिकाव्य बहुत कम कवियों ने लिखा । इसलिए हम इन्हें रामभक्तिकाव्यकारों में अच्छा स्थान देते हैं । इनकी कविता मधुर और प्रेम-पूर्ण है । हम इनकी कुछ चुनी हुई कवितायें इनके ग्रन्थों से यहाँ देते हैं —

१

## चौपाई

अब सुनिए चित धार सुजाना । रघुवर किरपा कहूँ बखाना ॥  
राम-रूप - हिरदै धर सुन्दर । वरनू ग्रन्थ हरन दुख दुन्दर ॥  
जहुकुल अति उत्तम सुखदाई । जामें कृष्ण प्रगट भे आई ॥  
तेहिं कुल में गोयँद मम ताता । प्रगटे जाण नगर विख्याता ॥  
सूरवीर रत धरम सुग्यानी । राजनीति जानत सुखदानी ॥  
रघुवर-चरन प्रीति नित करहीं । मग अनीति पग कवहुँ न धरहो ॥  
तिन के तीन पुत्र भल कहिए । गिरधर, अजब सिंह पुनिलहिए ॥  
मात पिता नित मोहिं लड़ावहिं । हमकूँ देख परम सुख पावहिं ॥  
या पुत्री अति प्राण पियारी । इनके वर अब करौ विचारी ॥

नगर जोधपुर मान महीपा । सब राठौर वश में दीपा ॥  
 जेहि सँग चलत सेन चतुरगा । धवल महल भुक्त रहे दुरगा ॥  
 तेहि नृप त में कियो विवाहा । गावत भगल अनत उद्धाहा ॥  
 दासी दास तुरंग रथ भारी । दीयो दायज पिना अपारी ॥  
 मान महीपति हम पति पाये । कारज सरे सजन मन भाये ॥  
 ईस-ररूप जानि पति साधा । सेवा कीही मनसा वाचा ॥  
 पति समान नहि दूजा दधा । तातैं पति की काजै सेवा ॥  
 पति परमात्म एक समाना । गारैं सब ही वेद पुराना ॥  
 घरम अनेक बह जग माहीं । तिय क पतिव्रत सम कछु नाहा ॥  
 दवहुती, अनुसुइया नारी । पतिव्रत ते हरि सुत अवतारा ॥  
 तात में पति सन समझाइ । पति सुमूर्ति हिरदै पधराइ ॥  
 यूँ करते कइ बरस धिताने । पति दरसन से जात न जान ॥  
 सँवत अठारौ अत उदासा । बरस सइ का भादव मासा ॥  
 सुदि बारस दिन मान नरेमा । तन तज सुरपुर कियो प्रवेसा ॥  
 पति वियोग दुख भयो अपारा । हुआ सकल सूना समारा ॥  
 कछु न सुहाय नैन बह नीरा । पति निन कोन थँघावे धीरा ॥  
 विकल भयो तन बचन न आये । हरे राम । दुख औन गिराये ॥  
 असन, बसन लागत दुखदाइ । इक दिन एक बरस सम जाई ॥  
 यह दुख करत गये दिन कते । जान मूठ जगन सुख जेते ॥  
 तरातसिंह सुत घाट विराजे । घर घर मगन बाज बाजे ॥  
 देर देर सुत आछाकारी । कछु इक दुख की बात विसारी ॥

सुनि सुनि कथा पुरान अपारा । सब भूयो जान्यो संसारा ॥  
 एक समय सपनो निसि आयो । रघुवर दरसन मोहिं दिखायो ॥  
 मेघ वरन तन श्याम विराजै । धनुष बाण प्रभु कर में छाजै ॥  
 कर माथाण कस्यो सुखदाई । वनमाला कर में पधराई ॥  
 सीस मुकुट कुण्डल छवि सोभै । पीतांबर ओढत मन लोभै ॥  
 बीचै अंग जानकी माता । दरसन करत हृष्य भयो गाता ॥  
 दोनों हाथ मीस मय बाने । बोलै वचन कृपा रस भीने ॥  
 सुन परतापकुँवरि कहूँ तोही । तू बल्लभ लागत अति मोही ॥  
 भूयो जगत मोह नहिं करिये । मोकुँ भज भवसागर तरिए ॥  
 मात-पिता - सुत संग न साथी । भूयो घर धन घोडा हाथी ॥  
 आयो एक एक ही जासी । पाप पुत्र अपनो जिय दामी ॥  
 ताते जगत मोह तज दीजै । हमरे हित एक मन्दिर छीजै ॥  
 यो मूरति तामें पधराओ । कर उत्सव मन-प्रेम बढ़ाओ ॥  
 सुनत वचन मम नाँद उड़ाई । ह्रस्व भयो सो कह्यो न जाई ॥  
 रघुवर किरपा कीन्हो भारी । तब मन्दिर की कीन्ह तयारी ॥

दोहा

सबत उगणी सैतिये, चौथ चैत यदि जोय ।  
 सर गुलाब के तीर पर, नीव दियाई सोय ॥  
 अब मन्दिर रघुवीर को, तुरत भयो तैयार ।  
 दरसन कर परसन भये, सब ही नर अरु नार ॥  
 सरब देव अवतार सब, सब राजन के चित्र ।

जहँ तहँ मीतिन पर लिखे, सोभित सदा विचित्र ॥  
 सनमुख साज सुहावणे, रघुवर रमण निवास ।  
 हौद भखो निरमल सुजल, सुधा-समान सुवास ॥  
 कथासाल<sup>१</sup> तिनमें सदा, कथा भागवत होय ।  
 प्रेम सहित नित प्रति मुनै, नर नारी सब कोय ॥

चौपाई

तुलसी रघुनर प्राण पियारी । वाकौ बिडौ<sup>२</sup> सरद सुखकारी ॥  
 चौक बाध सोभित सरसाई । सीतापति नित चरण चलाई ॥  
 रतन जड़ित हिंडोले साजै । मोतिन की मालरी बिराजै ॥  
 सुवरण लभा सोभित भारी । वापर तोरण की छवि न्यारी ॥  
 वामें सीता सहित सदाई । सावन में मूत्त रघुराई ॥  
 लोक नगर के दरसन करहीं । कर दरसन भवसागर तरहीं ॥  
 एकादशी दिवस जब होई । साधु विप्र आवत सब कोई ॥  
 नर नारी बहु होत समाजा । कथा कीरतन बाजत बाजा ॥  
 पाट उद्भव दिन आवत अवहीं । उद्भव अधिक होत है तवहीं ॥  
 नौवत भरत बजत सहनारै । जय जय सबद होत सुखदारै ॥  
 उद्भव राम नवमि दिन तैसे । जनम अष्टमी जानहु जैसे ॥  
 सरद आदि अनहूट अपारा । उद्भव होवत बरस में मारा ॥  
 भाति भाति भोजन पकवाना । सीर खाँद घृत बिजन नाना ॥

सीरो लाडू पुरी पकोरी । घेयर केसर पाक कचौरी ॥  
 पेड़ा दही हड़ी अरु पूवा । नुफती सेब जलेबी सूवा ॥  
 औरहि भोजन विविध प्रकारा । भोग लगत रघुवर कै सारा ॥

दोहा

मान महीपति मोहि पति, ज्ञानी-गुनी-उदार ।  
 इष्ट जलंधर नाथ कौ, जानत सब संसार ॥  
 ताते पति के प्रेम सो, मंदिर नाथ अनूप ।  
 कीन्हो पुस्कर ऊपरै, हय हिरदै धर चूँप ॥  
 मेरे मन तन बचन तेँ, लछमन सीताराम ।  
 इष्ट आसरौ वाहिँ बल, सकल सुधारन काम ॥

२

श्री सिद्ध नगर वैकुण्ठ जान, उपमा जहँ अधिक विराजमान ॥  
 जहँ अष्ट सिद्धि नव निधि निवास, कौवैर करत भडार जास ॥  
 विधि वेद उचारत वार वार, हाजरी करत निसि दिन हजार ॥  
 शिव करत निरत तांडव अभंग, रघुवीर रिभावत लेत रंग ॥  
 जहँ पंथ बुहारत पवन चाल, जल भरत इन्द्र लै मेघ-माल ॥  
 दीवा' ससि सूरज सुभग दोय, जमराज जहाँ कुटवाल जोय ॥  
 नित अंग रसोऊ तपत जास, दरवान खड़े जय विजयदास ॥  
 मुकि कनक महल अद्रुमुत अनंत, उपमा न कहत मुख तेँ वनंत ॥



मणि जटित गम मुन्दर कपाट, देहली रची विट्ठम सुघाट ॥  
 भीतिन परमाणिक सगे लाल, चिल्नाय मनोकथ वेलि जाल ॥  
 बहू वरन परन बधे प्रितान, तोरण पताक धुज चमर जान ॥  
 सिंहासन अरु मञ्जा अनूप, ऊपरनि विमलपय पैन रूप ॥  
 चहुँदिसा विराजत विविध बाग, लामाहि कनपतर रह लाग ॥  
 चपा जु चमेली रामवेल, केरौ केतकी दास बल ॥  
 अनार जौनु आँना अनार, मुकि रहे मूमि फल-फूर भार ॥  
 बातक प्रियम काकिना मोर, शुकरानहस पिक करत सार ॥  
 नित भरे सरोवर विमल नीर, मापान कनकमणि रचित तीर ॥  
 बहु कमल कुमादनि रह फूल, मदमत्त भरमता नाहि भूल ॥  
 है सीतल मद सुगंध पौन, मल भ्राज रह्यो वैकुण्ठ भौन ॥  
 आनत विमान क झुड झुड, निमिमावन सोभत कर घुमड ॥  
 नागद मनकादिक भस्तराज, नित बसत तहाँ प्रसु परस काज ॥  
 ऊँचौ सिंहासन अति अनूप, ता धीव विराजत प्रक-रूप ॥  
 पट घट प्रति व्यापक एक गोत, पट तनु चामिलि ओतपात ॥  
 इक' आदिपुत्र अणधर अजय, नहिं लहन पार सारदा शय ॥  
 कहँ नति नति नित पार वेद, सुर नर नहिं गावत जास भेद ॥  
 ससार सरव परगर करत, सप्रहा का पालन पुन हरत ॥

---

१ बाहू जा ने थारामचन्द्र जा क नाम भक्ति के आधार में आकर  
 एक पत्र बलिना में लिखा था उसी का यह एक अंग है ।

आधार सरव रह निराधार, नहिं आदि अंत नहिं आरपार ॥  
 पर तीन अवस्था गुणातीत, घर सगुण रूप निज भक्तप्रीत ॥  
 गो विप्र साधु पालक कृपाल, देवाधिदेव दाता दयाल ॥  
 राजाधिराज महाराज राज, रघुवंश-मुकुट-मणि धरम साज ॥  
 उपमा प्रभु की है अति अनंत, श्री श्री श्री श्री श्री रमाकंत ॥  
 श्रीरामचन्द्र करुणा-निकेत, जानकी-नाथ लल्लिमन समेत ॥  
 चरणारविद प्रति लिखत आप, कायापुर सो कुँवरी प्रताप ॥  
 हंडोत विनय मम बार बार, बाँचिये कृपानिधि सहित प्यार ॥  
 तुम सदा कुसल-मूरति कहाय, दुख सोक न जाके निकट जाय ॥  
 रम रहे सदा आनंद रूप, भगतन प्रतिपालक राम भूष ॥  
 नित कृपादृष्टि राखियो राम, हमरे नहि तुम बिन और श्याम ॥  
 मो औगुण कवहुँ न चित्त धार, निज धिरद जान कीन्हो सँभार ॥  
 हमरे तुम जीवन प्रान एक, मन वचन काम नहि तजूँ टेक ॥  
 मो मति मलीन कछु समझ नाहि, अब अधिक लिखूँ का पत्र माहि ॥  
 अपरंच अरज इक सुनो मोहिं, तुम सर्व जानि कह लिखूँ तोहिं ॥  
 कायापुर मैं तो हुकुम पाय, मैं वास कियो प्रभु यहाँ आय ॥  
 तुम आज्ञा हमको करो एह, मो चरन सरन कीजो सनेह ॥  
 नित कथा हमारी सुनो कान, हिरदै विच हमरो धरौ ध्यान ॥  
 हाथन तैं सूकृत सदा होय, नैनन तैं दरसन करौ सोय ॥  
 पग ते नित तीरथ चलौ पंथ, रसना तैं गावौ ज्ञान - ग्रंथ ॥  
 आसा करि पाई ऐसि आप, मैं सिर पर धारन लगी छाप ॥

इतने सुनि कै यह समाचार, भोगिया दौड़ि आये अपार ॥  
 मद काम क्राध अरु लोभ मोह, ईर्ष्या वादि अज्ञान द्रोह ॥  
 भय भत्सर ममता अरु गुमान, आसा बड तृसना सोक जान ॥  
 मन क्रोध महा बलबल जोय, ता सम नहिं जोधा और काय ॥  
 सुर नर सखी को लिए जीत, नहिं कीह कर्जो ओछी अनात ॥  
 मन मोह रेस को कामदार, सब सेना चाल ताहि लार ॥  
 सामत सूर सब एक एक, जाघा ऐसे आए अनेक ॥

दोहा

सबत डमगी सौ बरस, तेई सौ निरधार ।

वैत कृष्ण एकादशी, लिख्यो पत्र रविवार ॥

३

आस तो काहू की नाहिं मिटी जग में भये राख से बड जोधा ।  
 साबैत सूर सुयोधन से बल से नल से रत वादि विरोधा ॥  
 कते भये नहिं जाय बरानत जूझ मुये सबही करि शोधा ।  
 आस मिटे परताप कहै हरि-नाम जपेहु विचारत बोधा ॥

४

घर ध्यान रटो रघुबीर सदा, धनुषारी को ध्यान दिये घर रे ।  
 पर पीर में जाय कै बेग परी करतें सुभ सुकृत को कर रे ॥

---

० इस शब्द में कृ का द्वित्व करके पढ़ना चाहिए, यद्यपि हिन्दी काव्य में इस प्रकार बहुत ही कम है । इस शब्द में 'कृ का द्वित्व रूप में बिपा जाता है ।

तर रे भवसागर को भजि कै लजि कै अघ-अवगुण ते डर रे ।  
परताप कुँवारि कहै पद-भंकज पाव घरी मत वीसर रे ॥

५

होरी खेलन की सत भारी ।

नर-तन पाय अरे भज हरि को मास एक दिन चारी ।

अरे अव चेत अनारी ।

ज्ञान-गुलाल अवीर प्रेम करि, प्रीत तणी पिचकारी ।

लास उसास राम रँग भर भर सुरत सरीरी नारी ॥

खेल इन संग रचा री ।

उलटो खेल सकल जग खेलै उलटो खेलै खिलारी ।

सतगुर सोख धार सिर ऊपर सत संगत चल जारी ॥

भरम सब दूर गुमारी ।

ध्रुव प्रह्लाद विभीषण खेले मीरा करमा नारी ।

कहै प्रतापकुँवरि इमि खेलै सो नहि आवै हारी ॥

साख सुन लीजै अनारी ॥

६

होरिया रँग खेलन आओ ।

इला पिंगला मुख मणि नारी ता सँग खेल खिलाओ ॥

सुरत पिचकारी चलाओ ।

काचो रंग जगत को छाँड़ौ साँचो रंग लगाओ ।

वाहर भूल कबौ मत जाओ काया-नगर वसाओ ॥

तवै निरभै पद पाओ ।

पौचौ चलट धरे धर भीतर अनहद नाद बजाओ ।

सब बकवाद दूर तज दीजै ध्यान-गीत नित गाओ ॥

पिया के मन तबही भाओ ।

तीनो ताप तीन गुण त्यागो, ससा सोक तसाओ ।

कहै प्रतापहुँवरि हित चित सों फेर जनम नहि पाओ ॥

जोत में जोत मिलाओ ।

७

अबध पुर घुमडि घटा रही छाये ।

चलत सुमद पवन पुरवाई नभ घनघोर मचाये ॥

दादुर मोर पपीहा बोलत दामिनि दमकि दुराये ।

भूमि निकुज सपन तरुवर में लता रही लिपटाय ॥

सरजू उमगत लेव हिलोरैं निरखत सिय रघुराय ।

कहत प्रतापहुँवरि हरि ऊपर बारनार बलि जाये ॥



## सहजोबाई

**स**हजोबाई का जन्म सं० १८०० के लगभग राजपूताने के एक प्रसिद्ध दूसरे कुल में हुआ। ये महात्मा चरनदाम की प्रसिद्ध चेलियो में से थीं। हिन्दी की प्रसिद्ध कवियित्री दयाबाई इनकी गुरु-ग्रहन थीं। ये परम भक्त थीं। सहजोबाई अपने गुरु की भाँति साधुवृत्ति से रहती थीं। सहजोबाई ने चरणदास जी का जन्म संवत् १७६० माना है। इससे पता चलता है कि इनका जन्म चरणदास के बाद हुआ होगा। इनकी बानी कोमल मधुर और हृदय प्रसन्न करने वाली होती थी। वह कोरी कविता ही नहीं है किन्तु प्रेम रसमयी सुधा-धार है। इनकी बानी से सब से बड़ी बात यह प्रगट होती है कि यह गुरु को भगवान से भी ऊँचा मानती थीं। इनका यह सिद्धान्त था कि बिना सतगुरु की कृपा से जीव किसी प्रकार संसार से मुक्ति नहीं पा सकता। इनकी कवितार्यों का एक संग्रह 'सहज-प्रकाश' वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वार। संतबानी पुस्तक-माला में प्रकाशित हुआ है। 'सहज-प्रकाश' की कविता भक्ति-पूर्ण है। यहाँ इनकी कुछ कवितायें नीचे लिखी जाती हैं :—

१

दोहा

लख चौरासी यह कही, फेर फेर भुगतन्त ।

जनम मरन छूटै नहीं, बिना सरन भगवन्त ॥

जज्ञ, दान, तीरथ करै, पूजा भौति अनेक ।  
 मुक्ति न पावै सहजिया, बिना भक्ति हरि एक ॥  
 इन्दर की पदवी मिलै, और ब्रह्म की आन ।  
 आगे तौ भो भवन है, सहजो सकल ब्रह्म ॥  
 राम-नाम ले सहजिया, दीजै सर्व अकोर ।  
 तीन लोक के राज सौं, अत जाहुगे छोर ॥  
 बिना भक्ति थाये समी, जोग जह्म व्याचार ।  
 राम-नाम हिरनै घरौ, सहजो यही विचार ॥  
 यह अवसर दुर्लभ मिलै, अचरज मनुष्य देख ।  
 लाभ यही सहजो कहै, हरि मुमिरन करि लेह ॥  
 एक घडी का मोल ना, दिन का कहा भगवान ।  
 सहजो ताहि न छोड़ये, बिना भजन भगवान ॥  
 पारस नाम अमोन है, धनवन्ते घर होय ।  
 परस नहीं कगल कूँ, सहजो डारै सोय ॥  
 सहजो जा घट नाम है, मो घट मगल रूप ।  
 राम बिना धिक्कार है, सुन्दर धनिया भूप ॥  
 सहजो नौका नाम है, चढि के उतरो पार ।  
 राम मुमिरि जान्यो नहीं, ते सूखे मँसधार ॥  
 सहजो भवसागर बहै, तिमिर बरस धन चोर ।  
 ता में नाम जहाज है, पार छतारै तोर ॥  
 पावक् नाम जलाइ है, पाप, ताप, दुख दुन्द ।

राम सुमिर सहजो कहै, जो विसरै सो अन्ध ॥  
 कनक-दान गज-दान दे, उन्नचास भू-दान ।  
 निस्चै करि सहजो कहै, ना हरि नाम समान ॥  
 मेह सहै सहजो कहै, सहै सीत औ घाम ।  
 पर्वत बैठो तप करै, तौ भी अधिको नाम ॥  
 चरनदास हरि-नाम को, महिमा कही अपार ।  
 सो सहजो हिरदै धरी, अचल धारना धार ॥  
 सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदै माहिं दुराय ।  
 होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय ॥  
 राम-नाम यों लीजिये, जानै सुमिरनहार ।  
 सहजो कै कर्तार ही, जानै ना सन्सार ॥  
 बैठे, लेटे, चालते, खान, पान. व्योहार ।  
 जहाँ तहाँ सुमिरन करै, सहजो हिये निहार ॥  
 जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय ।  
 सहजो इकरस हो रहै, तार दृष्टि नहिं जाय ॥  
 आठ पहर सुमिरन करै, विसरै ना छिन एक ।  
 अष्टादस औ चार मे, सहजो यही विशेष ॥  
 सहजो सुमिरन सब करै, सुमिरन माहिं विवेक ।  
 सुमिरन कोई जानि है, कोटो मध्ये एक ॥  
 जन्म-मरन-बन्धन कटै, दूटै जम की फाँस ।  
 राम-नाम ले सहजिया, होय नही जग हाँस ॥



चौरासी के दुख कट, छप्पन नरक विरास ।  
 राम-नाम ले सहजिया, जमपुर मिलै न बास ॥  
 गर्भ-वास सकट मिटै, जठर अग्नि की आँच ।  
 राम नाम ले सहजिया, मुख सूँ बोली साँच ॥  
 सील, डिमा, सतोष गहि, पोंचो इन्द्रो जीत ।  
 राम नाम ले सहजिया, मुक्ति होन की रात ॥  
 काम, क्रोध औ मोह मनु, तजि भज हरि को नाम ।  
 निस्चै सहजो मुक्ति है, लहै अमरपुर धाम ॥  
 काम, क्रोध औ लोभ तन, लै सुमिरै हरि-नाम ।  
 मुक्ति न पावै सहजिया, नहिं रामेंगे राम ॥  
 कामा मति भिष्टन सदा, बलै बाल रिपरीत ।  
 सील नहिं सहजो कहै, नैन माहिं अनीत ॥  
 सदा रहै चित भग ही, दिरदे धिरता नाहिं ।  
 राम-नाम क फल जिते, काम लहर बहि जाहिं ॥  
 सहजो क्रोधी अति मुरा, चलटी समझै बात ।  
 सन हा सूँ पेंठा रहे, करै बचन की घात ॥  
 झूकर क्यों भूकत फिरै, तामस मिलवौं बाल ।  
 घर बाहर दुख रूप है, बुधि रह डोंगडोल ॥  
 मन मैला तन छीन छै, हरि सूँ लगै न मेह ।  
 दुखी रहै सहजो कहै मोह बसै जा दह ॥  
 मोह मिरग काया बसै, कैसे उषरै रेत ।

जो बोवै सोई चर, लगै न हरि सँ हेत ॥  
 नीच लोभ जा घट बसै, भूठ कपट सँ काम ॥  
 वौरायो चहुँ दिसि फिरै, सहजो कारन दाम ॥  
 द्रव्य हेत हरि कूँ भजै, धन ही की परतीति ।  
 स्वारथ ले सब सँ मिलै, अन्तर की नहिं प्रीति ॥  
 अभिमानी मुख धूर है, चहै बडाई आप ।  
 डिंभ लिये फूली फिरै, करतो डरै न पाप ॥  
 प्रभुताई कूँ चाहत है, प्रभु को चहै न कोइ ।  
 अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होय ।

२

धन छोटापन सुख महा, धिरग बडाईखवार ।  
 सहजो नन्हा हूजिये, गुरु के वचन सन्हार ॥  
 सहजो तारे सब सुखी, गहँ चन्द औ सूर ।  
 साधू चाहै दीनता, चहै बडाई कूर ॥  
 अभिमानी नाहर बड़ो, भरमत फिरत उजाड ।  
 सहजो नन्ही वाकरी, प्यार करै सन्मार ॥  
 सीस, कान, मुख, नासिका, ऊँचे ऊँचे नाँव ।  
 सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव ॥  
 नन्ही चींटी भवन में, जहाँ तहाँ रस लेह ।  
 सहजो कुन्जर अति बड़ो, सिर पै डारे खेह ॥  
 सहजो चन्दा दूज का, दरस करै सब कोय ।

नहे सँ दिन दिन बढै, अधिको चोँदन होय ॥  
 बढा भये आदर नहीं, सहजो आँसिन दख ॥  
 कला सभी घट जायगी, कहुँ न रहसा रोग ॥  
 सहजो नन्हा बालका, महल भूष के जाय ॥  
 नारी परदा ना करै, गोदहिँ गोद छेलाय ॥  
 घडा न जाने पाइहै, साहब के दरबार ॥  
 द्वारे ही सँ लागि है, सहजो मोटी मार ॥  
 घारे दीबे चोँदना, बढा भये अधियार ॥  
 सहजो तुन हलका तिरै, हूबै पत्थर मार ॥  
 भली गरीबी नबनता, सकै नहीं कोइ मार ॥  
 सहजा रई कपास को, काटै ना तरवार ॥  
 धरनदास सतगुरु कही, सहजो हूँ यह चाल ॥  
 सकौ तो छोटा हूनिसे, छूटै सन जजाल ॥  
 साहन हूँ तो भय घना, सहजो निरमय रक्त ॥  
 कुजर के पग बेडियोँ, चींटी फिरै निमक ॥  
 ऊँचे उजल भाग सँ, आय मिल गुरुद्व ॥  
 प्रेम दिया नन्हा किया, पूरन पाया भेद ॥  
 सहजा पूरन भाग सँ, पाय लिये सुखदान ॥  
 नरसिंह आइ दीनता, भज बडाइ मान ॥  
 सहजो पूरन भाग सँ, पाय लिये सुखदैन ॥  
 गये कुनच्छन रह सँ, मुलछन पायो चैन ॥

औगुन थे सो सब गये, राज कर उन्तीस ।  
प्रेम मिला प्रीतम मिला, सहजो वारा सीस ॥

३

चरनदास सतगुरु दियो, प्रेम पिलाया पान ।  
सहजो मत्तवारे भये, तुरिया तत गलतान ॥  
प्रेम-दिवाने जो भये, मन भयो चकनाचूर ।  
छके रहैं घूमत रहैं, सहजो देख हजूर ॥  
प्रेम-दिवाने जो भये, प्रीतम के रँग माहिं ।  
सहजो सुधि-बुधि सब गई, तन की सोधी नाहिं ॥  
प्रेम-दिवाने जो भये, पलटि गयो सब रूप ।  
सहजो दृष्टि न आवई, कह रक कह भूप ॥  
प्रेम-दिवाने जो भये, कहैं वहकते बैन ।  
सहजो मुख हाँसी छुटै, कवहूँ टपकै नैन ॥  
प्रेम-दिवाने जो भये, जाति वरन गइ छूट ।  
सहजो जग वीरा कहै, लोग गये सब फूट ॥  
प्रेम-दिवाने जो भये, धरम गयो सब खोय ।  
सहजो नर नारी हँसैं, वा मन आनन्द होय ॥  
प्रेम-दिवाने जो भये, सहजो डगमग देह ।  
पाँव पड़ै कितकै किती, हरि सम्हाल जब लेह ॥  
कवहूँ हकधक है रहै, उठै प्रेम हित गाय ।  
सहजो आँख मुँदी रहै, कवहूँ सुधि है जाय ॥

मन में तो आनंद रहै, तन बौरा सब अंग ।  
ना काहू के सग है, सहजो ना कोइ सग ॥  
प्रेम लटक दुरलभ महा, पावै गुरु के ध्यान ।  
अजपा सुमिरन कहत हूँ, उपजै केवल ज्ञान ॥

४

सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं ।  
हरि तो गुरु बिन क्यों मिले, समझ दग्य मन माहिं ॥  
परमेश्वर सँ गुरु बडे, गावत वेद पुरान ।  
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान ॥  
अष्टादस औ चार पट, पति पति अर्थ कराहिं ।  
मेद न पाव गुरु बिना, सहजो सन भरमाहिं ॥  
सकल निकल सब छोडकर, गुरु चरनन चित लार ।  
सहजो निश्चै हरि अपो, बहुरि न ऐसो दाव ॥  
दीपक लै गुरु ज्ञान को, जगत अँधेरे माहिं ।  
काम, क्रोध, मद, मोह में सहजो डरमै नाहिं ॥  
सहजो गुरु परताप सँ, होय समुन्दर पार ।  
वेद अर्थ गूँगा कहै, बादी कितइक बार ॥  
सहजो सतगुरु क मिले, भये और सँ ओर ।  
बाग पनट गति हम है, पाई भुजो ठौर ॥  
महजो यह मन सिलगता, काम क्रोध की आग ।  
नी मई गुरु न दिया, सीन छिमा का बाग ॥

नित्खै यह मन झूयता, मोह, लोभ की धार ।  
 चरनदास सतगुरु मिले, सहजो लई उवार ॥  
 ज्ञान-दीप सतगुरु दियौ, राख्यौ काया-फोट ।  
 साजन बसि दुर्जन भजे, निकस गई मत्र गोट ॥  
 सहजो गुरु दीपक दियौ, रोम रोम उजियार ।  
 तीन लोक दृष्टा भये, मिट्यौ भरम-अंधियार ॥  
 सहजो गुरु दीपक दियौ, नैना भये अनन्त ।  
 आदि अन्त मध एक ही, सूक्ति परै भगवन्त ॥  
 सहजो गुरु दीपक दियौ, देख्यौ आतम रूप ।  
 तिमिर गयौ चादन भयौ, पायौ परघट भूप ॥  
 सहजो गुरु परसन्न है, मेट्यौ मन सन्देह ।  
 रोम रोम सूँ प्रेम उठि, भाँज गई सत्र देह ॥  
 सहजो गुरु परसन्न है, एक कछौ परसंग ।  
 तन, मन तेँ पलटी गई, रँगी प्रेम के रंग ॥  
 सहजो गुरु परसन्न है, मूँद लिये दोउ नैन ।  
 फिर मो सूँ ऐसे कही, समझ लेइ यह सैन ॥  
 सहजो गुरु किरपा करी, कहा कहूँ मैं खोल ।  
 रोम रोम फूली भई, मुख नहि आवै बोल ॥  
 चिँउटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसो ना ठहराय ।  
 सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दर्ई बसाय ॥  
 सिप पौधा नौधा अभी, गुरु किरपा की बाड ।

सहजो तरवर फैल बड, सुफल फलै वह भाड ॥  
 सहजो सिप ऐसी भली, जैसे माटी मोय ।  
 ध्यापा सोंधि कुम्हार कूँ, जो कछु होय सो होय ॥  
 सहजो सिप ऐसी भली, जैसे चक्ई डोर ।  
 गुरु फेरें त्यों ही फिरै, त्वागै आपन खोर ॥  
 सहजो गुरु ऐसा मिलै, जैसे धोरी होय ।  
 दै दै साजुन ज्ञान का, भलमल डारै धोय ॥  
 सहजो गुरु ऐसा मिलै, मेढै मन-सन्देह ।  
 नीच ऊँच देखै नहीं, सब पर बरसै मेह ॥  
 सहजा गुरु ऐसा मिलै, जैसे सूरज धूप ।  
 सन जीवन कूँ चाँदना, कहा रक वह भूप ॥  
 सहजो गुरु ऐसा मिलै, समदृष्टी निरलोभ ।  
 सिप कूँ प्रेम-समुद्र में, करदे मोचामोच ॥  
 सहजो गुरु बहुतक फिरै, ज्ञान ध्यान सुधि नाहि ।  
 तार सकैं नहि एक कूँ, गहैं बहुत की बाहि ॥  
 ऐसे गुरु ता बहुत हैं, धूत धूत धन लहि ।  
 सहजो सतगुरु ओ मिलैं, मुक्ति धाम फल देहि ॥  
 कुटुँब जाल जित तित रुप्यो, यमु पखी नर भाहि ।  
 सहजो गुरुवर्ती बचै, निगुरे अरुमय जाहि ॥  
 बार बार नाते मिलैं, लख चौरासी भाहि ।  
 सहजो सतगुरु ना मिलैं, पकड़ निकासै बाहि ॥

उपजै गुरु की भक्ति दृढ़, दुविधा दुरमति जाय ॥

५

सखीरी आज जनमे लीला घारी ।

तिमिर भजैगो भक्ति रिझैगी, पारायन नर नारी ॥  
 दरसन करतै आनंद उपजै, नाम लिये अघ नासै ।  
 घरघा में सदेह न रहसी, खुलि है प्रबल प्रगासै ॥  
 धतुक जाव ठिकानो पैहैं, आधागवन न होई ।  
 जम के दण्ड दहन पावक की, तिन कूँ मूल निकोई ॥  
 होइ है जागो प्रेमी ज्ञानी, ब्रह्म रूप है जाई ।  
 चरनदाम परमारथ कारन, गावै सहजोनाई ॥

६

सखीरी आज जनम लियो सुखदाइ ।

दूसर कुल में प्रगट हुए हैं, बाजत आनंद बधाई ॥  
 भादों बीज सुदी दिन मंगल, सात पढी दिन आये ।  
 सम्वत सत्रहसाठ हुये तब, सुभ समयो सब पाय ॥  
 जैजैकार भयो मधि गाऊँ, मात पिता सुख देतौ ।  
 जानत नाहिंन कौन पुरुष हैं, आय हैं नर भेतौ ॥  
 सग चलावन अगम प य कूँ, सूरज भक्ति उदय की ।  
 आप गुपाल साध तन घायौ, निहचै मा मन ऐसो ॥  
 गुरु मुकदेव नाँव धरि दीह्यौ, चरनदास उपकारी ।  
 सहजोनाइ तन मन वारै, नमो नमो बलिहारी ॥



## भीमा

**भीमा** मा गोंगलू ( बीकानेर राज्य ) के बीठ नामक चारण की बहिन थी । यह बड़ी बाचाल और कवि थी । जब से कोई पाँच सौ वर्ष पहले की बात है कि यह नागरोड़ ( फोटा राज्य ) में माँगने-जॉचने गई । वहाँ से खीची राजा अचलदास के पूछने पर इसने अपने देश के राजा राव खीमसी जी की बेटी उमादे की बड़ी प्रशंसा की । राजा अचलदास ने प्रसन्न होकर भीमा को चार घोड़े दिये । भीमा ने राजा राव खीमसी की बेटी का विवाह राजा अचलदास जी से ठीक करवा दिया । विवाह हो गया । राजा अचलदास जी की पहली रानी का नाम लालादे था । जब अचलदास जी उमादे को लिया कर अपने घर गये तो भीमा भी उनके साथ गई । वह उमादे की पुरानी सखी थी । वह प्रत्येक समय उसका मनोरंजन किया करती थी । लालादे अपने पति को अधिक प्रसन्न किए हुए थी । उमादे के ऐसे सकल के समय भीमा ही सहायक थी ।

उमादे ने बहुत दिनों तक अपना समय दुःखमय बिताया । भीमा उसकी बाल्यकाल की सगिनी थी । वह कभी दोहे और कभी गीत कह और गा कर उसका जी बहलाया करती थी । एक दिन उमादे ने भीमा से कहा की तुम इतना सुन्दर वीणा-बजाना और गाना जानती हो तब भी क्या तुम राजा को अपने सगीत से प्रसन्न नहीं कर सकती ? भीमा

ने कहा—हाँ सखा ! मैं कर क्यों नहीं सकती । किन्तु गेद है कि ज  
स मैं यहाँ आई हूँ तब स राधा सादृश के दखन ही नहीं हुए । य  
कभी ऐसा आसर मिले तो बहुत समझ है कि मेरी बीणा राधा सा  
को सुगंध काले ।

दूसरे दिन कामा ने यह प्रमिद कर दिया कि उमादे के पास प  
बहा सुन्दर हार है । यह समाचार पा कर जालादे न उमादे ॥  
हार मँगा भेजा । उमादे ने कहा—यदि राध जी स्वय ही लेने आ  
ता मैं हार दे दूँ । जालादे ने इसे स्वीकार कर लिया । जब राध  
उमादे के महल में आने लगे तब जालादे ने राध जी से प्रतिज्ञा क  
की कि वहा जाकर वे हथियार न खालें । अचलदास उमादे के मह  
में गये तो अल शस्त्रवादे ही ले गये । उमादे पैर दानने जगा  
भीमा ने बीणा लेकर असावरी राग में यह दोहे गाये —

धिन<sup>१</sup> उमादे सौँदली, तैं पिय लियो मुलाय ।

सात बरसरो बीड़न्या, ता किम<sup>२</sup> रैन बिहाय ॥

किरती<sup>३</sup> माथे ढल गई, हिरनो लूँरा<sup>४</sup> राय ।

हार सटे पिय आणियो , हँसे न सामो धाय<sup>५</sup> ॥

चनण काठरो टालिया<sup>६</sup>, किस्तूरियो<sup>७</sup> अवाप्त<sup>८</sup> ।

---

१ धन्य । २ मात्र खे लिया ३ क्या ४ कृतिका ५ मृगशि  
६ माने ७ बदने ८ खाया गया ९ सम्मुख १० अदन ११ पल  
१२ करारी को १३ सुगन्धित स्थान ।

धण<sup>१</sup> जागे पिय पौढयो<sup>२</sup>, वालू<sup>३</sup> औघर<sup>४</sup> वाम ॥  
 लालीं लाल भेवाड़ियो<sup>५</sup>, उमा तीज चल<sup>६</sup> भार ।  
 अचल ऐराक्याँ<sup>७</sup> ना चढ़ै, रोढ़ाँ<sup>८</sup> रो असवार ॥  
 काले अचल मोलावियो<sup>९</sup>, गज घोडाँ रे मोल ।  
 देखत ही पीतल हुआ, सो कडल्याँ<sup>१०</sup> रे बोल ॥  
 धिन्य दिहाडो<sup>११</sup> धिन घड़ी, में जाण्यां थो आज ।  
 हार गयां पिव सो रह्यो, कोइ न सिरियो काज ॥  
 निसि दिन गईं पुकारताँ, कोइ न पूगी<sup>१२</sup> दाँव ।  
 सदा बिलखती धण रही, तोहि न चेत्यो राव ॥  
 ओढ़न<sup>१३</sup> मीणा<sup>१४</sup> अंवरा<sup>१५</sup>, सूतो खूँटी ताण ।  
 ना तो जाग्या बालमो, ना धन मूक्यो<sup>१६</sup> माँण ॥  
 तिलकन भागो<sup>१७</sup> तरुणि को, मुखे न बोल्यो बैण ।  
 माण कलड़ छूटी नहीं, आजैस<sup>१८</sup> काजल नैण ॥  
 खीची से चाँहे सखी, कोई खीची लेहु ।  
 काल पचासों में लियो, आज पचीसों देहु ॥  
 हार दियाँ छेदो<sup>१९</sup> कियो, मूक्यो माण मरम्म ।

---

१. स्त्री २. लेटा हुआ ३. जलाना ४. यह ५. ज़बरदस्त ६. घोड़े  
 ७. छोटा घोड़ा ८. मोल लिया ९. साकें १०. दिन ११. पहुँचा १२.  
 ओढ़कर १३. महीन १४. कपड़े १५. छोंडा १६. नष्ट हुआ १७. अभी  
 तक १८. आधीनता, खुशामद ।

ऊँमों पीवन चक्कियो, आडो लेख करम्म ॥

पेसे सरस दोहे सुनकर भा राव थचलसिह न अपना कमर न खोली । प्रातःकाल हाने ही जय लालादे का दासी राव जी का बुनाने आई तब उमादे ने कहा —

मोंग्या लामे<sup>१</sup> जब चरण, मौजी लमे जुवार ।

मोंग्या साजन किमि मिल, गहली<sup>२</sup> मूढ गेंवार ॥

पहो<sup>३</sup> पाटी पगडो हुआ, बिछरण रो दे बार ।

ले सकि थारो बालमो, उरदे म्हारो हार ॥

भीमा यह सुनने ही बाधा बँक झुँकता कर उठी और राव जी को जगाने लगी । राव जी ने कहा—तुमन हार सहे पिय आणियों<sup>४</sup> क्यों कहा ? इसका क्या अभिप्राय है ? तब चारिणी भीमा ने कहा—राव साहब ! आप को तो लालादे ने बेच दिया है और हमन एक हार के बदले तुम्हें मोल ले लिया है । यदि तुम भी बल जाओगे और हार भा हमारा बला जायगा तो फिर हमारा काम कैम होगा ? राव जी ने भीमा से मारा हाल पूछा । भीमा ने सब वृत्तान्त सुना कर यह बोहा पड़ा —

लाला मेवाड़ी करे धीजो करे न काय ।

गायो भीमा चारिणी, ऊमा लियो गुलाय ॥

१ मित्रे २ पागल बावली ३ प्रातःकाल ४ दूसरा ५ माल

पगे वजाऊँ गूधरा, हाथ वजाऊँ तूँव<sup>१</sup>  
 उमा अचल मुलावियो, ज्यूँ सावन की लुंव<sup>२</sup> ॥  
 आसावरी अलापियो, धिनु भीमा धण जाण ।  
 धिण आजूणे<sup>३</sup> दीहने,<sup>४</sup> मनावणे<sup>५</sup> महिराण ॥

भीमा के उपर्युक्त दोहों और वार्तालाप को सुनकर राव राजा अचल-सिंह ने रोप पूर्वक कहा—अच्छा लालादे ने हमको बेंच दिया है ? उसने हार को हमसे अधिक मूल्यवान समझा ? अब मैं लालादे के पास न जाने की शपथ करता हूँ । उमादे तुरन्त बोल उठी—नहीं महाराज, आप लालादे को आने का वचन देकर आये हैं । आप वहाँ जाइये जितमसे कि आपका वचन भग न हो । जब मैं आपको बुलाऊँगी तब यह कह कर चले आइयेगा कि तुमने तो हमें हार के बदले उमादे के हाथ बेंच दिया है ।

कई दिन बीत गये । एक दिन रात्रि को राव अचलसिंह जी लालादे के साथ चौपट खेल रहे थे । उसी समय उमादे की सखी भीमा राव साहब को बुलाने आई । एक बाजी भी पूरी न हो पाई थी कि राव साहब उमादे के पास चलने को तैयार हो गये । लालादे ने कहा—यह क्या, कहाँ जाते हो ? राव साहब ने कहा—तुमने तो हमें एक हार के बदले उमादे के हाथों बेंच दिया है । इसलिये मैं उमादे का

---

१. घीणा २. बरसने वाली बदली ३. आज ४. दिन ५. राजा को मनाना ।

गुलाम हूँ । मैं यहाँ बदापि नहीं रह सकता । ऐसा कह कर राव साहब कीमा के पाम चले गये । खालादे कीमा और उमादे पर अति कुपित हुई । वह मामा से अत्यन्त नाराज़ हुई क्योंकि उस मानूम था कि यह करतूत इसी चारिणी की है ।

इस प्रकार कीमा चारिणी ने अपनी बचन चातुरी और सजीव कविता से अपनी मर्जी उमाद का सारा सऊठ दूर कर दिया । कीमा के समय का अभी कुछ निरचय नहीं हो सका । किन्तु कादा के राजा अचलसिंह को हुये आज लगभग २२२ वर्ष हुये होंगे । इसलिये कीमा चारिणी का समय भी २२२ वर्ष पूर्व होना माना जा सकता है ।

कीमा बड़ी वीर रमणी थी । इसने कई लड़ाइयों में भी चारिणी का अच्छा काम किया था । बीणा वज्राने में ता यह अत्यन्त कुशल थी ही इसी कारण इसने एक बार लड़ाई में अपने बिपक्षी राजा को भी पँसा लिया था । इसको कई लड़ायियों में विजय प्राप्त होने के कारण चाहे हाथी और हज़ारों रुपये इनाम में मिलते थे ।

मारवाड़ में आज भी इस प्रसिद्ध चारिणी का गुण गान किया जाता है । इसके छंद भी मारवाड़ में गौरव की दृष्टि से पते और गाये जाते हैं । स्वर्गीय मुनी देवीप्रसाद के पुस्तकालय में भी इसके गीतों का कोई साय संग्रह नहीं है । हाँ मुनी जी का इसके सवध में अनेक किबदंतियाँ मालूम थीं । उमादे और मामा में अत्यन्त गाढ़ा मैत्री थी । कहते हैं कि उमाद और मामा का मृत्यु एक ही दिन के अंतर से हुई थी ।

## सुन्दरकुँवरि चाई

**सु**न्दरकुँवरि चाई जी रूपनगर तथा कृष्णगढ़ के राठौर क्षत्रिय वंशी महाराजा राजसिंह जी की बेटी थी। इनका जन्म कार्तिक सुदी ६ सम्बत् १७६१ में दिल्ली में हुआ था। इनकी माता का नाम महारानी बाँकावती था, जो एक प्रसिद्ध क्षत्रियित्री और भक्त थी। इनके सगे भाई का नाम वीरसिंह था।

महाराज राजसिंह का सम्बत् १८०५ में देहान्त हो जाने से इनके घराने में राज्य सम्बन्धी कई झगड़े खड़े हो गये। इससे उस समय सुन्दरकुँवरि जी का विवाह न हो सका। ये तरुणावस्था में भी अपने घर के झगड़ों में पड़ी रही और अनेक बाधाओं का सामना करती रही जिससे ३१ वर्ष की अवस्था तक ये कुँवारी रहों।

सम्बत् १८०० में इनके भतीजे महाराजा सरदारसिंह ने इनका विवाह रूपनगर में राधोगढ़ के खीची महाराजा बलभद्रसिंह के कुँवर बलवंतसिंह जी से कर दिया। विवाह हो जाने पर सुन्दरकुँवरि चाई जी राधोगढ़ गई और वहाँ उन्होंने “रम-पुंज” नामक एक ग्रन्थ सम्बत् १८३४ में बनाया। विवाह के बाद भी चाई जी को अनेक दुःखों का सामना करना पड़ा। पीहर में ये भाइयों के विरोध और मरहटों के आक्रमण से घोर सकट में पड़ गई थी। जन्म कर लेने के लिए इनके पति से पहले होल्कर ने लड़ाई ठानी तब इन्होंने छबड़ा और गूणोर

परगना देकर सुलह कर ली। किन्तु और राबों का निगाह भी हतर लगी हुई थी। अतः सेंधिया क सरदार ने बलवतसिंह जी को पकड़ कर म्वालियर में कैद कर दिया और राधोगढ़ का किच्चा ले लिया।

अतः बलवतसिंह जी ने अजपुर जोधपुर और अपने कुटुम्ब की सभी सरदार शेरसिंह की सहायता से फिर राधोगढ़ का आस किया। बलवतसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके कुँवर जयसिंह राधोगढ़ का राजा हुए किन्तु सेंधिया ने फिर राधोगढ़ ले लिया। जब सेंधिया ने लड़ते जयसिंह का भी मृत्यु हो गई तब जयसिंह की रानी ने अजीमसिंह को माद लिया। फिर अजीमजी ने महाराज दौलतराव सेंधिया से कह कर राधोगढ़ कुँवर अजीमसिंह को दिला दिया।

सुन्दरकुँवरि बाई के सम्बन्ध में अधिक बातों का पता नहीं लगता। राज्य के कगड़े के समय शायद वे सलेमानगर में रही होंगी। क्योंकि वहाँ इनके कुल का गुरद्वारा है। इनके मृत्यु के सम्बन्ध में ठीक पता नहीं चलता। मुन्शी देवीप्रसाद जी भा इनका पता नहीं लगा सके। उनका यहां कहना है कि— इनके अंतिम प्रप का निर्माण-काल सम्वत् १८२३ ई जब कि उनका अवस्था ६३ वर्ष का हो गई थी। इसके पीछे ही वे किया वष महाराज प्रतापसिंह के समय में स्वर्ग धाम का प्राप्त हुई होंगी।”

बाई जी में बाल्यकाव्य ही से कविता के सुनने तथा पढ़ने का धार था। जिस राजकुल में बाई जी का जन्म हुआ था वह सदा से अने



अच्छे कवियों का शाश्वत-दाता रहा था। इनके पिता राजसिंह स्वयं अच्छे कवि थे। इनके भाई नागरीदासजी तो हिन्दी के बड़े ही प्रसिद्ध कवि थे। इनकी माता बांकावती उपनाम ब्रजदासी जो स्वयं भक्त और सुकवि थीं। इनकी भतीजी छत्रकुँवरि वाई जी पदों के बनाने में कुशल थी। यही नहीं बल्कि इनके घराने की दामियाँ तक कविता करने में कुशल थीं। भक्त नागरीदास जी की दासी बनीठनी जी (रसिकचिठारी) भी भक्त कवि थीं। जिस कुल में इतनी कुशल और प्रवीण कवि और कवि-कान्ताएँ हो गई हैं, उसी कुल में सुन्दरकुँवरि वाई जी जन्म-ग्रहण कर क्यों न सुकवि और विद्वत्ता में प्रवीण होती। इन्होंने अत्यन्त भक्तिमयी ललित कविता की है।

इनके रचे हुए ११ ग्रन्थ पाये जाते हैं। पता नहीं इनके और भी कोई ग्रन्थ है या नहीं। मुंजी देवीप्रसाद जी का कहना है कि इनके ग्रन्थों का एक बड़ा संग्रह वृष्णगढ़ के महाराजा प्रतापसिंह जी की राजकुमारी के पास था। जब उनका विवाह बूंदी के महाराजा विष्णुसिंह जी के साथ हुआ तब वे इस संग्रह को अपने साथ बूंदी ले गईं। फिर उन्होंने उसे अपने पुत्र महाराज रामसिंह जी को दिया। उनके पीछे महाराज रघुवीरसिंह जी बहादुर जी० सी० एम० आई० की माँजी साहब को प्राप्त हुआ। बूंदी में चद्रकला वाई एक कविमित्रि हो गई हैं। उन्होंने माँजी से प्रार्थना की कि वे सुन्दरकुँवरि वाई जी के ग्रन्थों को छपवा दें। चद्रकला वाई की प्रार्थना स्वीकार करके माँजी ने सुन्दरकुँवरि जी के सारे ग्रन्थों को प्रकाशित करवा के मुफ्त बँटवाया।

मुदाकुँवरि वाई की रचना बड़ा ही मधुर और भक्तिरस से पूर्ण है। उन्होंने अपनी पुस्तकों में कृष्ण-लीला भगवद्भक्ति का ( निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुसार ) बड़े प्रेम से वर्णन किया है। इनकी कविता बड़ी मधुर और आत्मा का शान्ति दिलाने वाली है। काम्य-गुणों की दृष्टि से इनका कविता बड़े ऊँचे दर्जे की है। उसमें प्रसाद-गुण प्रवाह की अधिकता है। हमारा राय में आये मुकवियों से इनकी कविता टकर ले सकता है। इनकी रचिन पुस्तकों के नाम इस प्रकार हैं —

१ नेहविधि-रचना ( सम्बन् १८१७ ) २ चारदीं सुदी ३३ रविवार रूपनगर में ) ३ सुदाना गोपा महाम ( रचना सम्बन् १८२३ ) ४ सकेत युगल ५ रसपुज ६ प्रेमसपुट ७ सारसमह ८ रत्नभर ९ गोपी महाम १० भावना प्रकाश ११ राम-रहस्य १२ पद तथा स्फुट कवित । हम इनकी पुस्तकों से यहाँ चुना कुछ कुछ रचनाएँ उद्धृत करते हैं—

१

आशा लहि घनश्याम की चली सखी बहि ॥ ज । ॐ  
जहाँ विराजत मानिनी श्री राधा मुख पुज ॥  
श्री राधा मुख पुज कुज तिहि आई सहचरि ।  
बह कन्या को सग लिये प्रेमातुर मद भरि ॥

---

अपह दूमरी देखी थी है जिन्होंने कुंडलिया छत्र में आदि वाले शब्द का छत्र में उपयोग नहीं किया और इस प्रकार कुंडलिया में रूपान्तर उपस्थित किया ।

कहत भई करजोर निहोरन घात सयानिनि ।  
तजहु मान अब मान मान मो राखहु मानिनि ॥

२

प्रिय के प्रान समान हो सीखी कहाँ सुभाय ।  
चख-चकोर आतुर चतुर चंदानन दरसाय ॥  
चंदानन दरसाय अरी हा ! हा ! है तोसो ।  
बृथा मान यह छोड़ि कही पिय की सुनि मोसो ।  
सूधै दृष्टि निहारि प्रिया सुनि प्रेम पहेली ।  
जल विन भूप अहि-मणि जु हीन इन गति उन पेली ।

३

कहत श्याम मेरे नहीं तुम विन कोऊ आन ।  
प्रानहु है प्यारी प्रिया काहि करत हौ मान ।  
काहि करत हौ मान चलहु पिय संग विहारौ ।  
राधा राधा मंत्र नाम वे रटत तिहारौ ॥  
नायक नन्दकुमार सकल सुभ गुन के सागर ।  
तिनसौं मान निवार बहुत विनवत सुनि नागर ॥

४

उतै अकेले कुंज में बैठे नन्दकिसोर ।  
तेरे हित सज्जा रचत विविध कुसुम दल जोर ॥  
विविध कुसुम दल-जोर तलप निज हाथ बनावत ।

करि करि तेरो ध्यान कठिन सों द्विनन विहावत ॥  
जाके सन आधीन सुतो आधीनो तरे ।  
जिहि मुख लखि ब्रज नियत बहै तो मुख मख हेरे ॥

५

श्री ब्रजराज बुँवार वै सन प्रप प्रान अघार ।  
सो कह जानत घर बसी तरे चितहि विचार ॥  
तरे चितहि विचार कहा कुछ मानत नाही ।  
वे रस बस आधीन दीन ज्यों रहत सदाही ॥  
यह अमान है मान ताहि तजि प्रान पियारी ।  
उठि बलि मिल पिय सग दुचित है रहैं बिहारी ॥

६

लखि सनह तुम दुहुँन को मेरो जीवन होदि ।  
जन्म सफल मानहु तनै बिहरत दरहुँ ताहि ॥  
बिहरत दरहुँ ताहि तनै मा नैन सिरारै ।  
तुम दुहुँ बिछुरत दिनहि प्रान मेरे अकुनारै ॥  
तो सनह क प्रेम रसामृत छक्या पियारै ।  
विरह बिकल है रह नक चल दशा निहारै ॥

७

सब सुम गुननिधि हो प्रिया पारगना प्रवीन ।  
नससिख त माधुर्यता अद्भुत भरी नवीन ॥

अद्भुत भरी नवीन रूप गुन चातुरताई ।  
 नहिं तोसी तिहुँलोक कहूँ प्यारी सुखदाई ॥  
 तोहि बुलावत अति अधीर पिय आतुर मोहन ।  
 बैठे हैं बहि कुंज लग्यो चित्त तेरे गोहन ॥

८

ऐसी पिय की प्रीति है तूही देख विचार ।  
 तान मान यों ही वृथा काहे करत अवार ॥  
 काहे करत अवार बेगि उठि चल चन्दानन ।  
 अद्भुत सोभावन्त देखि कैसो वृन्दावन ॥  
 बल्लभ प्राण समान पीय आतुर हित तेरी ।  
 तू हठि बैठी कहा कहै यह रसना मेरी ॥

९

गति सौं मटक चलै छवि सौं लटक चालु,  
 उर वनमाल है विशाल लहकारी जू ।  
 करकी किरन कटि प्रीव की मुरनि दृग,  
 उमकि दुरनि भोहैं भाव भरी भारी जू ॥  
 नाचत सुलफ नटनागर रकिस छैल,  
 लखि रिक्तवारी सब जात वारी वारी जू ।  
 चित्र की लिखी सो राधे बिवस लकोसी रही,  
 आँखिन की पाँखें बाँधी या खिन बिहारी जू ॥

१०

स्याम रूप सागर में नैर वार पारय के,  
 नचत तरंग अग अग रगमगी है ।  
 गाजन गहर घुनि वाजन मधुर वैन,  
 नागिन अलक जुग सोधै सगमगी है ॥  
 भँवर त्रिभगताई पान पै लुनाई तामें,  
 माती मणि जालन की जोति जगमगी है ।  
 काम पौन प्रवल धुकाव लोपो पाज तारैं,  
 आज राधे लाज का जहाज डगमगी है ॥

११-

गागरि गिरी हैं कोऊ सीस उधरी हैं कोऊ,  
 सुष त्रिसरी हैं ते लण हैं द्रुप डारि कै ।  
 डगमग है कै मुजधारी गर द्वै के बाहु,  
 बैठ गई कोऊ सीस मटकी उतारि कै ॥  
 मैन-सर पागी कोऊ धूमन हैं लागी कोऊ,  
 मोती मणि भूषन उतारैं डारैं वारि कै ।  
 ऐसी गति हेरि इन्हें ग्यार कहैं टेरि टेरि,  
 मदन दुहाइ जीति मदन मुगरि कै ॥

१२

मन रिक्तवार ये तो पायल सुमाव निन,  
 सुभट करारे ब्यों सँभार को सँभारि कै ।

हँसहि, हँसावैं सब मोद सरसावैं, अति,  
 चुटुल मचावैं छवि छावैं यहि वग लै ।  
 रहस रचावैं, पिया नवहि, नगारैं तदा,  
 मुकि मुँफ़लावैं मुमकावैं कहैं रग लै ॥

१६

जित तित मूलैं सव गोपिका समूह फुड,  
 ममकि मक़ोरन की सोभा सरमावहीं ।  
 पदुरी की डोरन हिलोरन हुमन मानों,  
 अडुरी दै घटा भीर ओट पन आवहीं ॥  
 फोऊ चवपालन चलन सुर-रमनी क्यों,  
 रीमती जू रमन विमानन पै धावहीं ।  
 फिरकी कै फेरे लों फिरत दग-सग मन,  
 रूप जाल-चक्र परि फिरन न पावहीं ॥

१७

मोतिन का घेली सी मुराना सकुचान भरी,  
 आनन फिरानी कर कानन घरत है ।  
 अकित चितौन है अगान मुसुफ़ान दावै,  
 फावै भाव भरा भोंदैं बित में भरत है ॥  
 मैन मधुवान सजे मुक़न लता पै चद,  
 धूँषट के कोट मानौ मृगया करत है ।

सारँग सुजान स्याम धाय घट धूमै अंग,  
महर उमंग मन मोहिनी परत है ॥

१८

लोने दृग कोने पलकानन छुवत चलि,  
झीने पट देखि पिय दृग गति पंग है ।  
पौन के परस होत हलचल घूँघट ज्यों,  
त्योही द्यो धिवस छकि साँवरे को अंग है ॥  
आत कान लागि मन जान कहै प्राणप्यारी,  
कैसे ये कहाँ ते लरो अचरज दंग है ।  
मुख के दुकूल भूल मूनन मुनानै उर,  
सवहि न जानै नर एतहुँ फिरग हैं ॥

१९

मन-मोहन के दृग की गति तौ मन संग लै घूँघट की ठगइ ।  
लखि सास लखात किशोरी लजात सु भौहैं कछु इतरान ठई ॥  
इतरानहिं की ललचान इतै लागि छूटन नैनन आव पई ।  
रहि कान का लाजहिं रीझि गई इनहुँ ते वहै रिझवारि भई ॥

२०

फचकच खण्ड है ब्रह्माण्ड कोटि कोटि तेरे,  
मेरे रोम कूप ज्यो पै अघ उफनात है ।  
तेरे लच्छ विरद अपार मेरे अपलच्छ,  
तेरे सर्व सक्त मेरे अक्त तिलमात है ॥



औगुनहि एही जग मेरे स्वामी गुनग्राही,  
तेरे आसरे तैं गनिकाहू गति पात है ।  
गरीब नेवाज तैं गरीब मैं निवाजे क्यों न,  
लाय लाय बातन की सूधी एक बात है ॥

२१

ग्राहि ग्राहि धृपभानु नदिना लोको मेरा लाज ।  
मन-मलाह के परी भरोसे धृन्त जन्म-जहाज ॥  
उदधि अवाह थाह नहिं पश्यत भवल पवन की सोप ।  
काम, क्रोध, मद, लोभ भयानक लहरन का अति काप ॥  
प्रसन पसारि रहे सुख तामहिं कोटि ग्राह से जेत ।  
धीच धार तहें नाव एरानी तामहिं धारे कते ॥  
जो लागि सुभ भग करै पार यहि सो कबट भति नीच ।  
वही बात अति ही बीरानी चहत जुगोवन बाच ॥  
याको कहु वपचार न लागत हिय हीनत है मेरो ।  
सुन्दरकुँवरि बौह गहि स्वामिनि एक भरोसा तरो ॥

२२

तजो चारी का धान अयान का ।

नदराय के लला लडोहै सुनलो बात सयान की ॥  
कीरति पठई दुलहा दखन तिय आई बरसान की ।  
सुन्दरकुँवरि सुलच्छन गुननिष व्याहोगे धृपभान की ॥  
आई है ते आय कहेंगो बात राखरे धान की ।

सास कहेगी चोर कुँवर को जैहै वह प्रिय प्रान की ॥  
 इक तो कारो चोर भयो फिर दइया आप लजान की ।  
 सुनि हँसिहैं चदाननि दुलहो जिहँ उपमा न समान की ॥

२३

मेरी प्रान-सजीवन राधा ।

कब तो वदन सुधाधर दरसै यो अँखियन हरै बाधा ॥  
 ठमकि ठमकि लरिकौही चालत आव सामुहे मेरे ।  
 रस के वचन पियूप पोष के कर गहि वैठहु मेरे ॥  
 रहसि रंग की भरी उमंगनि लें चल संग लगाय ।  
 निभृत नवल निकुंज विनोदन विलसत सुख-दग्साय ॥  
 रंगमहल सकैत सुगल कै टहलिन करतु सहेली ।  
 आज्ञा लहौ रहौ तहँ तटपर बोलत प्रेम-पहेली ॥  
 मन-मजरी जु कीन्हो किकरि अपनावहु किन बेग ।  
 सुन्दरकुँवरि स्वामिनी राधा हिय की हरौ उदेग ॥

२४

चतुरंग चमू अति छवि विराज, मणि कनक साजि गजराज बाज ।  
 पुनि दुरद पीठ राजै निसान, धुनि होत दुंदुभी घन लजान ॥  
 केउ चलै गजन पर गुनी नाम, गावैं जु कीर्ति कीनी सुदाम ।  
 पुनि चढ़े अश्व सोभित अपार, छत्रैत सुभट साजे सिंगार ॥  
 पखरैत किते हय पै सवार, जिन जिरह टोप आपै अपार ।  
 राजै अनंत साँवत सुढंग, कर गहै चाप कटि कसि निपंग ॥

सुन्दर म्वर की शोभा अनूप, सुरगन विमान नहिं लगत जूप ।  
 फसि कमर अमर से चल वीर, अनि भई वाहिनी की जु भीर ।  
 पैदल दल शोभा के समूह, लखि चकित रहत सुर विग्रह गूढ़ ।  
 है किछो कटक नाहिन प्रमान, सोभा-समुद्र मनो बमड़ आन ॥

१२५

बानत नगारे अह गाजत गयद भारे,  
 मयमान अरी की नरान गही डरी हैं ।  
 दल पारवार का अपार ख रछो छाव,  
 भार्जे राज राव छर उठे घरधरी हैं ॥  
 बाँधत जे बान सुर ताक तेऊ बहराने,  
 कऊ नजराने है पुरी की रच्छा करी हैं ।  
 अलका में अलकनि मेरु माहि पनकन,  
 सुर का यषू कै हू चमू का रज अरी हैं ॥

२६

घन की घटा मी चटी धूर सैन पावन की,  
 दामिनि कमक छवि तामें बरछान कै ।  
 पीठ गजराजहिं निसान बहगन पीत,  
 विवधे मणिन दण्ड इन्दु घनुवान कै ॥  
 घाय रवि छादित अराम मग छाँद चलें,  
 प्रेम के विनोदा रामरग सरसान कै ।

जानहु सुजान भान-कुल के बड़े के कान,  
छायो मानो रज को वितान आसमान कै ॥

२७

चारु चमूँजु अपार लसैं गजराज की पीठ पै होत नगारो ।  
नीकी अनीकिनि पीत निशान यो सोहत है छवि नैन निहारो ॥  
साँवरे रंग अल्पम अंग अनंगहु तौ सम नाहिं विचारो ।  
आयव हे सखि औध को रावसु पाहन पौव उड़ावन हारो ॥



## चपादे

**चं** पा<sup>१</sup> जैसलमेर के राज महाराज की पुत्रा और बीकानेर के राजा राजसिंह के मा<sup>२</sup> पृथ्वीराज की रानी थीं। स० १८१० के आम पाम पृथ्वीराज का समय माना जाता है। ये एक सुप्रसिद्ध और निपुण कवि थे। गिंगल (राजस्थानी) और दिगल (प्रभाषा) दोना हा भाषाओं पर इनका पूरा अधिकार था। दिगल भाषा में 'प्रम-दापका' नामक पुस्तक थापको उच्च कोटि की रचना है।

महाराज पृथ्वीराज एक बड़े हा प्रतिभावान और रसज्ञ कवि थे। इनकी प्रथम खा का नाम लीलादे था। जा इनक अनुदूत ही शुरार रानी का और प्रवीण ली थी। लीलादे के समान लीला पाकर महाराज पूने न समाने थे। किन्तु काल-चक्र की गति बनी ही विचित्र है। अत में महाराज पृथ्वीराज पर भी वज्रपात हुआ। रामी लीलादे का युवावस्था में ही एक साधारण बामारी स ही देहान्त हो गया। इस आकस्मिक दुर्घटना क कारण महाराज का बड़ा दुःख हुआ। जब उन्होंने लीलादे का सुन्दर, सुकुमार शरीर आग में जलते हुए ला तो अति यादुक हाकर निम्नलिखित दोहा कहा —

तो रौंघ्यो नहि खाव<sup>३</sup> स्योरे, वाम न निसदु<sup>४</sup> ।

मा दखत तू यालिया,<sup>५</sup> लाल रहन हड<sup>६</sup> ॥

अर्थात्—ये अग्नि ! तुझसे पका हुआ भोजन मैं आज से कदापि न करूँगा । क्योंकि तूने मेरे देखने देखने लीलादे को जला डाला । अब केवल हड्डियाँ ही गेप रह गईं ।

संतति के कारण इन्हें लोगों के आग्रह से बाध्य होकर अपना विवाह फिर करना पड़ा । उस बार इनका विवाह चपादे के साथ हुआ । चपादे रूप-नावरण, गुण-योवन में लीलादे से भी बढ़ कर निकली । इमने आते ही पृथ्वीराज की उदासीनता को दूर कर दिया । थोड़े ही दिन में यह हाल हुआ कि चपादे को देखे बिना महाराज को पल भर भी कल नहीं पड़ती थी । चपादे पर मुग्ध होकर पृथ्वीराज ने उसकी प्रशंसा में कुछ दोहे बनाये थे । जिनमें से एक यह है :—

चाँपा तू हररा जसी, हँस कर वदन दिखाय ।

मो मन पातॐ कुपात ज्यो, कबहूँ तृप्त न जाय ॥

पति की सगति से चपादे भी कवि हो गई । एक दिन महाराज पृथ्वीराज 'रुक्मिणी-वेष' में महाराज भीष्म के विलास-भग्नो का वर्णन लिख रहे थे । एक स्थान पर—'चदन पाट'—शब्द से आगे का शब्द नहीं सूझता था । वे बार बार 'चदन-पाट' 'चदन-पाट' कह रहे थे । चंपादे पास ही बैठी हुई महाराज की इन शब्दावली

छपात-कुपात—उस चारण कवि को कहते हैं जो दान के धन से कभी तृप्त नहीं होता ।

चंपादे ने उनकी मानसिक ग्लानि मिटाने के लिए मधुर-मंद-हान्य पूर्वक कहा—नहीं साहिब जी ! यों नहीं यों नमस्क्रिये :—

प्यारी कहे पीथल<sup>१</sup> सुनौ, धोलाँ दिस मत जोय ।

नराँ नाहराँ डिगमराँ,<sup>२</sup> पाकाँ<sup>३</sup> ही रस होय ॥

खेड़ज<sup>४</sup> पक्काँ धोरियाँ,<sup>५</sup> पंथज<sup>६</sup> गउघाँ<sup>७</sup> पाव ।

नराँ तुरंगौँ बनफलाँ, पक्काँ पक्काँ साव ॥

हम नहीं कह सकते कि इन दोहों में महाराज पृथ्वीराज की मानसिक ग्लानि दूर हुई वा नहीं ।

चंपादे राजपूताने की वीर रमणी थी । यह किन्तनी ही लड़ाइयों में महाराज पृथ्वीराज के साथ भी गई थी । इसने लड़ाइयों में बड़ी बहादुरी से काम किया था । महाराज पृथ्वीराज संवत् १८१० में मौजूद थे । इसलिये चंपादे का भी यही समय माना जा सकता है । चंपादे का जन्म-संघट्ट का ठीक ठीक पता नहीं चलता ।

यह वही इतिहास प्रसिद्ध चंपादे रानी है जो नौरोज के जलसों में बादशाह अकबर के चंगुल में फँस गई थी और सतीत्व-रक्षा का कोई अन्य उपाय न देख कर कटार निकाल बादशाह की छाती पर चढ़ बैठी थी । रानी की वीरता ने लम्पट अकबर को हर तरह लाचार कर दिया ।

१. प्रीतम २. नर नाहर तथा दिगम्बर ( जोगी आदि ) के बहु वचन । ३. पक्का ४. खेती ५. बैल ६. रास्ता ७. कँट ।

उसने भग्नदूर हाकर आयदा गले धरों का रहु-वेणियों को मीना बाजार में बुलाने की क्यम खाई और माता कह रानी खंपदे से चमा प्रार्थना की, तब उसके प्राण बचे । इस वीर रानी ने इस प्रकार अनेक रसदियों का सनाय जो भविष्य में चक्र द्वारा नष्ट होता अपनी अतीतिक वारता में बचाकर भारत-माता का सुनौद्वज किया ।





## विरंजीकुँवरि

**श्री** मती विरंजीकुँवरि जी जौनपुर के गढ़वाल नामक गाँव की रहने वाली थी। उनके पति का नाम साहिबदीन था। साहिब-दीन सिंह दुर्गवंशी ठाकुर अमरगढ़ के पुत्र थे। विरंजीकुँवरि की बाल्यकाल ने ही कविता करने की रुचि हो गई थी। अपनी कविताएँ प्रायः ये अपने पति को सुनाया करती थी। जौनपुर में पढ़-ताड़ करने पर हमें यह पता चला है कि अतः में ये मन्यामिन हो गई थी और स्थान-स्थान पर साधुओं की स गति में भी रहा करती थी।

इनकी मृत्यु का हुआ और जन्म कब हुआ, इस सम्बन्ध में अभी ठीक ठीक पता नहीं चल सका। उन्होंने सन् १६०५ में 'मती-विलास' नामका एक ग्रन्थ बनाया है। 'मती-विलास' में स्त्रियों के सम्बन्ध की बातें लिखी गई हैं। 'मती-विलास' में इन्होंने अपने कुटुम्ब का इस प्रकार परिचय दिया है.—

दोहा

सूर्यवंश मे रघु भये, रघुवंशी श्रीराम ।  
तासु तनय लवकुश भये, द्वीखित पूरन काम ॥  
द्वीखित वंश उदित भये, दुर्गवंश महाराज ।  
तिलक जुक्त सुभ सोभिजे, सत्य धर्म कर साज ॥  
आदि सलख ते अलिल भे, तेहि ते भे निरँकार ।

ताहि निरजन सुत भयो, तेहि ते ब्रह्म उदार ॥  
 सहस्रसोस को विधि भये, तेहि ते भे सत मीस ।  
 अष्ट सोस ताके भये, कमलनाभि प्रजनीस ॥  
 जा बरनौ यहि भाति से, बाढे ग्रन्थ अपार ।  
 ताही ते बहुत स्वल्प करि, कहव बम विस्तार ॥  
 आदि अक्षर अरु सूर्य त, पुस्त इगारइ जान ।  
 पुस्त अठावन फिर गये, भे रघु परम सुजान ॥  
 आठ पुस्त रघुवस भे, तब जनमे दृगसेन ।  
 रामचंद्र जू को छनति, द्वीखिन वरान सेन ॥  
 प्रथम सेन पद द्वित गये, जुग सत पुस्त प्रमान ।  
 पाछे साढे तीन से, पाल सो पदवी जान ॥  
 साहि देव औ सिंह पद, पुस्त सहस्र भे बीत ।  
 ताके पीढ़ समन नृप, निज पद पुर करि प्राति ॥  
 समन हुत फिर बानवे, गई पुस्त यहि भाति ।  
 गरिबसाहि राजा भये, दुर्गदास जेहि नात ॥  
 दुर्गदास बल बुद्धि से, उसि लीह मइवार ।  
 महातज ताका अगे, शत्रु भये सहार ॥  
 ताके तेरही पुस्त भे, प्रमरसिंह हरिभक्त ।  
 तासु तनय भम कत है, जानन हैं तहि भक्त ॥  
 जैसे बासन कोटि सों, वास सा लघु नर होय ।  
 कितनो दिन जो बीतई, बाँस कहावे सोय ॥

त्योहीं विधि महाराज के, धंस-प्रसिद्ध उदार ।  
ताते सब नर कहत हैं, श्री महाराज कुमार ॥  
सोरठा

रामचंद्र कर दास, अमरमिह मन वचन तैं ।  
पुत्र होन की आस, सेयो हरि-पद-कमल दृढ़ ॥  
दोहा

सेवत वंश गोपाल के, तेहिं सुत माहिवदीन ।  
सो प्रभु तत्व विचारि के, रहत ब्रह्म में लीन ॥  
यह परिचय इन्होंने अपनी समुदायियों का दिया है। उक्त दोहों से प्रगट होता है कि इनके पति स्वयं भगवद्भक्त थे और ईश्वर की आराधना में लीन रहते थे। इन्होंने 'सती-विलास' में अपने नैहर का भी जिक्र किया है। वह इस प्रकार है :—

दोहा

अब भाखौं माइक अचल, काशी शुभ अस्थान ।  
जाके दरसन हेत हित, देव करहिं प्रस्थान ॥  
विमल वंश रघुवश के, वही बयार मरीह ।  
ग्राम नेवादा में विदित, मम पितु भीतलसौह ॥

इन दोहों से प्रगट होता है कि इनका नैहर बनारस जिले के नेवादा ग्राम में था। इनके पिता का नाम भीतलसिंह था। 'मनी-विलास' ग्रन्थ इनका प्रकाशित हो गया है। हमारे पास यह पुस्तक है। इनकी कविता साधारण दर्जे की है। लेकिन तो भी स्त्री होने से ये कविता

साधारणतया अङ्गी कर लेती थीं । 'सता विज्ञास' में पतिव्रत धम्म  
आदि छियोचित बातों पर प्रकाश डाला गया है । हम इनकी कुछ  
कवितायें नीचे उद्धृत हैं —

१

गित जौनपुर में गङ्गारा । दुर्गवरा सहँ बसहिँ उदारा ॥  
कोसहा आम कुटी रून माला । सहँ वमि कत विनावत काला ॥  
तहाँ ज्ञान अनुभव तम पाये । सो करि प्रगट ग्रथ हम गाये ॥  
गान सून्य अरु अक मिलाई । तापर चढ़ नहु पुनि भाई ॥ॐ  
शून्य सप्त मुनि इहु बखानौ । यथा अक माक पहचानौ ॥†  
साधन सित पूनव जब आई । तब मेरे मन हुलमत भाई ॥  
जोचेउ धम्म पतिव्रत केरा । जाने कलँ सब धम बसरा ॥  
का पतिव्रता का व्यवहार । कवन धम्म तिय सुगति सिँगार ॥  
कवन वर्त पति के पिय भाखौ । जेहिँ हित जीय दह में राखौ ॥  
अब पिय निरनय नहु बताइ । मैं गंधारि कहु जानि न पाई ॥  
घरीं सदा पति पद कर पूजा । जानौ देव अवर नहिँ पूजा ॥  
पदीं सुनीं पति सग पुराना । यूकीं वेद शास्त्र कर ज्ञाना ॥  
आत्म ज्ञान अरु तत्त्व विभेदा । ब्रह्म ज्ञान कहु भावित वेदा ॥  
सो सब सुनत रहाँ दिन राती । एक लालसा मा मति मानी ॥  
जारि दुश्मो कर पति सन पूजा । यह ता धम्म तियन कर पूजा ॥

ॐ सवत् १८०४ । † सवत् १८०५ ।

कहौ धर्म पतिवर्त विचारा । जेहि सुनि नारि होहि भव-पारा ।  
किमि कर रहे चरन मँह सेवी । जेहिते धर्म-नारि होइ देवी ॥

२

तीरथ सो कछु नेम नहीं,  
अरु जानो नहीं कछु देव पुजारी ।  
चाल कुचाल हमे नहिं मालुम,  
याते कहैं सब लोग गँवारी ॥  
ज्ञान विवेक कहा लहे नारि,  
सदा जेहि निर्धन संत विचारी ।  
तातें 'विरजी' विचारि कहै,  
मोहि देहु सियापति कत सो यारो ॥

३

होइ मलीन कुरूप भयावनि,  
जाहि निहारि घिनात हैं लोगू ।  
सोऊ भजे पति के पद पंकज,  
जाइ करे सति लोक में भोगू ॥  
ताहि सगाहत हैं विधि शेष,  
महेश बखानै विसारि के जोगू ।  
यातें "विरजी" विचारि कहै,  
पति के पद की तिय किंकरि होगू ॥

## रत्नकुँवरि वीवी

**वी**वी रत्नकुँवरि का जन्म मुर्शिदाबाद के प्रसिद्ध जगत सठ के घराने में हुआ था। इनका जीवन बड़ा ध्यानमग्न था। इन्होंने ब्रह्मावस्था तक अपने पुत्र-पौत्रों के साथ घपना जीवन मुक्तपूर्वक व्यतीत किया। वे बड़ी पंडिता और विदुषी थीं। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' इनके पौत्र थे। इनका स्वभाव सरल और भावपूर्ण प्रतीय था। वे ब्रह्मावस्था में योगियों की भाँति रह करती थीं। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने इनका परिचय इस प्रकार दिया है —

“वह सदा सत में बड़ी पंडिता थीं। इन्होंने शास्त्र की वेत्ता पारसी भाषा भी इतनी जानती थीं कि मौलाना रुम की मयनवी और दीवान शम्स गदरेज़ 'नव कमा' हमारे पिता पढ़कर सुनाते तो उसका सम्पूर्ण आशय समझ लेती थीं। गाने-बजाने में अत्यन्त निपुण थीं। बिक्रिस्ता यूनानी और हिन्दुस्तानी दोनों प्रकार की जानती थीं। योगाभ्यास में परिपक्व थीं। व्रत नियम आदि धृति श्रद्धाओं और मुनियों का सा थी। सत्तर वर्ष का अवस्था में भी बाह्य काले थे तथा आँखों में उषाति बाँझों की सा थी। वह हमारा दादा थीं। इससे हमका भय उनकी अधिक प्रशंसा लिखने में लाज आता है। परन्तु जा सदा सत और पण्डित ज्ञान उस समय के उनके ज्ञानने वाले कारी में बतमान हैं वे उनके गुणों को अघावधि स्मरण करते हैं।

उपरोक्त कथानक से यह मालूम होता है कि बीबी रत्नकुँवरि वास्ता में बड़ी योग्य और साधु रमणी थीं। शायद उन्होंने अपना अन्तिम काल काशी में ही बिताया था।

इनका एक ग्रंथ 'प्रेम-रत्न' राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' ने सन् १९४५ में प्रकाशित कराया था। यह ग्रंथ हमारे पास मौजूद है। इस पुस्तक में "श्रीकृष्ण व्रजचंद आनंद-कंद की लीलाओं का उल्लेख कविता में परम प्रेम और प्रचुर प्रीति से किया गया है।" पुस्तक में कुल ७६ पृष्ठ हैं। सारा वर्णन दोहा और चौपाई छंदों में किया गया है। इस पुस्तक की भाषा और भाव को देख कर यह प्रकट होता है कि रत्नकुँवरि बीबी भाषा में भी काफी दखल रखती थीं। कविता इनकी अच्छी है। पता नहीं इन्होंने और कोई ग्रंथ बनाया है या नहीं। हमारे देखने में इनका और कोई अन्य ग्रंथ नहीं आया। 'प्रेम-रत्न' से कुछ छंद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं —

### चौपाई

भक्ताधीन विरद प्रभु केरे। गावत वाणी वेद घनेरे।  
सतत रहत भक्त के पासा। पुरवत हैं प्रभु तिनकी आसा॥  
जे सप्रेम हरि सो मन लावैं। तिनको कबहूँ नहि विसरावैं॥  
ग्राह-ग्रसित गजराज छुड़ाये। गरुड़ छाँड़ि तहँ आतुर धाये॥

---

\*यह दूसरी देवी है जिन्होंने प्रबोध-काव्योचित दोहा-चौपाई वाली शैली में कृष्ण-काव्य लिखा है।

पुनि प्रभु पाण्डव जरत बचायो । द्रुपद सुता को बसन धढायो ॥  
 अजामील यम ते ररि लीन्हा । भजन प्रताप ध्रुवहिं वर दीहों ॥  
 जन प्रह्लाद अभय करि थाप्या । ताही बार न बारहि व्याप्यो ॥  
 जो जन मन ते ध्यावहिं जैसे । ताकहुं प्रभु फल दते बैस ॥  
 अग जग सकल विरथ के स्वामी । सर्वमयी सब अन्तर्यामा ॥  
 प्रेम युक्त ब्रज जन मन ध्यायो । तात प्रेम हृदय हरि छायो ॥  
 प्रभु के मन यह रहत सदाहीं । ब्रज वासिन ते भेंच्यो नाहीं ॥  
 एक दिन दिनकर ग्रहण भयो जन । बहु नर नारी जात चले तब ॥  
 जानि परम कुरुखेतहि पावन । सकल चलेतहुं ग्रहण नहावन ॥  
 यह सुनि यदुनन्दन मन मानी । एक पथ छे कारज ठाना ॥  
 कछो यदुवपति यदुकुल बेतू । हम सब चलों चले कुरुखेतू ॥  
 जेते अरु पुरजन पुरवासी । तिनहुं कहहु यह बात प्रकासी ॥  
 ग्रहण नहाहु सकल तहँ जाई । सुनि आयसु सब शीश चढ़ाई ॥  
 मुदित सकल आनंद रस पागे । गवन साज साजन कहँ लागे ॥  
 अधिकारिन सब काज सँवारे । नाना वाहन सुभग सिँगारे ॥  
 सुनत परसपर सब नर नारी । घर घर निज निज सीँज सँवारी ॥  
 द्वारावति के जिते निवासू । चले जात सब परम हुलासू ॥  
 क छो कटक अति परम विशाला । चले सग अगणित भूपाला ॥  
 कारे करिवर गरजन लागे । सावन घन जनु लपि अनुरागे ॥  
 अगणित तुरँग चने दिहिनावत । रघर बसह ऊँट अररावत ॥  
 अपित भीर मग परत न पाया । घूरि घु घ नभ-मडल छायो ॥



मग में होत कोलाहल भारी । मुदित करत कौतुक नर-नारी ॥  
 यों पहुँचे कुरुखेतहिं जाई । परिगो कटक तहाँ छिति छाई ॥  
 हाट बजार दुकान । सुहाई । तहाँ सब वस्तु मिलत मन भाई ॥  
 देश देश के यात्री आये । भये तहाँ मिलि अनंद बधाये ॥

दोहा

वरन वरन वर तंबुवन, दीन्हो तान वितान ।  
 अति फूले फूले फिरत, डेरा परत न जान ॥  
 जबते मथुरा तन चितै, तजि ब्रज-जन यदुनाथ ।  
 विरह बिथा वृज में बढी, तहाँ सब भये अनाथ ॥  
 प्रिय तीरथ कुरुखेत सब, आये ग्रहण नहान ।  
 यदुपति राधा गोप गण, नन्दादिक वृषभान ॥  
 गोप एक नट-भेष सजि, आयो बीच बजार ।  
 तहाँ खरभर लशकर पखो, सो अति रह्यो निहार ॥  
 इक यादव हँसिके कह्यो, कहाँ तुम्हारो वास ।  
 अति सुन्दर तन छवि बनी, नाम कहहु परकास ॥  
 तब उनहू कहि तुम कहहु, काके संग कित ठाउँ ।  
 द्वारावति-पति कटक यह, कह्यो यदुव निज नाउँ ॥  
 सुनत द्वारका नाम तिहि, लियो विरह उर छाँय ।  
 हा नँद-नंदन कन्त कहि, गयो ग्वाल मुरझाय ॥

चौपाई

इक गोपाल संग मम जाई । वस्यो नृपति है सोइ पुर छाई ॥

हम कहें छौंदि मयो सो न्यारे । ताही विनु सब भये दुखारे ॥  
 तुम लशकरिये भूप उदारा । कत पूछत हम जात गैवारा ॥  
 सुनि यादव कछु मन विहँसाना । तुम ब्रजचामी हौ हम जाना ॥  
 जिनको तुम भाषत गोपाना । उनहीं को यह कटक रिमाना ॥  
 अब दुख भेटहु भेटहु तिनत । गयो ग्वाल हरि-कटकहि सुनते ॥  
 तिनकहँ आगम सगुन न्यायो । कछु अनद है है मन आयो ॥  
 ग्वालहि आवत रहे निहारा । गद्गद् कठ न सकत सँभारो ॥  
 दूरहि ते घाल्यो गोपाना । मनमोहन आये नँदनाचा ॥  
 जिन विन सब ब्रज भये दुखारे । त आये इहँ प्रान-पियारे ॥  
 सुनि गापिन नहिँ परत पत्थारो । कहँ पेसो है पुण्य हमारो ॥  
 सुनत नद-नैनन चल छाये । ऐसे भाग कहाँ हम पाये ॥  
 लोग लोग सब पूछत मारे । कहँ उत्तर प्राणन के प्यारे ॥  
 सुनतहिँ यगुमति हू गई बौरा । ता ग्वालहि पूछत उठि दौरी ॥  
 आये श्याम सत्य कहू मैया । मोहिँ दिखावहु नेक कन्हैया ॥  
 निज लानन को कठ लगाऊँ । दुसह विरह को ताप नमाऊँ ॥  
 कह अब गहरु करत बेकानहि । भेटहु बेगि सकल ब्रजराजहि ॥  
 तब ऐसे भाष्यो नँदराड । अब हरि-छौंदि न ब्रज का नाई ॥  
 मरिण स्वचित बैठत मिहासन । चँवर छत्र कर गये स्वनामन ॥  
 अतिहि भार नृप वास न पावें । द्वागहि त बहु फिरि फिरि आवें ॥  
 छत्रपतिहि छरियन बिलगावत । तहँ हमसब की कौन चलावत ॥  
 छपन कोटि यदु छाहि सगावे । क्यों मानै धायन के नात ॥

कोउ कह ऐसे कैसे जैहैं । हमकहु लखि हरिमनहिं लजैहैं ॥  
 कोउ कह मणि आभूषण पहिरे । अवर वर विचित्र रँग गहिरे ॥  
 कोउ कह हम तो ऐसहि जाहीं । अब तो कछु वनिआवत नाहीं ॥  
 हरि को देखि परम सुख पैहैं । ता अनुचर कर मारहु खैहैं ॥  
 कोउ कह हम नीके भुज परि हैं । भे राजा तो का धौं करि हैं ॥  
 करत मनोरथ कोउ मन माही । कोऊ खोज लेन उठि जाहीं ॥  
 कहत परस्पर मुदित गुवाला । अब तो फिरि आये गोपाला ॥  
 इक कह अब गोकुल लै जैहैं । हमते बहुरि जान कहँ पैहैं ॥  
 कोउ नाचत है दै कर तारी । बहुविधि करत कुलाहल भारी ॥  
 एक एकन ते देत बधाई । मानहुँ सयन गई निधि पाई ॥

### दोहा

भये मगन सब प्रेम रस, भूलि गए निज देह ।  
 लघु दीरघ वै नारिनर, सुमिरत शमाम-सनेह ॥  
 कहत परस्पर युवति मिलि, लै लै कर अँकवार ।  
 प्रीतम आये का सखी, तन साजहु शृंगार ॥  
 इक आई आनँद उमंगि, प्यारिहिं देत बधाय ।  
 प्राणनाथ सुखदैत इहँ, मोहन उतरे आय ॥  
 तहँ राधा की कछु दशा, वर्णत आवे नाहि ।  
 मलिन वेश भूषण रहित, विवस रहित तन माहि ॥  
 कबहुँ सुरावत विरह-वश, पीत वरण है जाय ।  
 कबहुँ व्यापत अरुणता, प्रेम-मगन मुद छाँय ॥

कान्ह कान्ह कबहुँ कहत, कबहुँ रटत निज नाम ।  
 मौन साधि रहि जात जब, अभित होत अति बाम ॥  
 चक्ष चितवत जित तित हरी, अवण मुरलि धुनि-लीन ।  
 श्याम बास बसि नाक मणि, रूप पयोनिधि मीन ॥  
 तन मध घन गृह जनन की, नकहु सुधि तिहिं नाहिं ।  
 चितवत काहु नहिं दगन, लगन लगी उर माहिं ॥



## प्रतापवाला

**श्री** प्रतापवाला का जन्म गुजरात अन्तर्गत जामनगर राज्य में संवत् १८९१ में हुआ। इनके पिता का नाम रिडमल जी था। इनका विवाह सवत् १९०८ में जोधपुर के महाराजा तख्त सिंह के साथ हुआ। इनके विवाह में इनके माई जाम बीमा जी ने लाखों रुपये खर्च किये थे।

महाराज तख्तसिंह के बहुत सी रानियाँ थी किन्तु इनका विशेष आदर होता था। क्योंकि ये बहुत सुशीला और बुद्धिमती थीं। अपने राज्य-काज के कामों में भी ये दिलचस्पी लेती थीं। इनकी दान-शीलता भी अत्यन्त सराहनीय थी। एक बार मारवाड़ में सम्बत् १९२५ में अकाल पड़ा। सैकड़ों लोग भूखों मरने लगे। जामसुता श्री प्रतापवाला जी की उदारता उसी समय प्रगट हुई। इन्होंने अपनी प्रजा के लिए लाखों रुपये का अन्न वितरण करवाया। राजपूताने की रिपोर्ट में लिखा है—“मारवाड़ में जब सवत् १९२५ में अकाल पड़ा तब अधिक दान देने की उदारता श्री जामसुता रानी प्रतापवाला ने दिखाया। वे प्रति ७ मन पका हुआ भोजन गरीबों को बाँटती थीं। उच्च और भले घर के लोगों के यहाँ वे स्वयं कितना ही मामान उनके घर पहुँचा दिया करती थीं।” इससे प्रगट होता है कि ये दान देने में भी अद्वितीय थीं। ये

कवियों का भी अधिक आदर करनी थी। मारवाड़ के अकाल में जो सहायता उन्होंने शरीरों को दी उससे सरकार भी इनकी कान्ति क्याति हो गई। “प्रतापकुँवरि-स्त्रावला” के ज्ञान में लिखा है — “विज्ञायत स जो खलीता आया था उसमें लिखा था कि जिस समय मैं माता अपनी सत्तान का पालन कर सकी उसी समय मैं महातानी जी ने प्रजा का पालन करके उसे अकाल मृत्यु से बचाया।”

सन् १६२६ में महाराजा तज्जतसिंह का देहान्त हो गया। ये विषय हो गई। इनके प्रथम पुत्र श्री बहादुरसिंह महाराज तज्जतसिंह के बाद सिंहासन के अधिकारी हुए। यही प्रतापराजा जी के जीवनाधार थे। किन्तु महाराज बहादुरसिंह जी भी अधिक मय्यसनी होने के कारण सन् १६३६ में स्वर्गधाम विचार गये। इनके द्वितीय पुत्र का भी सन् १६५८ में स्वर्गवास हो गया। महारानी प्रतापराजा जी इस समय बहुत दुःखी हुई क्योंकि इनके पुत्रों का भ्रमण में ही देहान्त हो गया।

पति और पुत्रों के मृत्यु के परचार इनका हृदय परोपकार की ओर झुक गया। ईश्वर की भक्ति भी इनके हृदय में बहुत बढ़ गई। इन्होंने अनेक स्थानों पर कितने ही सांख्य और कुंभे खुदवाये। एकदशी और पूर्णिमा को साधुओं और माहर्षियों के लिये सदावर्त बँटवाया। कितने ही देव-मन्दिर बनवाये। मारवाड़ में आसापुर देवा का मन्दिर 'राम' ) आदि कितने ही प्रणय के स्थान परिचय देते हैं।

जामसुता श्री प्रतापवाला भगवान् कृष्ण की बड़ी भक्त थीं। श्री मद्भागवत का पाठ इन्हें अत्यन्त प्रिय था। 'सूर-भागर' पढ़ते पढ़ते इन्हें कविता करने का गौक उत्पन्न हो गया था। वे भगवान् कृष्ण के ध्यान में मग्न होकर बहुत से पद और स्तुति बनाया करती थीं। इनके बहुत से पद "प्रतापकुँवरि-रत्नावली" नामक पुस्तक में छपे हैं।

"प्रतापकुँवरि-रत्नावली" नामक पुस्तक अच्छी है। इसमें प्रताप-वाला जी के सिवा और भी कई कवियों की रचनायें संग्रहीत हैं। जोधपुर निवासी छगनीराय व्यास और श्याम कवि (जामनगर निवासी) की कवितायें उक्त पुस्तक में अधिक संग्रहीत हैं। प्रताप-वाला की कविता अच्छी है। इनकी कविता में राजपूताने की बोली भी आ गई है। कृष्ण-भक्ति की छटा इसमें अच्छी तरह झलकती है। इनका कविता-काल सवत् १६४० के लगभग माना जा सकता है। "प्रतापकुँवरि-रत्नावली" में हम यहाँ कुछ रचनायें उद्धृत करते हैं.—

१

वारी थारा मुखढारी श्याम सुजान ।

मन्द मन्द मुख हास्य विराजै कोटिक काम लजान ।

अनियारी अँखियाँ रसभीनी बाँकी भौंह कमान ॥

दाढ़िम दसन अधर अरुणारे वचन सुधा सुख-खान ।

जामसुता प्रभु सों कर जोरे मेरे जीवन-पान ॥

२

लगन न्होरी लागी चतुरभुज राम ।  
 श्याम सनेही जीवन ये ही औरन सों का काम ।  
 नैननिहारूँ पलन बिसारूँ सुमिरूँ निसि दिनश्याम ॥  
 हरि सुमिरन त सब दुख जाये मन पाये बिसराम ।  
 तन मन धन न्योछावर कीजै कहत दुलारी जाम ॥

३

चतुरभुज मूलत श्याम हिंडोरे ।  
 कचन खभ लगे मणि मानिक रसम की रँग खोरे ।  
 समझि घुमझि धन बरसत चहुँदिसि नदिया लेत हिलारें ॥  
 हरि हरि भूमि-लता लपटाई कोलत कोकिल मोरें ।  
 बाजत धीन पखावज बसी गान होत चहुँ ओर ॥  
 जामसुता छवि निरख अनोखी बारूँ काम किरोरें ।

४

प्रीतम हमारो प्यारो श्याम गिरधारी है ।  
 मोहन अनाथ नाथ, सतन के डोलें साथ,  
 वेद गुण गावे गाथ, गाकुल विहारी है ।  
 कमल बिसाल नैन, निपट रसोले बैन,  
 दीनन को सुख-दैन, चारभुजा धारी है ॥  
 केशव कृपा निधान, बाही सो  
 तन न, जीवन



सुमिरूँ मैं साँफ़ भोर, बारबार हाथ जोर,  
कहत प्रताप कौर, जाम की दुलारी है ॥

५

प्रीतम प्यारो चतुरभुज वारो री ।  
हिय तें होत न न्यारो मेरे जीवन नन्ददुलारो री ।  
जामसुता को है सुखकारो, साँचो श्याम हमारो री ॥

६

भजु मन नन्द-नन्दन गिरधारी ।  
सुख-सागर करुणा को आगर भक्त-वृद्धल वनवारी ।  
मीरा, करमा, कुवरी, मवरी, तारी गौतम-नारी ॥  
वेद पुरानन मे जस गायो, ध्याये होवत प्यारी ।  
जामसुता को श्याम चतुरभुज लेगा खबर हमारी ॥

७

सखिरी चतुर श्यामसुन्दर सों,  
मोरी लगन लगी री ।  
लाख कहो अब एक न मानूँ,  
उनके प्रीति पगी री ॥  
जा दिन दरस भयो ता दिन तें,  
दुविधा दूर भगी री ।  
जामसुता कहे उर विच उनकी,  
आती आन जगी री ॥

८

मो मन परी है यह बान ।

चतुरमुज के चरण परिहरि ना चहूँ कठु आन ॥

कमल नैन विमल सुन्दर मन्द मुख मुसुकान ।

सुभग मुकुट मुहावनो सिर, लसे कुण्डल कान ॥

प्रगट भाल विमल गजत, भौंह मनहुँ कमान ।

अग अग अनग की छवि, पीत पट फहरान ॥

कृष्ण-रूप अनूप को मैं, घरु निसि दिन ध्यान ।

जामसुत परताप के मुजवार जीवन प्राण ॥❀




---

❀ देवी की ने इस रचना में विशेष रूप ॥ कृष्ण-काम्य की पद रचना-शैली का ही उपयोग किया है और वज्रभाषा का पञ्चा रूप दिया है ।

## बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवरि

**श्री**मती बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवरि जी रीवां के विख्यात महाराजा रघुराज सिंह जी की सुपुत्री थी। महाराजा रघुराज सिंह हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, अनेकों कवियों के आश्रय-दाता और वेष्णव भक्त थे। आपका जन्म संवत् १६०३ में और विवाह संवत् १६२१ में जोधपुर के महाराजा श्री जसवतसिंह जी के छोटे भाई श्री किशोरसिंह जी से हुआ था। आप बड़ी भगवद्भक्त थीं। इनमें कविता करने की अच्छी प्रतिभा थी। ये अपना हस्ताक्षर 'दीनानाथ' के नाम से करती थीं। वैष्णवमतानुयायिनी थीं। इन्होंने दीनानाथ का एक मन्दिर जोधपुर में संवत् १६४७ वैशाख सुदी १० को बनवाया था। अकस्मात् सन् १६१५ में इनके पति श्री० किशोरसिंह जी का स्वर्गवास हो गया। पति के परलोकवासी हो जाने पर इन्हें बड़ा दुःख हुआ। उसी समय से ये कृष्ण-प्रेम के रँग में रँग गईं और कविता करने लगीं।

आपने दो ग्रंथों की रचना की है। १. अवध-विलास २. कृष्ण-विलास। तीसरा ग्रंथ भी इनका मिला है इसका नाम है राधा-रास-विलास। हमारे पास 'राधा-रास-विलास' और 'अवध-विलास' दोनों ग्रंथ मौजूद हैं। अवध-विलास दोहे और चौपैया छंदों में लिखा गया है। इसमें श्री रामचन्द्र जी का चरित्र-वर्णन किया गया है। 'राधा-

रास विखास' में बच-बच दोनों लिखा गया है। ग्रंथों को देखने से मालूम होता है कि इनकी कविता सुन्दर, भगवद्भक्ति से परिपूर्ण होती थी। कानपुर से प्रकाशित होने वाले पुराने पत्र 'रसिक-मित्र' में इनकी कवितायें प्रायः छपा करती थीं। हम इनके कुछ पद्य उद्धृत करते हैं —

१

आये प्रागराज में प्रभुवर, मुनिन कीन्ह परनामा ।  
चित्रशूट में फेर विराजे, निरख अनेक सुनामा ॥  
बन में बसे प्रभू लखिमन सँग, कैसा था वह देना ।  
तहाँ सुपनया आई छलकूँ, सुन्दर निरख रमेसा ।  
आई कही राम की ओरा, भूल गई मन मोरा ॥  
रहूँ तुम्हारे घर में प्यारे, सुनो अवध चित्त ओरा ।  
हैंसे प्रभू सीता को लप के, बोले बैन गँभीरा ।  
हमारे नारी बड़ी सुन्दरी, जाओ लखिमन ओरा ॥  
जाके नारि नहीं है बाके, जाय धरे तुम रहहू ।  
कुँवर बड़ो है रसिक लाडिली, मुदित मना हो रहहू ॥  
चली सुपनया लखिमन ओरा, कहे बचन मुसुकाई ।  
राखो हमसो नारि । सुन्दरा, हिल हिल रहा सदाई ॥

बालि प्रसंग—

घर तें मुकड़ि बालि तब आवा, नारि पकड़ समुझाई ।

मीच विवस नहिं सुनी बात वह, चला लड़न को धाई॥  
 परा विकल महि सर के लागे, सर साधे रघुनाथा ।  
 पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे, गहे धनुष सर हाथा† ॥  
 धर्म हेत अवतरेहु जगत मे, क्यो मोहि मारेउ नाथा ।  
 समदरसी सब कहैं तुमहिं तौ, बड़ी तुम्हारी गाथा ॥  
 प्रभु समुझाय गती दै ताको, कै सुग्रीव को राजा ।  
 अगद को युवराज बनायो, विपिन बीच सुख-साजा ।  
 आई वर्षा ऋतु वरनन कर, आगे कपिन समाजा ॥  
 जामवंत नल-नील भालु वानर, सब साजे साजा ।  
 दै वीरा हनुमान पठाये, सीता खोज कराई ॥  
 चारो दिशि जाओ सब कोई, यूथ अनेक सजाई ।  
 ह्वां रावन निसिचरो संग लै, त्रास दिखावहि जाई ।  
 अति लघुरूप केसरी-नंदन, धरा कथा बतलाई ॥  
 फेर मुद्रिका सिय को दीन्हों, वरनन गुन तव लागा ।

---

॥ परा विकल महि सर के लागे ।

पुनि उठि बैठि देखि प्रभु आगे ॥

—तुलसीदास

† तुलसी-कृन रामायण के इसी प्रसंग की चौपाइयों से मिलाइये और देखिये कि देवी जी ने अपने काव्य को उस पर कितना आधारित किया है ।

सुनतै मन में मोद समायो, सीता को दुःख भागा ॥  
 राम-दूत में मातु जानकी, सत्य शपथ करुना की ।  
 यह मुद्रिका दियो सहदानी, बरन अनूपम या की ॥  
 भीता बर कूँ दियो भयो, गद्गद मे हनुमत घोरा ।  
 बड़ो सरार निराय सिया को, खाये फल बन तीरा ॥  
 रावन भेज्यो मेघनाद कूँ, कपिन बाँध लै आऊ ।  
 गम काज हित आप वैधाये, दुःख पायो कपिराऊ ॥

( 'अवध विलास' छे )

२

निरमोही बैसो जिय तरसावै ।

पहले मलक दिलाय हमै कूँ अब क्यों बेग न आवै ॥  
 कब सों तलफत में री सजनी बाको दरद न आवै ।  
 निष्पुडुँवरि दिल में आकर क णसा पीर मिटावै ॥ॐ

३

रूप परस्पर दोऊ लुभान ।

नैन बैन सन म हिं रहे हैं सब हैं हाथ निकाने ।  
 अधिक पिया प्यारा क छत्रि पर करत न कटु अनुमाने ॥

---

ॐ मालूम होता है कि आपन यह काव्य जोधपुर हा में लिखा था ।  
 क्योंकि आपका मुद्रजा भाषा में जोधपुरी भाषा का भी कुछ प्रभाव  
 प्रतीत होता है ।

प्रिया हुलस प्रीतम-अंग लागे बहुत उचक ललचाने ।  
विष्णुकुँवरि सखियों सत्र बोलीं मन मेरो उँमगाने ॥

४

नैन कू प्यारे करि राख्यो श्याम ।  
प्यारी के वारने जाउ मैं नैन सों मेरो काम ।  
ब्रजसुन्दरी कहौ मेरी मानो प्राण ते प्यारी वाम ॥  
छैल की प्यारी सुनो राधेरानी तुम्हे देख नहिं काम ।  
विष्णुकुँवरि रोम्हो पिय बोली छोड़ नैन कू नाम ॥

५

जमुना तट रग की कीच बही ।  
प्यारे जी के प्रेम लुभानी आनंद रग सुरंग चही ॥  
फूलन-द्वार गुथे सब सानी युगल मदन-आनन्द लही ।  
तन मन सुन्दरि भरमति विहवल विष्णुकुँवरि है लेत सही ॥

६

श्याम सों होरी खेलन आई ।  
रँग गुलाल की झारि लिए सब नवला सज-सज आई ।  
वाके नैन चपल चल रोम्है प्रियतम पै टकटकी लगाई ॥  
होडा-होड़ी देखा-देखी होरी की रँग छाई ।  
उतै सखन सँग आय विराजे सुन्दर त्रिभुवनराई ॥  
इतै सखिन सँग होरी खेलन राधे जू चलि आई ।  
बारंवार अवीर उडावै डार कृष्ण-अँग धाई ॥

दाऊ जी पिचकारि चलावै सुदरि मारि हटाई ।  
मधुर मधुर मुसुकात जाय परुडे हलधर को भाई ॥  
राधे जू के नरल बदन से साड़ी दय हटाई ।  
निरगि अनूयम होरो खेलन सबहीं हँसे ठठाई ॥  
विष्णुकुँवरि सतियोँ सन छोडो हलधर मे सुपदाई ।

७

घृन्दाघन पाउस छाया ।

बहुँ दिसि वारे अन्तर छाये नील मणी प्रिय मुग छायो ॥  
कोमल कूक सुमन कोमल के कालिन्दी कल कूल सुहायो ।  
विष्णुकुँवरि जग श्याम रँग छयो श्यामहि सिंधु समायो ॥

८

क्यों घृथा दोष पिय को लगावत ।

तों हित चद्रमुखी चातक वन परसन कूँ नित चाहत ॥  
हैं बहु नारि रसीली ब्रज में बातो तुम कोइ चाहत ।  
तों हित घृन्दाघन राधे सब सतियन रास दिखावत ॥  
तेरो रूप हिये में भारत नित निरखत सुख पावत ।  
विष्णुकुँवरि तब राधे चरनन हाथ जोड सिर नावत ॥

९

अरै मत जाओ प्राणपियारे ।

तुम्हें देख मन भयो उमँग में मेरा चित्त चुरायो रे ॥



कहा कहुँ या छवि बलिहारी नैनन में ठहरायो रे ।  
विष्णुकुँवारि पकड़ि चरनन कां बरवस हृदय लगायो रे ॥

१०

अन ही आये श्याम रे ।

मोह मन सत्र बाय प्यारो हो गई बिन काम रे ।  
बोल वंशी हरत मन है बार बार मुदाम रे ॥  
बैठ अधरा पै गवीली लसत अनुपम वाम रे ।  
श्याम के मुख सुभग सोभित विष्णु तन है छाम रे ॥

११

बाजैरी वँसुरिया मन-भावन की ।

तुम हो रसिक रसीली वंशी अति सुन्दर या मन की ।  
या मुख ले बाको रस पीवे अँग अँग सुखमा तन की ॥  
या मुख की मैं दासि चरन रज दोड सुख उपजावन की ।  
शोभा निरखत सखी सवै मिलि विष्णुकुँवरि सुख पावन की ॥

१२

छोड़ि कुल कानि और आनि गुरु लोगन की ,

जीवन सु एक निज जाति हित मानी है ।  
दरस उपासी प्रेम-रस की पियासी बाके,  
पद की सुदासी दया-दीठि की बिकानी है ॥  
श्रीमुख-मयंक की चकोरी ये सुखोरी बीच,  
ब्रज की फिरत है है भोरी दुखसानी है ।

जिन्हें अतिमानी चर पतरो सी जानी,  
हम सों त रारि ठानी अब कूवरा मिठानी है ॥

१३

सुन्दर सुरग अग अग पै अनग वारो,  
जाके पद पकज में पकज दुखारो है । ❀  
पीत पटवारो मुख मुरली सँवारो प्यारो,  
कुण्डल मलक मुख मोर पख धारो है ॥  
कोटिन सुधाकर की सुयमा सुहाव जाके,  
मुख मों लुभाती रमा रभा सी हजारो है ।  
नद को दुलारो श्री बशोदा को पियारो,  
जौन भक्त मुख साध सो हमारा रखारो है ॥  
( 'राधा रास विलास' से )

---

❀ सुन्दर सुरग रग आभित अनग-अग  
अग अग फैलत तरंग परिमल के ।

## रत्नकुँवरि बाई

**म**हारानी रत्नकुँवरि बाई जी जाखन के ठाकुर लक्ष्मणसिंह की सुपुत्री थी। इनका विवाह १५ वर्ष की अवस्था में ईंदर ( शेखावत ) के महाराज प्रतापसिंह के साथ हुआ। इनका विवाह इनकी फूफी श्रीमती प्रतापकुँवरि बाई जी ने किया था।

श्रीमती प्रतापकुँवरि बाई जी कृष्ण-भक्त और ऊँचे दर्जे की कवियित्री हो गई है। उन्हें कविता से भी बड़ा प्रेम था। रत्नकुँवरि बाई जी भी उन्ही की सगति से कविता करना सीख गई थीं। ये भी कृष्ण-भक्ति और भगवन्-चर्चा में ही अपना समय बिताने का उद्योग करती थी। इन्होंने कुछ कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी रचनायें भी रची हैं; जिनमें से कुछ नीचे लिखी जाती हैं।—

१

सियावर तेरी सूरत पै हूँ बारी रे।

सीस-मुकुट की लटक मनोहर मजु लगत है प्यारी रे ॥

वा छवि निरखन को मो नैना जोवत वाट तिहारी रे।

रत्नकुँवरि कहे मो ढिग आके झलक दिखा धनुधारो रे ॥

२

मेरो मन मोह्यो रँगीले राम।

उनकी छवि निरखत ही मेरो बिसर गया सब काम।

आठों पहर हृदय बिच मेरे आन कियो निज घाम ॥  
रतनकुँवरि कहै वाके पलपल ध्यान धरूँ नित साम ॥

३

रघुवर म्होँरा रे मैहूँ दरस दिग्या जा रे ।  
तो देखन की चाह घनी है टुक इक मलक दिग्या जा रे ॥  
लाग रही तेरी केते दिन की मीठी बैन सुना जा रे ।  
रतनकुँवरि तोसों यह जिनवा एक बेर दिग्य आजा रे ॥

४

रघुवर प्यारो रे ।

दसरथराज दुलारो रे ॥

सीस मुकुट पर धन विराजत कानन कुँडलवारो रे ।  
धौंकी अदा दिग्याय रसीली मोह लियो मन म्होँरी रे ॥  
रतनकुँवरि कहै राम रँगिलो रूप गुनन आगारो रे ॥

५

धारी हूँ जी म्होँरा प्यारा राम, कीजा म्होँम् दिलदाही बात ।  
मिच त्रिगुण नहि कीनै माँवरा, राखो जी चरणारी साथ ॥  
ध्यान धरूँ हृदय बिच तुमको याद करूँ दिन रात ।  
रतनकुँवरि पर महर करो अच, निज कर पकरो हाथ ॥

## चंद्रकला वाई

**च**ंद्रकला वाई का जन्म बूंदी राज्य में हुआ था। कविराज गुलाबसिंह जी बूंदी के प्रसिद्ध कवि और दीवान थे। चंद्रकला वाई गुलाबसिंह जी की दासी की पुत्री थी। इनका जन्म सं० १९२३ के लगभग और मृत्यु सन् १९६० और १९६५ के बीच में हुई थी। हमने इनकी जीवनी के लिए बूंदी के वर्तमान कविराज राव रामनाथसिंह जी से पूछताछ की थी। राव रामनाथसिंह जी ने जो पत्र हमारे पास भेजा था उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है :—

“सेवा में निवेदन है कि गोलोक-निवासी कविराज राव जी साहिब श्री गुलाबसिंह जी मेरे पिता थे। कुँवर माधवसिंह मेरा सन्पुत्र था। सन् १९६७ में इक्कीस वर्ष की अवस्था में अंतकाल हो गया। चंद्रकला हमारे घर की दानी थी। बाल्यावस्था में ही विद्याभ्यास कराने से कविता करने में निपुण हो गई थी। उसका भी अंतकाल हो गया। अजमिति कार्तिक सुदी ७ स० १९८२।”

राव रामनाथसिंह

कविराज गुलाबसिंह जी स्वयं एक अच्छे कवि थे। चंद्रकला वाई जी ने उन्हीं की सत्संगति से कविता बनाना सीखा था। अंत में कविता करने में ये अत्यन्त निपुण हो गई थी। ये भारत के प्रसिद्ध कविमार्गों की ओर से निकलने वाली समस्याओं की पूर्तियाँ किया करती थीं।

काशी-कविमण्डल रसिक-मित्र, काव्य सुधार कवि और चित्रकार आदि पत्रों में इसको पूर्णियाँ प्राप्त करा जाती थीं। इनको अनेक कवि-सभाओं से मान पत्र और उपाधियाँ भी मिली थीं। ३० जून सन् १८३८ ई० में गाँव त्रिमूर्ति जिना सोनापुर (अब र) का कवि मण्डल से 'वसु' धारा रत्न की पदवी भी मिली थी।

बाई जी बड़ी सहृदय थीं। इनका उस समय के कई कवियों से पत्र-व्यवहार भी था। मिसबा-कवि मण्डल ने इनको बहुत प्रोत्साहित किया था। प्रतापगढ़ (अब र) के अधीश्वर राजा प्रतापबहादुर सिंह के राजकवि बख्शेजग त्रिनामोनापुर निवासी प० उलदेवप्रसाद भवस्पी उपनाम द्विज बलदेव जी से भी इनका पत्र-व्यवहार था। द्विज बलदेव जी भी उस समय अनेक पत्रों में समस्या पूर्तिवाई किया करते थे। इनकी रचना पर खदबना गईं जी मुग्ध हो गईं थीं। एक बार उन्होंने एक पत्र द्विज बलदेव जी के पास भेजा और उनमें बूझी जाने के लिए अनुरोध किया। बाई जी ने उस पत्र के साथ बलदेव जी के पास एक कविता भी भिज भेजी थी वह इस प्रकार है —

दीन-दयाल दया कै मिलो,  
 दरमे विनु धीतत हैं समय सोचन।  
 सुद्ध सतोगुण ही के सने त,  
 विशक्ति सुल सनेह सफोचन ॥  
 तोरि दियो तरु धीर कगार के,  
 है सरिता मनो वारि विमोचन।

चंद्रकला के घने बलदेव जी,

वावरे से महा लालची-लोचन ॥

बलदेव जी के कई मित्रों ने उन्हें बूँदी जाने के लिए कहा किन्तु वे नहीं गये। उक्त कविता पर मुग्ध होकर बलदेव जी ने “चंद्रकला” नामक एक सुन्दर काव्य-पुस्तक की रचना कर डाली। इस पुस्तक के प्रायः प्रत्येक छंद में चंद्रकला शब्द का प्रयोग किया गया है। यह पुस्तक संवत् १८५३ में बनी है। इसमें २० पृष्ठ हैं। इस पुस्तक की दो-एक कवितायें इस प्रकार हैं :—

खुर्द घटै बढ़ै राहु गसै बिरही हियरे घने घाय घला है।  
सौ तौ कलंकित त्यो विषबंधु निसाचर बारिज बारि बला है ॥  
प्रेम-समुद्र बढ़ै बलदेव के चित्त चकोर को चोप चला है।  
काव्य-सुधा घरसै निकलंक उदै जससी तुही चंद्रकला है ॥

❀

❀

❀

कहा हैहै कछु नहि जानि परै सब अंग अनंग सों जोरि जरे।  
उतै बीथिन मै बलदेव अचानक दीठि प्रकाशक प्रेम परे ॥  
हँसि कै गे अयान दया न दर्ई है सयान सबै हियरे के हरे।  
चले कौन ये जात लिए मन मो सिर मोर की चंद्रकला को धरे ॥

इस प्रकार अवस्थी जी ने चंद्रकला वाई की प्रशंसा में बहुत उत्तमोत्तम कवितायें लिखी हैं। वाई जी दो एक बार बिसयों-कवि-म डल में भी आई थीं। वहाँ उनका बड़ा सम्मान और आदर हुआ था।

गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि राजापुर-निवासी पं० मगलदीन

उपाध्याय से भा इनका पत्र व्यवहार था। चद्रकला बाई जी ने एक बार उन्हें एक पत्र में यह छंद लिखा था —

बरस पय—दरा की बय मेरी।

कवि गुलाब की हूँ मैं बेरी।

बानहि तैं कवि सगति पाई।

ताते तुक जोरन मोहि आई ॥

उस समय हिन्दो स सार में बाई जी की काफी शोहरत थी। एक बार जिसवाँ-कविमण्डल से प्रकाशित होने वाले 'काव्य-सुधाकर' पत्र में 'चद्रकला' नाम की समस्या दी गई। अनेकों कवियों ने इसका पूर्ति करी बहिष का थी। सर्वमान प्रसिद्ध महाकवि पं० बाबूराम शंकर शर्मा की पूर्ति सबभेद थी। मिश्रपुष्पा के बँदाई पं० भैरवप्रसाद बागपेयी 'विशाल कवि बने मज्ञाकापद् कवि थे। उ नेंने भी 'चद्रकला' समस्या की पूर्ति की। कविदत्त जी 'काव्यसुधार' के सम्पादक थे।

विशाल जी ने दत्त जी को संबोधित करके कविता में एक प्रश्न किया। और चद्रकला समस्या पर विशाल जी की पूर्ति इस प्रकार की —  
एक बास करै नित शम्भु के शीश पै दूजी है अम्बर में विमला।  
पुनि तीजी बघम्वर बूंदी के बीच है जो बलदेव की प्रेम पला।  
अब हाल विशाल' कृपा करिक कवि दत्त जी माको बताओ भला।  
इनमें जिसवाँ कवि मंडल में यह कौन सी राजति चद्रकला ॥

चद्रकला बाई जी बरी अच्छी कविता करता था। उन्होंने कई ग्रंथ बनाये हैं। जिनमें करुणा शतक रामचरित्र पद्मी प्रकाश और



महोत्सव प्रकाश मुरय हैं। इनकी कविताओं को यदि हम समालोचना की कपौटी पर कसते हैं तो उतनी खरी नहीं उतरती जितनी की होनी चाहिए। तो भी रचना रुचिर और अच्छी जान पड़ती है। इस फर विसवाँ की कवि-मंडली ने इन्हें उसाह और उदावा देकर इनके नाम का महत्व बढ़ा दिया था। हमारे पास इनके १००० छंद विद्यमान हैं जो बहुत ही उत्तम और भाषा-भाव से परिपूर्ण हैं। हमारा विचार है कि चंद्रकला वाई जी की जीवनी और इनकी कविताओं का एक संग्रह अलग पुस्तकाकार-रूप में प्रकाशित किया जाय। हम वाई जी की कुछ कवितायें नीचे उद्धृत करते हैं :—

१

घन हैं न कारे कारे भारे गजराज हैं री,  
 वगुला न स्यन्दन समूहन की राजी है।  
 जुगुनू न सायुध चमकदार वीर ये हैं,  
 चातक न बोलिया जकीवन ने साजी है ॥  
 'चंद्रकला' चपला न चमक अनिन की है,  
 गरज न रोष भरी सेना घोर गाजी है।  
 मानिनि के मामन विदारिबे के दौरत हैं,  
 धुरवा नही ये प्यारी सैन भूप बाजी है ॥

२

ऐहौ ब्रजराज कत बैठे हौ निकुंज माँहि,  
 कीन्हौ तुम मान ताकी सुधि कछु पाई है।

ताते वृषभानुजा सिंगार साजि नीकि भोंति,  
 सखियों सयानी सग लय सुरदाई है ॥  
 'चद्रकला' लाल अवलोको और मारग की,  
 भारी भय दायिनी अपार भीर छाई है ।  
 रावरो गुमान अति बल अति भट मानि,  
 जोवन का फौज लैके मारिबे को घाई है ॥

३

नको एक केश की न समता सुकेरी लहै,  
 नैनन क आगे लगै कमल कमलची ।  
 तिल सी तिलोत्तमाहू रति हू रती सी लगै,  
 सनमुख ठाढ़ रहै लाल हित लालची ॥  
 'चद्रकला' दान आगे दीन कस्पट्ट लगै,  
 वैभव के आगे लगै सुरप कुशलची ।  
 घ-य घ-य राधे वृषभानु का दुलारी तोहिं,  
 जाके रूप आगे लगे चद्रमा मसालची ॥

४

बैठे हैं गुपाल लाल प्यारा घर बालन में,  
 करत कलाल महा माद मन भरिने ।  
 ताही समय आती राधिरा को दूरही तें दरि,  
 सौतिन के सकल गुमान उन जरिने ॥

‘चंद्रकला’ सारस से तिरछी चितौनिवारे,  
 नैन अनियारे नैकु पी की ओर ढरिगे ।  
 नेह नहे नायक के ऊपर ततच्छन हो,  
 तीच्छन मनोभव के पाँचो बान भरिगे ॥

५

नख तें सिख लौं सब साजि सिँगार,  
 छटा छवि की कहि जात नहीं ।  
 सँग लाय अली न लली—  
 ललचाय चली पिय पास महा उमही ॥  
 कहि ‘चंद्रकला’ मग आवत ही,  
 लखि दौरि तिया पिय बांह गही ।  
 नहिं बोल सकी सरमाय लली  
 हरषाय हिये मुसकाय चली ॥

६

बाजत ताल मृदंग उमंग उमंग भरी सखियाँ रँग बोरी ।  
 साथ लिए पिचको कर मांहि फिरें चहुँघा भरि केसर घोरी ॥  
 ‘चंद्रकला’ छिरकैं रँग अंगन आपस माँहि करै चित चोरी ।  
 श्री वृषभानु महीपति-मंदिर लाल-लली मिलि खेलत होरी ॥

७

बाल वियोग परी मुरझाय हुती थित आलिन मे सिर नाय के ।  
 मोहन के गुनगान अपार बखानत ही सखियाँ भल भाय के ॥

‘चन्द्रकला’ तब ही प्रिय आगम आय कछो सखि ने समझाय के ।  
आवत दूरहिं ते लखि दौरि रही पिय क दिय सों लपटाय के ॥

८

जो अति दुलम दहन को तनु मानुष सो निज पुण्यन पावै ।  
इन्द्रिन के सुर में लय होय जु ईश्वर ओर न नेकु लखावै ॥  
‘चन्द्रकला’ धिक है तिहिं जीवन नारि सुतादिक में मन लावै ।  
है मतिहीन प्रबोन बन्यो वह काच के लालच लाल गमावै ॥

९

इसुम समूह भिन्न विटप लतान मोहि,  
सोई ताहि लागि रही भट बलबन्त की ।  
पल्लव नवीन लिप कर बिन म्यान असि,  
कोकिल अवाज अति दुन्दुभी अनत की ॥  
‘चन्द्रकला’ चारों ओर भेंवर नकोब फिरै  
आला देखि दत ये दुहाई रति-कव की ।  
बिन घनश्याम मोहि कदन करनवारी,  
जम की सवारी फुलवारी है बसन्त की ॥

१०

पावस की मात्रस की निसि अँगियारी मोहि,  
बरसत धारि की फुहारें फहराति है ।  
गरजत घोर घन चारों ओर जोर भरे,  
दमकत दामिनी विरोध दरसाति है ॥

‘चंद्रकला’ ताही। समै पाछे लाय राधिका की,  
 गमने गुपाल मग पूरी छपि छाति है ।  
 चंद्रमा तैं चारि गुनो राधे-मुख चंद्रमा की,  
 प्यारे ब्रजचंद्र पै उज्यारी चली जाति है ॥

११

राति कहौ रमि कै प्रभात प्रान-प्यारी पास,  
 आये घनश्याम स्याम सारी धारि आन की ।  
 अधर अनूप माँहि काजर की रेख धारि,  
 लाल लाल लोचन पै लाली पांक-पान की ॥  
 ‘चंद्रकला’ द्विकल कलाधर अनेक धरे,  
 लखि उर गाढ़ बोली बेटी वृषभान की ।  
 इन्द्रजाल ढाली गल घाली कौन वाल आज,  
 आउन रसाल लाल माल मुकतान की ॥

१२

विन अपराध मनमोहन को दोष थामि,  
 काहे मनमान धारि प्यारी दुख पावै है ।  
 चलि री निकुंज माहि मिलि री पिया सो बेगि,  
 मन बच काय लाय तो ही धरि ध्यावै है ॥  
 ‘चन्द्रकला’ तेरे ही सनेह सने एक पाय,  
 ठाढ़े है जमुन तीन पीर सरसावै है ।

लै लै नाम तेरो हो बचानै तोहि प्रान प्यारी,  
मुनि री गुपाल लाल बोंसुरी बजायै है ॥

१३

नटवर वेप साजि मदन लजाने लाल,  
मन हरि लीनो हाल नारिन के जाल को ।  
अमित स्वरूप भारि नरसिय सोमा सनी,  
राख्यो गहि हाथ हाथ भिन्न भिन्न बाल को ॥  
'चंद्रकला' गाय गीत भ्रमत सनेह सने,  
बरनत नारदादि जस जनपाल को ।  
सुमन समूह बरसावत विमान चढे,  
देखि देखि देव रास-भण्डल गोपाल को ॥

१४

सीतहि लेहि महाघन देव कहौ हित राम रमेश हरी है ।  
जो नहि मानहुगे मति मोर तु आपति भौंति अथाह भरी है ॥  
'चंद्रकला' तुमही न कहूँ उन गलि महाबल मृत्यु करी है ।  
रावण नारि कहै पिय सों सिय है विष-बेलि प्रचढ़ परी है ॥

१५

कपिनाथ महाजन बालि न साथ कर्या कपिराज सुकठ सुमाती ।  
दल बानर भालुन को संग लेय गये निरखी अति लक्ष कपाती ॥  
कहि 'चंद्रकला' हनि रावन को बुलवाय लइ सिय हो हरपाती ।  
मुमुक्षावत बाल पिनोद भरी जबही जव राम लगावत छाती ॥

१६

ध्यान धरै तुम्हरो निसिवासर नाम तुम्हार रटै बिसरै ना ।  
गावत है गुन प्रेम-पगी मन जोवत है छिन दीठि टरै ना ॥  
'चंद्रकला' वृषभानु-सुता अति छीन भई तन देखि परै ना ।  
वेगि चलो न बिलंब करो अति व्याकुल है वह धोर धरै ना ॥

पहेलियाँ

१७

आधो दरजी और बजाज, राखत हैं अपने हित काज ।  
आधो आवै जाके हाथ, रहैं सकल जन ताके साथ ॥  
सगरो जाके सदन रहाय, महा प्रतापी पुरुष कहाय ।  
है कारो दृढ़ कहौ विचारि, चंद्रकला नतु मानो हारि ॥

गजराज

१८

कारो है पै काग न होय, भारो है पै बैल न सोय ।  
करे नाक सौं कर का कार, अर्थ करो कै मानो हार ॥

गज



## जुगलप्रिया

बुंदेलखंड में ओरछा राज्य सदा से प्रसिद्ध बना आता है। इस राज्य में एक से एक वीर नीतिज्ञ और भगवद्भक्त नरेश हैं। परमभक्त महाराज मधुकरछाह और उनकी रानी श्रीमती गनेसकुंवरि यहाँ हुईं। वीरधुंगव वीरसिंह देव इसी भूमि के राज थे। प्रातः स्मरणीय कुंवर हरदौल इसी भाँगन में खेले थे। इस राज्य की धाक सारे देश में जमी थी। वीर केसरी छत्रसाह भी इसी वंश में जनमे थे। काज चक्र में पढ़कर इस राज्य को अपनी राजधानी, ओरछा से हटाकर, डीकम गढ़ में स्थापित करनी पड़ा। वहाँ के वर्तमान नरेश श्रीमान् महेन्द्र महाराज प्रतापसिंह जू देव बहादुर हैं। यही श्रीमती कमल कुमारी देवी के पिता हैं। श्रीमती जी का माता रानी कृष्णामा कुवरि दूरी भक्त-सत्कार में काफी प्रसिद्ध हैं। अयोध्या में सुविद्यान कनक-भवन आप ही का बनवाया हुआ है।

श्रीमतीजी का जन्म लगभग स. १६२८ में हुआ था। आप अपनी माता की पहली ही सत्तान थीं। माता-पिता का आप पर अगाध स्नेह था। आपके पिता तो आप को बाल्यव्य-स्नेह-वश "भैया" कह कर पुकारा करते थे। जिस दिन आप का प्रादुर्भाव हुआ कहते हैं उसी दिन मे डीकमगढ़ राज्य में दिन दूनी रात चौगुनी समृद्धि होने लगी। आपकी माता एक आदर्श मत्त थीं। उनका सम्बन्ध



वैष्णव संप्रदाय से था। श्रीसीताराम जी के नाम और ध्यान में वे आठ पहर दूबी रहती थीं। उन्होंने यही शिष्टा अपनी पुत्री को देने आरम्भ की। नित्य प्रातःकाल रामनाम की पाँच मालाएँ जप लेने के बाद इन्हें कलेवा मिला करता था। एकादशी का व्रत भी आठ ही वर्ष की अवस्था से रखना शुरू कर दिया था। आपके पिता जी तो प्रायः अपनी धर्मपत्नी से ताना मार कर कहा करते थे कि 'क्या बेटी को भी अपनी ही तरह 'वैरागिन' बनाना चाहती हो ?'

छतरपुर राज्य के वर्तमान नरेश श्रीमान् विश्वनाथसिंह जू देव के साथ आपका पाणिग्रहण कराया गया। विवाह हो जाने पर भगवद्भक्ति की ओर से आप की रुचि कम नहीं हुई, प्रत्युत और भी बढ़ने लगी।

पहले आप अयोध्या में श्रीवैष्णव संप्रदाय में दीक्षित हुई थी, किन्तु पीछे वृन्दावन में श्रीकृष्ण-लीला की अनुगामिनी हो गईं। एक प्रकार से तो आप का सम्बन्ध चारों संप्रदाय से था। यही नहीं, वरन् शंकर-संप्रदाय से भी आप सहानुभूति रखती थीं। तात्पर्य यह कि आप के उदार हृदय में सभी सम्प्रदायों के लिये प्रेमपूर्ण स्थान था। प्रत्येक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का आप ने इतना सूक्ष्म अनुशीलन किया था कि वाद-विवाद में अच्छे-अच्छे पंडितों को दाँतो तले उँगली दबानी पड़ती थी। कई लोग तो इन्हें चार सम्प्रदाय का 'महंत' कहा करते थे।

नित्य प्रातःकाल चार बजे मंगलमूर्ति जनार्दन का ध्यान करती हुई आप उठा करती थी। नित्य-कर्म के बाद संध्यापूजा पर बैठ जाती

थीं। सात घंटे के लगभग आप भगवत्सेवा में संलग्न रहती थीं। भोजन बिल्कुल साधारण था। अंतिम स्नान वर्ष से कलाहार करती थीं। भोजनानन्तर धार्मिक पुस्तकों का अवलोकन अथवा किमी मत के साथ सत्यग हावा था। इसके बाद घंटा आध घंटा राज्य-सम्बन्धी व्यवहारिक बातचीत भी कर लेती थीं। सप्ताह स ११० वजे तक फिर वही भगवत्सेवा, हरिकीर्तन या सत्संग हुआ करता था। निद्रा अधिक से अधिक चार घंटे की थी। यही आप की दिनचर्या थी।

आपके जीवन के अधिकांश दिन प्रायः तीर्थांग में ही बीते। कामदनाथ, गोवर्द्धन वेंकटाद्रि महााचल आदि बीहड़ और कण्ठाकीर्ण पर्वतों की परिक्रमा आपने कई बार पैदल की थी। गरमी-ज्वरा, घूप वर्षा भूख प्यास आदि पर आप का पूरा अधिकार था। प्रत्येक एकादशी मत निर्जला ही करता थीं। स्वयं तो अत्यन्त साधारण भोजन करती थीं, पर दूसरों का बड़े प्रेम से नाना प्रकार की चीजें बना बना कर निहाया करता थीं। बालकों के खिलाते समय तो आप का मातृस्नेह देखते ही बनता था।

हु लपूथ जावन रहते हुए भी धार्मिक उत्सवों को आप बड़े ही आनन्द ल मनाया करती थीं। प्राचीन महात्माओं की बानियाँ आप को कंगम थीं। किसी किमी पन् के बहते समय तो आप भाव में डूब जाती थीं और नेत्रों से प्रेमाश्रु धारा बहने लगनी थी।

आपका स्वभाव बड़ा ही सरल प्रेममय और गम्भीर था। तितिक्षा की तो मूर्ति ही थीं। परनिंदा और असत्य से बहुत बचती थीं।

सादगी इतनी थी कि देख कर आश्चर्य होता था। यद्यपि तपस्या के कारण शरीर एकदम कृश हो गया था, मानसिक वेदनाओं के मारे हृदय छिल-भिल सा रहता था और राजसी भी सदा के लिये ठुकरा दी थी, फिर भी मुखमण्डल पर एक अपूर्व ब्रह्मतेज झलकता था, भजन का प्रताप प्रत्यक्ष दिखाई देता था। दूसरों का दुख तो आप पल भर भी नहीं देख सकती थीं। परोपकार और भगवद्भजन आप के दो अपूर्व आदर्श थे। आजन्म परोपकार और भगवद्भजन करती हुई सं० १६७८ वि० चैत्र शुक्ला ७ की रात्रि को, टीकमगढ़ में, आप गोलोक सिधार गयीं।

हिन्दी के मर्मज्ञ श्रीयुक्त वियोगीहरिजी आप के शिष्य हैं। श्रीमतीजी कभी कभी प्रेमावेश में जो पद लिखा करती थीं, उनका संग्रह श्री वियोगी हरि जी ने पुस्तकाकार प्रकाशित करा दिया है। श्रीमती जी अपने पदों में 'जुगलप्रिया' की छाप देती थीं। अतएव उस संग्रह का नाम 'जुगलप्रिया-पदावली' रक्खा गया है। हरी जी ने 'श्री गुरु पुष्पाञ्जलि' नामक एक पुस्तक भी आपके स्वर्गवास के अनन्तर लिखी थी। आपके कुछ चुने पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

१

चरन चलौ श्रीवृन्दावन मग, जहँ मुनि अलि पिक कीर ।  
कर तुम करौ करम कृष्णार्पण, अहंकार तजि धीर ॥  
मस्तक नवियौ हरि-भक्तन को, छाँड़ि कपट को चीर ।  
श्रवन सदा सुनियौ हरि जसरस, कथा भागवत हीर ॥

नैना तरसि तरसि जल ढरियो, पिय-भग जाय अधीर ।  
 नासा तब लीं स्वाँसा मारियौ, सुरति राखि पिय तोर ॥  
 रसना चखियो महाप्रसाद, तजि विषया विष नीर ।  
 मुधि बुधि बढे प्रेम चरनन, ज्यों लुप्ता बढे शरीर ॥  
 चित्त चितेरे, लिखियो पियकी, मूरति हृदय-कुटीर ।  
 इन्द्रिय मन तन भजौ श्याम कों, बढै निरह की पीर ।  
 'जुगलप्रिया' आसा जिय धरियो, मिलि हैं श्री बलबीर ॥

२

नैन सलौने एजन भीन ।

बचल सारे अति अनियारे, मतबारे रमलीन ॥  
 सेत स्याम रतनारे बोंके, कजरारे रँग भीन ।  
 रेसम छोरे ललित लज्जाले, ढीले प्रेम अधान ॥  
 अलसोहैं तिरछीहैं भौहैं नागरि नारि नवीन ।  
 'जुगलप्रिया' चितवनि में घायल होवै छिन छिन छीन ॥

३

सौँवलिया की चेरी कहौ री ।

चाहे मारौ चहै जिवावो जनम जनम नहिं टेक तजौ री ॥  
 कर गहि लियो कहति हौं साखी नहिं मानै तो तरो मों री ।  
 जो त्रिभुवन ऐश्वर्य्य लुमावै तिनको लौं हौं सो समुझौ री ॥  
 'जुगलप्रिया' सुनि मेरी सजनी, प्रगट भई अब नाहिंन चोरी ।

४

दृग, तुम चपलता तजि देहु ।

गुञ्जरहु चरनारविन्दनि होय मधुप सनेहु ॥  
 दसहुँ दिसि जित तित फिरहु किन सकल जग रस लेहु ।  
 पै न मिलिहै अमित सुख कहूँ जो मिलै या गेहु ॥  
 गहौ प्रीति प्रतीति दृढ़ ज्यो रटत चातक मेहु ।  
 बनो चारु चकोर पिय मुख-चंद्र छवि रस एहु ॥

५

ब्रजमण्डल अमरत बरसैरी ।

जसुदा नंद गोप गोपिन को मुख सुहाग उमगै सरसै री ॥  
 बाढ़ी लहर अंग अंगन मे जमुना तीर गीर उछरै री ।  
 बरसत कुसुम देव अंबर तें सुरतिय दरसन हित तरसै री ॥  
 कदली बंदनवार बँधावें तोरन धुज सँथिया दरसै री ।  
 हरद दूध दधि रोचन साजें मंगल-कलस देखि हरसै री ॥  
 नाचैं गाव रंग बढ़ावें जो जाके मन में भावै री ।  
 सुभ सहनार्ई बजत रात दिन चहुँदिस आनंद घन छावै री ॥  
 ठाढ़ी ढाढ़िन नाचि रिझावें जो चाहैगो सो पावै री ।  
 पलना ललना भूल रही हैं जसुदा मंगल गुन गावै री ॥  
 करै निछावर तन मन सरबस, जो नंद नंदन को जावै री ।  
 'जुगलप्रिया' यह नंद महोत्सव दिन प्रति वा ब्रजमे होवै री ॥

६

राधाचरन की हूँ सरन ।

छत्र चक्र सुपद्म राजत सुफल मनसा करन ॥  
 उर्ध्व रेखा जत्र धुजादुति सकल सोभा धरन ।  
 वाम पद गद शक्ति कुडल मोन सुवरन बरन ॥  
 अष्ट कोन सुषेदिका रय प्रेम आनन्द भरन ।  
 कमल-पद के आसरे निन रहत राधा रमन ॥  
 काम दुख सताप भजन विरह-सागर तरन ।  
 फलित कोमल सुभग सीवल हरत जिय की जरन ॥  
 जयति जय नन नागरी पद सकल भयभय हरन ।  
 'जुगलप्यारी' नैन निरमल होत लख लख किरन ॥

७

जय श्री जमुने कल मल हारिनि ।

कर कहना प्रीतम की प्यारी मँवर तरंग मनोहर धारिनि ॥  
 पुलिन बेलि कुसुमित मोभित अति कचन चचरीक गुजारिनि ।  
 विहरत जीव जतु पसु पक्षी स्याम रूप रस रंग विहारिनि ॥  
 जे जन मञ्जन करत विमल जल तिनको सब मुख मगल कारिनि ।  
 'जुगलप्रिया' हूँ जे कृपालु अथ दीनै कृष्ण भक्ति अनपाधिन ॥

८

नोर प्रिय लागै जमुना तेरो ।

जा दिन दरस परस ना पाऊँ विफल होय जिय मेरा ॥

नित्य नहाऊँ तब सुख पाऊँ होत अलिन सो मेरो ।  
 'जुगलप्रिया' घट भरि कर लीन्हे रहै सदा चित चरो ॥

९

भूलति हैं नागरि नागरनट ।

नव पावस सुख सरस सुहाई जमुना पुलिन सभा बंसीवट ।  
 मुरली अति घनघोर सोर करि सप्त सुरन सो पूरि रही रट ॥  
 प्यारी अंग सुरंग चूनरी सखि गन राजति धारि लाल पट ।  
 प्यारे पीताम्बर तन धारैं सीस रहो पँचरँग पगिया डट ॥  
 चितवत हँसत परस्पर दोऊ भूलत मुकत मोरि ग्रीवा चट ।  
 मोका आवत कुंज दौर लौ मपकत चख लचकत केहरि कट ॥  
 भूलत लूम बढ़ाय रसिक वर कुण्डल में उरमौ स्यामल लट ।  
 उरमे रहौ न सुरमौ कवहूँ 'जुगलप्रिय' बलि बोल उठी मट ॥

१०

बगुला-भक्तन सो डरिये री ।

इक पग ठाढ़े ध्यान धरत हैं दीन-मीन लो किमि बचिये री ।  
 ऊपर तें उज्जल रँग दीखत हिए कपट हिंसक लखिये री ॥  
 इनते दूरहि रहे भलाई निकट गये फदनि फँसिये री ।  
 'जुगलप्रिया' मायावी पूरे भूलि न इन सँग पल बसिये री ॥

११

नाथ अनाथन की सब जानै ।

ठाढ़ी द्वार पुकार करति हौ खवन सुनत नहिं कहा रिसानै ॥

को बहु खोट जानि जिय मेरी की कछु स्वारस्य हित अरगानै ॥  
 दीनबधु मनमा क दाता गुन औगुन कैधौं मन आनै ।  
 आप एक हम पतित अनेकन यही देखि का मन सकुचानै ॥  
 मूँठी अपना नाम धरायो समझ रहे हैं हमहिं सयानै ।  
 तजा टेक मनमाहन मेरे 'जगन्प्रिया' दीजै रस दानै ॥

१२

मन तुम मलिनता तजि देहु ।

सरन गहु गाविन्द की अब करत फासा नेहु ॥  
 कौन अपने आप का के परे माया सेहु ।  
 आज दिन लौं कहा पायो कहा पैहौ खेहु ॥  
 विपिन वृन्दा बास कह जो सब मुग्धनि को गेहु ।  
 नाम मुग्ध में ध्यान हिय में नैन दरसन लेहु ॥  
 छाडि कपट कलक जग में सार सौँचो एहु ।  
 'जुगलप्रिय' बन चित्त चातक स्याम स्याँती येहु ॥

१३

नैन मोहन रूप छके री ।

सेत स्याम रतनारे प्यारे ललित सलोने रंग रंगे री ॥  
 बाँकी चितवनि बचल सारे मनो कज पै खन भरै री ।  
 'जुगलप्रिया' जाके उर भाये अधिक बावरे सोइ मये री ॥

१४

'जुगल-छवि' कब नैनन में आवै ।



मोर मुकुट को लटक चन्द्रिका सटकारी लट भावै ॥  
 गर गुंजा गजरा फूलन के फूल से बैन सुनावै ।  
 नील दुकूल पीत पट भूषण मनभावन दरसावै ॥  
 कटि किंकिनि कंकन कर कमलनि कनित मधुर धुन छावै ।  
 'जुगलप्रिया' पद-पदुम परसि कै अनत नही सच पावै ॥

१५

माई मोको जुगल नाम निधि भाई ।  
 सुख संपदा जगत की मूठी आई सग न जाई ॥  
 लोभी को धन काम न आवै अंत काल दुखदाई ।  
 जो जोरे धन अधम करम तें सर्वस चलै नसाई ॥  
 कुल के धरम कहा लै कीजै भक्ति न मन मे आई ।  
 'जुगलप्रिया' सब तजौ भजौ हरि चरन कमल मन लाई ॥

१६

सखी मेरी नैननि नींद दुरी ।  
 पिय सों नहिं मेरो बस कछु री ॥  
 तलफि तलफि यो ही निसि बीतति नीर बिना मछुरी ॥  
 उड़ि उड़ि जात प्रान-पछी तहँ बजत जहाँ वँसुरी ।  
 'जुगलप्रिय' प्रिया कैसे पाऊँ प्रगट सुप्रीति जुरी ॥

१७

वृन्दावन-रस काहि न भावै ।  
 विटप बल्लारी हरी हरी न्यो गिरिवर जमुना क्यों न सुहावै ॥

खग मृग पुज-कुज कुजनि में श्रीराधा बल्लभ गुन गावै ।  
 पै हिंसक वचक रचक यह सुर सपने में लेस न पावै ॥  
 धनि ब्रजरज धनि वृन्दावन धनि रमिक अनन्य जुगल वपु ध्यावै ।  
 'जुगलप्रिया' जीवन ब्रज सौँचों नवह वादि मृगजल को धावै ॥

१८

जय गगे जय वारन-सरनी ।

भबर तरंग उमगनि लहरी मञ्जुल रेनु विमल बुधि करनी ॥  
 पुलिन पुनीत मद माहत बह निर्मल धार धवल छवि धरनी ।  
 जेते जनु जीव जल थल नभ सबको तीन ताप तम हरनी ॥  
 हरि चरनार बिन्द ते प्रगटा ब्रह्म कमलहन सिर आ भरनी ।  
 शकर सीम सौत गिरिजा की भागोरथ रथ की अनुचरनी ॥  
 गिरिवर नगर ग्राम वन बेधित प्रबल बेग बारिष वर बरनी ।  
 दरस परस मञ्जन सुपान ते दूर होय दुख वारिद दरनी ॥  
 मुलभ त्रिवर्ग स्वर्ग अपवर्गहु कामधेनु सुख सकल वितरना ।  
 जय श्री सुरसरि हरि रति दीजै 'जुगलप्रिया' की असरन सरनी ॥

१९

प्रीतम रूप दिखाय लुभावै ।

याते जियरा अति अकुनावै ॥

जो कीजत सा सौ भल कीजत अब काहै तरसावै ।  
 सोखी कहौ निठुरता एतौ दीपक पीर न लावै ॥  
 गिरि क भरत पतग जोति है ऐसेहु मेल सुहावै ।

सुन लीजै बे-दरद मोहना जिनि अब मोहिं सतावै ॥  
 हमरी हाय बुरी या जग मे जिन विरहाग जरावै ।  
 'जुगलप्रिया' मिलिबो अनमिलिबो एकहि भौंति लखावै ॥

२०

जय श्री तुलसी हरि की प्यारी ।  
 पिय सिर सोहै अति छवि वारी ॥  
 कोमल पत्र मंजुरी मजुल कमला प्रिया पुन्य व्रत धारी ।  
 पूजत वदत दुख सब भाजै जहँ तहँ प्रगट प्रभा उजियारी ॥  
 महिमा अमित तुम्हारी स्वामिनि नहिं जानै सनकादि पुरारी ।  
 'जुगलप्रिया' को वन विहार मे देहु मिलाय श्याम गिरिधारी ॥

२१

यह तन इकदिन होय जु छारा ।  
 नाम निशान न रहिहै रंचहु भूलि जायगो सब ससारा ।  
 कालघरी पूजी जब है है लगै न छिन छाँड़त भ्रम जारा ॥  
 या माया-नटिनी के वस मे भूलि गयौ सुख-सिधु अपारा ।  
 'जुगलप्रिया' अजहूँ किन चेतत मिलिहैं प्रीतम प्यारा ॥

२२

जयति रसिकिनी राधिका जयति रसिक नैद-नद ।  
 जयति चारु चंद्रावली जय वृन्दावन-चंद ॥  
 जय ब्रज-रज जय जमुन-जल जय गिरिवर नैद-भ्राम ।  
 बरसानो वृन्दाविपिन नित्य केलि के घाम ॥

जयति माध्व मत माधुरी जयति कृष्ण चैतन्य ।  
जयति सदा हरि वस हित व्यास सुरमिकानन्य ॥  
करो कृपा सब रसिक जन मो अनाथ पै आय ।  
दीजै मोहि मिलाय ओ राधावर जदुराय ॥  
नहिं धन की नहिं मान की नहिं विद्या की चाह ।  
'जुगलप्रिया' चाहै सदा जुगल स्वरूप अयाह ॥

२३

बीर अबीर न डारौ ।

औलिया रूप रग रस छाकीं इनकी ओर निहारौ ॥  
अतर होत जो अवलोकन को हित की बात बिचारौ ।  
'जुगलप्रिया' मन जीवन जी को आपट ओट उचारौ ॥

२४

बाँकी तरी चाल मुधितवनि बाँकी ।

जन्हीं आवत जिहिं मारग हो मुमक मुमक मुकि मोंकी ॥  
छिप छिप जात न आवत सन्मुख लखि लीनी छवि छाकी ।  
'जुगलप्रिया' तेरे छल बल तैं हों सब हा विधि थाकी ॥

२५

मगल आरति प्रिय प्रीतम की ।  
मगल प्रीति रीति दोउन की ॥  
मगल कान्ति हँसनि दमनन की ।  
मगल मुरली बीना धुन की ॥

मङ्गल बनिक त्रिभगी हरि की ।  
 मङ्गल सेवा सब सहचरि की ॥  
 मङ्गल सिर चंद्रिका मुकुट की ।  
 मङ्गल छवि नैननि मे अटकी ॥  
 मङ्गल छटा फत्री अँग अँग की ।  
 मङ्गल गौर श्याम रस रँग की ॥  
 मङ्गल अति कटि पियरे पट की ।  
 मङ्गल चितवनि नागर नट की ॥  
 मङ्गल शोभा कमल नैन की ।  
 मङ्गल माधुरि मृदुल वैन की ॥  
 मङ्गल वृन्दावन मग अटकी ।  
 मङ्गल क्रीड़न जमुना तट की ॥  
 मङ्गल चरन अरुन तरुवन की ।  
 मङ्गल करनि भक्ति हरि जन की ॥  
 मङ्गल 'जुगलप्रिया' भावन की ।  
 मङ्गल श्री राधा जीवन की ॥



## रामप्रिया

**श्री** मती महारानी रघुराजकुँवरि उपनाम 'रामप्रिया' का जन्म लग

भग स० १६४० में हुआ था। आप अवध प्रदेश के अन्तगत स्थित जिला प्रतापगढ़ के राजा सर प्रतापबहादुर सिंह सी० भाई० ई० की रानी थीं। एक बार ये प्रतापगढ़ाबास के साथ ससम पृथ्वी के तिलकापव क अत्रमर पर इन्लैण्ड गई थीं। वहाँ आपने महारानी तथा मन्नाट से भेंट कायी। आप बड़ी विदुषी और खी रिचा की प्रेमिका थीं। आप कियों की चर्चा कहीं सभा-सोसाइती होती थी, उसमें आप भाग लेती थीं और उनकी सहायता भी करतीं थीं। आप राम-कृष्ण की बड़ी भक्त थीं। आपने भक्तिरस की बड़ी सुन्दर सुन्दर कवितायें लिखी हैं। आपकी रचनाओं का एक समूह 'रामप्रिया विलास' के नाम से प्रकाशित हुआ है। ग्रन्थ पढ़ने से यह पता चलता है कि आप बड़ी ही शांतिप्रिय और सुयोग्या थीं। विधि त्योहारों में आप विशेष रूप से दान-भुण्ड किया करती थीं। प्रतापगढ़ के लोग आज भी आप के पुराने गुणों का स्मरण किया करते हैं। आपका कविता सुन्दर मधुर और आनन्दप्रद हुई है। आपका स्वर्गवास संवत् १६७१ वैशाख मास में हुआ। आपका कविता के कुछ भग्ने नीचे दिये जाते हैं :—



स्वर्गीय रानी साहबा रामप्रिया ( प्रतापगढ़ )

१

सुख-चंद अभाव मे चंद लखैं, अरविन्दन तें सुख नैन रही री ।  
 द्विति देखि दिवाकर ध्यान धरूँ, छवि सीय बनो दृढ़ चित चही री ॥  
 सुसुकाय के बंक विलोक्त वै, हिय 'रामप्रिया' मे समाय रही री ।  
 विधना दिन-रैन विचाखो करूँ, सुनु वे बतियाँ सपनेहु नही री ॥

२

गज एकहि बार पुकार कखो, तब जाय पिया तेहि प्राह गही री ।  
 द्रुपदी के अकास निहारत ही, दुरजोधन की ममता न रही री ॥  
 प्रह्लाद अजामिल गृद्ध लौं क्या, जहाँ दीन पुकाखो गयो तितहीं री ।  
 अब 'रामप्रिया' के पुकारिबे में, प्रभु वे बतियाँ सपनेहु नहीं री ॥

३

कहि 'रामप्रिया' गुण गावै जो राम के, छंद रचे जो हुलासन सों ।  
 सुअलंकृत छंद विचाखो करै, नित बैठ्यो रहै दृढ़ आसन सों ॥  
 फल चारिहु पावै बिना श्रम के, भय ताहि कहा यम-पाशन सो ।  
 फिर अंतहु स्वर्ग-पयान करें, कवि बैठ्यो विमान हुताशन सो ॥

४

जय जयति जय रघुवंश-भूषण, राम राजिवलोचनम् ।  
 प्रैताप-खंडन जगत-मंडन, ध्यान गम्य अगोचरम् ॥  
 अद्वैत अविनाशी अनदित, मोक्षदा अरि-गंजनम् ।  
 तव शरण भव-निधि पार-दात्री, अन्य जगत विहम्बनम् ॥



दुःख दीन-दारिद्र्य के' विदारक दयासिंधु कृपाकरम् ।  
 त्व 'रामप्रिय' के राम जीवन-भूरि मंगल-मंगलम् ॥

५

जय जयति जय मिथिलेश-नदिनि, जयति जय जय दामिनी ।  
 अवनो गगन्मण्डितकरी, जगदीश्वरी जल शायिनी ॥  
 नित्या, निराधारी, निरूपा, निर्गुणा, नारायणी ।  
 दुःख-नाशिनी, दीप्ता दया, सुख-सौख्य निर्मल दायिनी ॥  
 माया, महालक्ष्मी, महाकाली, सुमुनि-भन ध्यायिनी ।  
 पुरुषा, परायण, पतिव्रत, प्रिय, पुरुष प्रास परायिनी ॥  
 त्व 'रामप्रिय' राम प्रिया की, परम पद-की दायिनी ॥

६

जयति जय जयति श्री हनुमान ।

सुजट्ट चण्ड प्रचण्ड वारे स्वाभि शैल समान ।  
 नख वज्र अरुण प्रदीप्त तन बल बुद्धि भक्ति-निधान ॥  
 नव उदधि मन खड्ग निशाचर दहन तरन शुभान ।  
 'राम प्रिया' तव चरण चित्तधरि करत गुण-भान गान ॥

७

जोई जल व्यापक जहान को जननहार,  
 जाको ध्यान केते जग-जाल सों निवटिगो ।  
 जोई हत्यो दानव दिसाया नरसिंह-रूप,  
 छदित दिगन्त सों दुहाइ देव हटिगो ॥

‘रामप्रिया’ सोई औध-महल को चित्र देखि,  
 धाय घबराय मणि-खंभ सो लपटिगो ।  
 जू जू कहिबो को तुतराय आय दू दू कहि,  
 अतिहि सकाय माय अंक सो छपटिगो ॥

८

कहैं कोऊ दिनमणि दिवानिसि तेजवारो,  
 नृप सुत जाये याते अति हरखाती है ।  
 कोऊ कहैं मुदते दिवाकर न जैहैं कहूँ,  
 हैहैं न विछोह याते हिय न सकाती है ॥  
 ‘रामप्रिया’ मेरे जान जानत जरूर हैं ये,  
 हेमराज गिरि ना रहेंगे सुख पाती है ।  
 दानी अवधेश दान देहैं द्विजराजन को,  
 याही चक्रवाकी उड़ि उड़ि रहि जाती है ॥

९

नंगा अरधंगा शीश-गंगा चंद्रभाल वारो,  
 बैल पै सवार विष-भोजन कखो करै ।  
 व्याल-मुंड-भाल प्रेम-डमरु त्रिशूल-धारी,  
 महा विकराल चिता-भसम धखो करै ॥  
 योग-रंग-रंगा चारु चाखत धतूर अंगा,  
 अद्रुमुत कुडंगा देखि बालक डखो करै ।

‘रामप्रिया’ अजब तमासे चढु देखु देखु,  
ऐसो एक योगी राम-पावन पखो करै ॥

१०

रघुकुल बढ आज अनन्द ।  
लखि घाटिका मन लेन वारी ,  
मुदित माघव-भान-हारी,  
ललित लतन लबग सयुत,  
भ्रमत भ्रमर मुढग ॥ रघुकुल० ॥  
लखि युगल राजकिशोर निरखत,  
बहुरि सिय-चन देखि हरखत,  
चलत चबल चबला सम,  
मुभग बसन मुरग ॥ रघुकुल० ॥  
लखि ‘रामप्रिय’ जोरी मनोहर,  
मुदित मन हिय सों मनावै,  
धनुष-खडन यज्ञ-भटन,  
होहि वसरयनन्द ॥ रघुकुल० ॥

११

जब किर्किनि घुनि कान परी री ।  
लख ललचाय लखन सों लालन हँसि यह बात कही री ।  
मानहु मान महान महादल कै दुन्दुभि की सान बली री ॥

विश्व-विजय अब कीन्हो चाहव मम दृढ़ता लखि भाजि भली री ।  
 'रामप्रिया' के रामलला को आजु लली मन छीनि चली री ॥

१२

मृग-मन हारे मीन खंजन निहारि वारे,  
 प्यारे रतनारे कजरारे अनियारे हैं ।  
 पैन सर धारे कारी भृकुटि धनुष-वारे,  
 सुठि सुकुमारे शोभा सुभग सुढारे हैं ॥  
 कैधों हैं जलज कारे कैधो ये त्रिगुण युक्त,  
 चंद्रमा पै चंचला के चपल सितारे हैं ।  
 'रामप्रिया' राम मन रमन अगारे कैधौ,  
 जनक-किशोरी बाँके लोचन तिहारे हैं ॥

१३

हरषित अंग भरे हृदय उमंग भरे,  
 रघुवर आयौ मुद चारो दिसि न्वै गयो ।  
 सुन्दर सलोने सुभ्र सुखद सिँहासन पै,  
 जनक सप्रेम जाय आसन जबै दयो ॥  
 'रामप्रिया' जानकी को देखत अनूप मुख,  
 पंकज कुमुद सम दूजे नृप है गयो ।  
 मानो मणि-मंडित शिखर पै मयंक तापै,  
 मजु दिनकर प्रात प्राची सो उदय भयो ॥

१४

किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन के,  
 बिक्से प्रसून न मलिन्द छवि घावै रीऊ ।  
 बेला बाग बोधिन बसत की बहारें देखि,  
 'रामप्रिया' सिया-राम सुख उपजावै री ॥  
 जनक-किराँरी युग करतें गुलाल रोरी,  
 कीन्हें धरजोरी प्यारे मुख पै लगावै री ।  
 मानों रूप-सर ते निकसि अरविन्द युग,  
 निकसि भयक मकरद धरि लावै री ॥

१५

लामा जेबदार ये बसन्ती कैधों श्रुतु सब,  
 मजुकर काम्ति कैधों पकज सनाल की ।  
 गावत धमार ताल कैधों कोकिला की कूक,  
 प्यारी छवि चपकी वै दरार-लाल की ॥

---

❀ हिन्दी साहित्य में कवियों ने राधिका और कृष्ण की होली बहुत  
 लिखाई है किन्तु राम और साता का हाली नहीं लिखाई गई । रानी  
 साहबा ने राम और माना की भी हाली लिखाई है । शायद यह राधा  
 कृष्ण की होली का अनुकरण है । सही नह है किन्तु राममक वैष्णव  
 सिद्धान्तानुसार ठीक नहीं है ।

‘रामप्रिया’ हिय हुलसावै कै लगावै रंग,  
 प्रेम-मदमाती कै कै गई लाज वाल की ।  
 कैधो पंचवाण निज पञ्चवाण माखो ताकि,  
 कैधो पिचकारी मारी भरि के गुलाल की ॥

१६

तू न नवत सब तोहिं तजेंगे ।  
 जा हित जग-जंजाल उठावत तोही छाँड़ि भजेंगे ॥  
 जा कहँ करत पियार प्राण-सम जो तोहिं प्राण कहेंगे ।  
 सोऊ तोकहँ जात देखि के देखे देह 'डरेंगे ॥  
 देह मेह अरु नेह नाह तें नातो नहि निबहेगे ।  
 जा बस है निज जन्म गँवावत कोऊ सँग न रहेगे ॥  
 कोऊ सुख जम-दुख-बिहीन सहि सहि कोउ संग करेंगे ।  
 ‘रामप्रिया’ बिनु रामलाल के भव-भय कोउ न हरेगे ॥

१७

मानु मानु मन मानु रे अब जनि करसि गुमान ।  
 ‘रामप्रिया’ सब काम तजि रामचरित्र-बखान ॥  
 ‘रामप्रिया’ रट राम को रहै रैन दिन लागि ।  
 रातिहु दिन के रगर तें वृत्त तेँ उपजै आगि ॥  
 ‘रामप्रिया’ की इस्तिजा सुनिये करुणासिधु ।  
 माफ करो करतार प्रभु मेरे दीनावंधु ॥

१८

सिय मुग्धचद त्याग दूजो चद मद कहों,  
कौन गुण जानि समता में अवलोकों में ।  
मुख अकलकी सकलसी तू प्रसिद्ध जग,  
काहि समझाऊँ कैसे वाको जाय रोको में ॥  
दिवा घति हीन घन समय मलीन-पीन,  
'रामप्रिया' जानै तोहि जन सब लोकों में ।  
लली-मुग्ध लालिमा गुलाल सा लपटात जैसे,  
तैसी दरसावो तो सराहो तब तोका में ॥

## रणछोर कुँवरि

**बा**घेली श्री रणछोर कुँवरिजी का जन्म रीवा में लगभग संवत् १६४६ में हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीमान् बलभद्रसिंह था। श्रीमान् बलभद्रसिंहजी रीवाँ के स्वर्गीय महाराजा श्रीमान् विश्वनाथसिंहजी के भाई थे। जब ये छोटी थीं, तभी इनके पिता की मृत्यु हो गई। इनके चचेरे भाई महाराजा रघुराजसिंहजी ने इनका विवाह संवत् १६६१ में जोधपुर के महाराजा श्रीमान् तखतसिंहजी के साथ कर दिया था। इनके पिताजी राधाकृष्ण के बड़े भक्त थे। इनके पास पिता की प्यारी एक पीतल की मूर्ति थी जिसे श्रीमतीजी ने जोधपुर में एक मंदिर बनवा कर स्थापित करा दिया है। कहते हैं कि एक बार कृष्णजी ने इन्हें स्वप्न दिखाया कि हमारी एक सुन्दर मूर्ति जयपुर से अमुक सुनार के मकान में है, तुम उसे मँगा लो। इन्होंने उस मूर्ति को जयपुर से मँगवाई। ये अत तक बड़े प्रेम से उस मूर्ति की पूजा करती रहीं। आप बड़ी धर्मात्मा और त्वावलम्बिनी थीं। आपको भागवत से बड़ा प्रेम था। आप कृष्ण-प्रेम में रँग कर कविता भी लिखती थीं। इनकी कविता सरस और भक्तिपूर्ण होती थी। कुछ चुने हुए पदों के नमूने यहाँ दिये जाते हैं :—



१

गोविन्द तुम हमारे, दुग्न राशि से उबारे ।  
मैं सरन हूँ तिहारे, तुम काट-कटक टारे ॥

२

तुम प्रीतम हो प्यारे, सिर झीट मुकुट वारे ।  
छोनी छटा पसारे, मोरी सुरत बिसारे ॥

३

कोटिन पतित उधारे, सब लग गए स्निहारे ।  
मैं हूँ सरन तिहारे, विगड़ी बसा सुधारे ॥

४

गोविन्द के पास आओ मन में विचार लाओ,

पाप कट जाय जाय दरसन पाये ते ।

ध्यान लाओ मन में श्रवण मैं उसे रमाओ,

मन मिल जाय बाहि गुन गुन गाये ते ॥

गुरु के भजन प्यारे गोविन्द सुभाव ही से,

दिलहू में प्रेम बदे बाकी छवि छापे ते ।

चरन में सीस नाओ भगती में रम आओ,

कलिहू के पार जाओ भक्ति छपनाये ते ॥

## गिरिराज कुँवर

**श्री**मती महारानी गिरिराज कुँवर जी भरतपुर की राजमाता थीं ।

आपका जन्म लगभग संवत् १६२० और देहांत संवत् १६८० में हुआ । जहाँ आप समाज और राजनीति की ओर ध्यान देती थीं वहाँ आप में साहित्य-प्रेम भी अटूट था । श्रीमती जी ने सं० १६६१ में “श्री प्रजराज-विलास” के नाम का कविता-ग्रन्थ लिखा जो बम्बई के श्री वेंकटेश्वर प्रेस में छपा है । हिन्दी को भरतपुर राज्य में अच्छा पद मिलना श्रीमती जी की कृपा का ही फल है । आपने आयुर्वेद का प्रचार राज्य में किया है । स्त्री-शिक्षा की बड़ी सहायता करती थी । समाज-सुधार को बहुत पसंद करती थीं । विवाह आदि अवसरो पर जो निर्लज्जता पूर्ण गारी आदि गार्ह जाती है, उनके स्थान पर सुन्दर-शिक्षा पूर्ण गाने गाया जाना आप अच्छा समझती थी । “श्री प्रजराज-विलास” में श्रीमती जी ने ऐसे ही गीतों का संग्रह किया है । उक्त ग्रंथ की भूमिका में आप लिखती हैं —

“मैं इन पुस्तक में कविता नहीं दिखलाती, न मैं कविता जानती हूँ । दो बातों ने मुझको इन भजनों के लिखने की प्रेरणा की है । प्रथम श्री गोपाल जी की कृपा और दूसरे मैं देखती हूँ कि बहुधा यहाँ की स्त्रियों में लज्जित गान करने की रिवाज बढ़ती जाती है । यद् शोक की बात है कि जिन बातों को अच्छे स्त्री-पुरुष सुनने से शरमाते हैं उन्हीं को

छियाँ— निनका जन्मा ॥ उत्तम भूषण है—पुकार पुकार और गा गा कर बहें । छियाँ पुरुषों के नाम ले ले कर थहाद पूवक ऐसे गात गाती है कि निनका दृष्टान्त-रूप से भी हम यहाँ लिख नहीं सकतीं । समय श्रुत के अनुसार अथवा उत्पन्नादिक में मनोहर, पवित्र, उत्तम विषय-युक्त और मांगलिक गान करना छियों का धर्म है । इसीलिए गान विद्या भा का का चौंसठ कवा में मुख्य मानी गई है । का का सासारिक देव पति और पारमार्थिक भा गोपाळ वा महाराज है । इहीं दो का प्रमत्त करने में इस विद्या में भा निपुण होना चाहिये ।”

इसके भाग श्रीमती वा लिखनी हैं —

‘आशा है कि हमारे देश का छियाँ निर्वज गीतों को त्याग उनकी जगह ॥ पदा को काम म लावेंगा । पुरुषों का भा उचित है ॥ सदा छियों को दुरी बाल और दुरे गाने से रोकते रहें क्योंकि स्त्री कैसी भी होशिवार और सम्यक् हो तो भी बिना निगाह में रखने और उचित उपदेस किये अज्ञायमान हो जाती है ।”

श्रीमती वा छियों में विद्या प्रचार क साथ साथ उनमें गृह शिक्षा के प्रचार को अनिवार्य और आवश्यक समझती थीं और इसीलिए आमतो जी ने ‘पाक प्रकाश’ नामक पुस्तक भा लिखा थी जो दृढ़ चुकी है । यदि यह हम लोक में अब तक होतीं तो इनका विचार छियों के उपयोगी प्रत्येक विषय पर पुस्तकें लिखने का था । कविता भा आप ब्रज्जा लिखनी थीं । आपके विचार परिमार्जित और सुन्दर हैं । हम आपका कुछ रचनायें नीचे उद्धृत करते हैं :—

१

हो प्यारी लागौ श्याम मुँदरिया ।

कर नवनीत नैन कजरारे, उँगरिन सोहै मुँदरिया ॥

दो दो दशन अधर अरुणारे, बोलत बैन तुतरिया ।

सोहै अंग चन्दनी कुरता, सिर पै केश बिखरिया ॥

गोल कपोल डिठोना माथे, भाल तिलक मन-हरिया ।

घुटुअन चलत नवल तन मंडित, मुख मे मेलै उँगरिया ॥

यह छवि देखि मगन महतारी, लग नहिं जात नजरिया ।

भूख लगी जब ठिनकन लागे, गहि मैया की चुँदरिया ॥

जाको भेद वेद नहिं पावत, वाको खिलावै गुजरिया ।

धन यशुमति धनि धनि ब्रजनायक, धनि धनि गोप नगरिया ॥

२

बंसी बज रही तनक तनक में, नथ मेरी दूट गई अगरे में ।

मैं दधि बेचन जात वृन्दावन, रोक लई डगरे में ॥

दधि मेरो खाय मटुकिया फोरी, अरी वाके खपरा परे नरे में ।

दुलरी तोर चुँदरी अटकी, अरी वाने डारी बाँह गरे में ॥

अब ब्रजपति हँसि बात बनावै, डारत नोन जरे में ॥

३

जहाँ न आदर भाव न पड़्ये, मनुआ वा घर कबहुँ न जइये ।

दुकड़ा मलो मान को सुखो उलटो खीर न खइये ॥

मुसदा आगे आदर करते, पीछे खाक उड़इये ।  
 मुँह देखे पर भीठे मोलें, पीछे ऐब लगइये ॥  
 अपने मतलब हित दरसावैं, काम परे इतरइये ।  
 ऐसे मित्र कबहुँ नहिं कीजै, जासों जी पछतइये ॥  
 गिरिराऊ धारन हैं स्वामी, जग में मोहिं बचइये ॥

४

मोर मुकट शिर पेच कलगी सजत मूमका कानन में ।  
 नैन विराल कुटिल भृशुटी छवि छाव रही अति आनन में ॥  
 तेज लसै मुख ऊपर जितनो इतनो नहिं शव भानन में ॥

५

अद्भुत रचाय दियो खेल, देखो अलवेली की बतियाँ ।  
 कहूँ जल कहूँ यल गिरि कहूँ कहूँ वृक्ष कहूँ वेल ॥  
 कहूँ नाश दिखराय परत है कहूँ शर कहूँ मेल ।  
 सब के भीतर सब के बाहर सब में करत कुलेल ॥  
 अब क घट में आप विराजौ क्या तिन भीतर तल ।  
 श्री नमराज सुही अलवेली सब में रीलापेल ॥

६

दरशन की लगे आस अब मैं कहाँ जाऊँ ॥  
 महल तिवारे मोय न चाहिये, टूटी मुपरिया मास ।  
 शाल-दुराला माय न चाहिये, फारी कमरिया कास ॥

कुटुम-कवीले मोय न चाहिये, श्यामसुंदर संग रास ।

कृष्णचन्द्र अब से मोय मिलिहैं, ये मन मैं है भास ॥

७

मन मिले की प्रीत महाराजा ।

यदुकुल के महाराज कहावत, करते नित अनीत महाराजा ॥

कुवजा नारि कंस का चेरी, वाते करो परतीत महाराजा ।

सोला सहस गोपिका त्यागी, छोड़ दयी कुल रीत महाराजा ॥

हमने हूँ हरि अब पहिचाने, हमहूँ रहेंगी सभीत महाराजा ।

लंकापति भगिनी मद-विह्वल, आई मिलन विनीत महाराजा ॥

कर अपमान कुरूपा कीनी, ज्यो खेती कूँ शीत महाराजा ।

कपटी कुटिल चतुर ब्रजनायक, तुमहूँ उनके भीत महाराजा ॥

८

कछु दीखत नहिं महाराज, अँधेरी तिहारे महलन में ॥

ऐजी ऊँचो सो महल सुहावनो, जाको शोभा कही न जाय ।

तूने इन महलन मे बैठ कै, सब बुध दी विसराय ॥

ऐजी नौ दरवाजे महल के, औ दशमी खिड़की बंद ।

ऐजी घोर अँधेरो है रह्यो, औ अस्त भये रवि-चंद ॥

ढूँढ़त डोलै महल मैं रे, कहूँ न पायो पार ।

सतगुरु ने तारी दर्ई रे, खुल गये कपट-किवार ॥

कोटि भानु परकाश है रे, जगमग जग

बाहर भीतर एक सी रे, कृष्ण नाम क

९

मो तन कौन अधम जग भाई ॥  
 सगरी उमर विषयन में खोई, हरि की सुधि विसराई ।  
 मन भायो सोई र कीनो, जग में मई हँसाई ॥  
 कुल की कान वेद मर्यादा, यह सब धोय बहाई ।  
 सब ही जानू सब मुख मापूँ, चलती नौव चलाई ॥  
 जिनके सँग ते करै विसासी, साँप होय डस जाई ।  
 सब की बैठ के करूँ निन्दरा, अपनी लेत छिपाई ॥  
 काम-क्रोध मद लोभ मोह के, घेरे हुए सिपाई ।  
 इनते मोहि छुड़ाओ स्वामी, 'गिरिराज' है शरणाई ॥

---



श्रीमती हेमन्तकुमारो चौधरानो



## हेमंतकुमारी चौधरानी

**श्री**मती हेमंतकुमारी चौधरानी का जन्म आश्विन संवत् १९२५ में लाहौर नगर में हुआ। आपके पिता का नाम पंडित नवीनचंद्राय था। 'बाबू नवीनचंद्राय पंजाब-विश्व-विद्यालय के संस्थापक, सचालक, अनेक भाषाओं के पंडित, देशभक्त, और हिन्दी भाषा के पुराने सेवक थे। आप बंगाली होकर भी हिन्दी के बड़े हितैषी थे। ६० वर्ष पूर्व जब पंजाब में उच्च शिक्षा का नाम निशान नहीं था, पंजाबी लोग उर्दू को ही अपनी मातृभाषा समझते थे, उस समय बाबू नवीनचंद्राय जी शिक्षा-विस्तार करने के लिए पहले कार्य-क्षेत्र में अग्रसर हुए। हिन्दी भाषा को पंजाब-विश्व-विद्यालय में पढ़ाये जाने के लिये उन्हें कितनी ही बार उर्दू-प्रेमी पंजाबी हिन्दुओं और मुसलमानों से घोर तर्क-वितर्क-युद्ध करना पड़ा। पंजाब में हिन्दी प्रचार का पहिला श्रेय पं० नवीनचंद्राय जी को ही है। उन्होंने हिन्दी प्रचार के लिए पंजाब में एक कन्या विद्यालय की स्थापना की। कितनी ही हिन्दी-संस्कृत की पुस्तकें बालक-बालिकाओं के लिए प्रकाशित की। "ज्ञान-प्रदायिनी" नामक पत्रिका भी उन्होंने उस समय निकाली जो पंजाब में हिन्दी-प्रचार में सहायक हुई। उन्होंने 'लक्ष्मी-सरस्वती-सवाद' नामक पुस्तक रच कर अपनी गृहिणी और जेष्ठ पुत्री श्रीमती हेमंतकुमारी जी के हृदय में भी हिन्दी भाषा का अनुराग उत्पन्न किया।

श्रीमता हेम लजुमारी जी की शिक्षा के लिए उनके पिता ने घर पर ही शिक्षक नियुक्त किये। उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी, सङ्कृत की अच्छी शिक्षा दी गई। साक्ष्यकाल से ही ये हिन्दी की ओर विशेष रुचि रखती थीं। ये अपने पिता के आदर्शों पर चलकर भ्रान भी हिन्दी की सेवा में सज्ज हैं।

सन् १९४० में आसाम प्रान्त के सिखाङ्ग निवासी सुशिक्षित बाबू राजचन्द्र चौधरी के साथ इनका विवाह हुआ। पहले चौधरी जी सरकारी पद पर नियुक्त थे। इन्होंने सिखाङ्ग में कई विद्यालयों का स्थापना की है और स्वयं जब तक वहीं रहे उनकी दायित्विक सेवा करते रहे। श्रीमता हेम लजुमारी जी अपने पिता के साथ रह कर ता अनेक स्थानों में घूमी ही थीं किन्तु पति के साथ रह कर भी इन्हें बहुत से स्थानों में घूमने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अनेक स्थानों के भ्रमण से इन्हें कितनी ही बातों का अनुभव प्राप्त हुआ।

आज से ४० वर्ष पहले जब ये अपने पिता और पति के साथ रत्नाराम राज्य में रहती थीं तब इन्होंने उस समय "सुगुहिली" नाम की मासिक पत्रिका निकाली। इस पत्रिका का इन्होंने ४, ५ वर्ष तक योग्यता पूर्वक सम्पादन किया। पत्रिका का उद्देश्य स्त्री शिक्षा और हिन्दी भाषा का प्रचार करना था। किन्तु जब इनके पति आसाम चले गये तो इन्हें भी वहाँ जाना पड़ा। इससे इस पत्रिका का प्रकाशन स्थगित कर दिया गया। इसके बाद जब ये श्रीहन्मनगर में थीं तब इन्होंने वग भाषा में 'अत-पुर' नामक स्त्री शिक्षा सम्बन्धी पत्र का सम्पादन किया।

पिता और पति के साथ ये जहाँ जाती वहाँ ही स्त्रियों तथा हिन्दी की उन्नति के कामों में विशेष रूप से भाग लेती रहीं। जब ये शिलांग में थी तब वहाँ इन्होंने, महिला-समिति, महिला-पुस्तकालय और बालक-पालिकाओं के लिए विद्यालयों की स्थापना की थी जो आज तक चल रहे हैं। इन्होंने श्रीहट्टनगर में गवर्नमेंट की सहायता से एक उच्च कन्या-विद्यालय खुलवाया और कई वर्ष तक वहाँ स्वयं अवैतनिक रूप से सेवा करती रहीं। वहाँ इन्होंने एक महिला-सभा की भी स्थापना की जो आज भी वर्तमान है।

एक बार ये इतनी बीमार हुईं की दबने की भी आशा नहीं थी ; किन्तु धारोग्य हो गईं। जिन दिनों ये बीमार थीं उन्ही दिनों में पटियाला राज्य में स्वर्णवासिनी विक्टोरिया की पवित्र स्मृति-रक्षार्थ एक उच्च कन्या-विद्यालय के स्थापना का उद्योग किया गया। इसी विद्यालय के संगठन करने के लिए हेमन्तकुमारी जी भी बुलाई गईं। किन्तु बीमारी के कारण उस समय वहाँ ये न जा सकी। २१ वर्ष बाद संवत् १९६३ में हेमन्तकुमारी जी पटियाला गईं और कन्या विद्यालय के संचालन का सारा भार अपने ऊपर ले लिया। इस विद्यालय में लगभग ४०० लड़कियाँ पढ़ती हैं। यहाँ ऊँची से ऊँची शिक्षा दी जाती है। आज भी आप इसी विद्यालय की सेवा में लगी हैं। पंजाब में आकर हेमन्तकुमारी जी का हिन्दी-प्रेम फिर जागृत हुआ। इन्होंने यहाँ कई हिन्दी के स्कूल खुलवाये। पंजाब के शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने आप को, हिन्दी-योग्यता से प्रसन्न

होकर 'पञ्चाय विश्व विद्यालय की 'प्रवेशिका' परीक्षा का हिन्दी परीषद नियुक्त किया।

चौधरानी जी ने हिन्दी भाषा में बहुत सी पुस्तकों की रचना की है। "आदर्श माता" "माता और कन्या" और "नारी पुष्पावली" आदि पुस्तकें बहुत उत्तम और ज्ञान प्रद हैं। इनकी भाषा विद्युद, सरल और मधुर है। बंगाल की स्त्रियों को हिन्दी-साहित्य से परिचित कराने के लिए उन्होंने— 'हिन्दी-बैंगला-प्रथम शिक्षा' नामक पुस्तक की रचना की है। अभी हाल ही में स्त्रियों के शिक्षण ज्ञान समर्पण एक सुन्दर "सचित्र नवीन शिक्षण-भाषा" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। यह पुस्तक बड़ी उपदेय है। इसमें सैकड़ों चित्र हैं। चित्र विज्ञापन में मँगवा कर लगवाये गये हैं। स्त्रियों के बड़े काम की यह पुस्तक है।

श्रीमती हेम लक्ष्मी चौधरानी के ११ सम्मान हैं। पाँच पुत्र और छ कन्या। सभी पुत्र आर कन्यायें उच्च शिक्षा प्राप्त और ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित हैं। गृहस्थी की देख-भाल, पुत्रों-कन्याओं की शिक्षा का प्रबन्ध भी स्वयं करती हैं।

चौधरानी जी बंग भाषा की अच्छी पढ़िता हैं। हिन्दी-कविता भी आप करती हैं। प्रायः हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों के अधिवेशनों में भी सम्मिलित होती हैं। आपका हिन्दी भाषण जोरदार और विद्युद होता है। सोलहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर वृन्दावन में जो अखिल भारतीय अध्यापक-संघ स्थापित हुआ था उसकी आप समानेत्री बनाई गई थीं। आप बड़ी योग्य महिला हैं।

स्वभाव आपका सरल और नम्र है। आप हिन्दी में कविता भी करती हैं। यद्यपि आपने कान्य-सम्बन्धी कोई पुस्तक नहीं लिखी तो भी रचनायें अच्छी होती हैं। हम इनकी दो-एक रचनायें नीचे देते हैं :—

१

## स्मरण

जिसके यश से सब पूरण है,  
 यह विश्व चराचर व्याप्त अभी ।  
 जिसकी महिमा, प्रतिभा, गुरुता,  
 लखते रहते हम लोग सभी ॥  
 जल, पावक, चंद्र, रवी वर वायु,  
 विमोहक हैं टलते न कभी ।  
 वससे वस प्रीति करो नर-नारि,  
 सुजीवन-लाभ करोगे तभी ॥

२

## स्तोत्रम्

जय जगदीश्वर देव दयाकर,  
 सर्व गुणाकर विश्वविधे ।  
 प्रेम सुधाकर करुणा-सागर,  
 सुवन मनोहर शान्ति निधे ॥  
 जय भव-भंजन भक्त-सुरंजन,  
 नित्य निरंजन विश्वपते ।

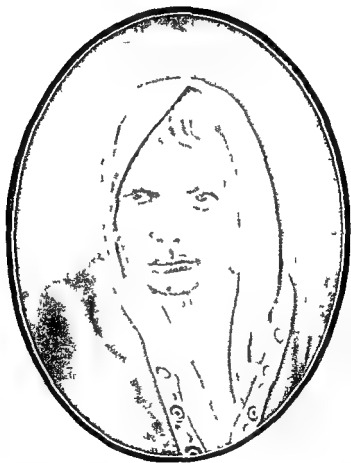
पातकि-चारण्य पाप-निवारण्य,  
यम भय-वारण्य जीव गते ॥  
सत्य सनातन, पुरुष पुरातन,  
मुक्ति निकेतन, देव हरे ।  
जय नारायण, परम परायण,  
भीममवाण्य पार तरे ॥  
निश्छल, निर्मल, मूर्ति मनोहर,  
सकल सुमंगल देव करो ।  
जय जम शकर, शिव करुणाकर,  
विश्वम्भर दुख पाप हारो ॥

३

### सगीत

भव तारण्य हे, तब नाम लिप ।  
नहि दुःख रहे, मम प्राणपते ॥  
करुणाकर हे, निस्तार किये ।  
बहु पापि गने, अगतर-गत ॥  
जग-कारण्य हे, जगदीश हरे ।  
दिन रात मेरे, सत्र जात चल ॥  
हित नहि किये, निज के पर के ।  
तुव हाथ घरे, मम दुःख टरे ॥

स्त्री-कवि-कौमुदी



श्रीमती रानी रघुवंशकुमारी

## रघुवंशकुमारी

**रा**जमाता दियरा ( अवध-युक्तप्रांत ) रानी रघुवंशकुमारी का जन्म सम्वत् १६२५ ज्येष्ठ शुक्ला ७ गुरुवार के दिन हुआ था । आपके पिता का नाम राजा सूर्यभानुसिंह था । जो भगवानपुर राज्य के राजा थे । पाँच वर्ष की अवस्था से आपको विद्यारंभ कराया गया । आपके पिता बड़े भगवतभक्त और हिन्दी-कविता के प्रेमी थे । इसलिए पिता का असर आप पर अधिक पड़ा । आपका बचपन का नाम 'गुणवती' है । आठ वर्ष की अवस्था में आप रामायण भली भाँति पढ़ने लगी थीं । तेरह वर्ष की अवस्था में आपने सीने-पिरोने, पढ़ने-लिखने तथा कला-कुशलता आदि में विशेष निपुणता प्राप्त कर ली थी ।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में आपका विवाह दियरा राज्य सुलतानपुर (अवध) के राजा रुद्रप्रताप साहि से हुआ । वे बड़े दानी और प्रतिष्ठित राजा थे । रानी साहबा का जीवन अत्यन्त आनंद के साथ व्यतीत हुआ । विवाह होने के कई वर्षों तक रानी साहिबा के कोई संतान न हुई । इससे कुछ लोग राजा साहब को दूसरे विवाह की सम्मति देने लगे । पर राजा साहब रानी साहिबा से इतना अधिक स्नेह करते थे कि उन्होंने दूसरे विवाह की बात पर ध्यान ही नहीं दिया । अंत में सं० १६४६ ई० में भाद्र-कृष्ण १३ शनिवार के दिन इनके प्रथम पुत्र राजा अवधेन्द्र प्रताप साहि का जन्म हुआ । राजा रुद्रप्रताप साहि का



देहान्त स० १९७१ में २४ वर्ष की अवस्था में हो गया। पति के देहान्त के बाद आप अपना जीवन साधुओं की भाति बिताने लगीं हैं।

आपके तीन पुत्र हैं। अक्बरेन्द्र प्रताप साहि, कोशलेन्द्र प्रताप साहि और सुरेन्द्र प्रताप साहि। इस समय श्रीमान कोशलेन्द्र प्रताप साहि कोर्ट ऑफ वाइस की ओर से राज्य के स्पेशल मैनेजर हैं। क्योंकि रानी साहिबा के बड़े पुत्र राजा अक्बरेन्द्र प्रताप साहि का मस्तिष्क ठीक न रहने के कारण राज्य कोर्ट ऑफ वाइस के अदर आ गया है। सास और पति की मृत्यु के बाद रानी साहिबा 'राजमाता दिवरा' के नाम से पुकारी जाती हैं।

राजमाता दिवरा बड़ी धार्मिक हैं। आप अनेक तीर्थों की यात्रा कर चुकी हैं। आपके सामाजिक विचार हिन्दू जाति के लिए बड़े ज्ञानदायक हैं। आप श्री शिवा की बड़ी ही पचपासिनी हैं। आपकी रहन-सहन बहुत ही सादा है। स्वभाव अप्यन्त सरल और कोमल है।

चित्रकला का भी आपका शौक है। शिल्पकला में आपने दूर दूर तक प्रगति पाई है। जवन की प्रदर्शिनी सन् १९९८ में आपको ज़रवाज़ी के काम के लिए सोने का पदक मिला था। स० १९९७ ई० की प्रयाग की प्रदर्शिनी में थिफन के काम के लिए और स० १९९९ ई० में मुजतानपुर की प्रदर्शिनी में भी आपका पदक मिले थे। गानविद्या में आप निपुण हैं। इस समय आपकी अवस्था ६२ वर्ष की है।

आप काम्य के मर्म को भा सूत्र समझती हैं और स्वयं प्रशसनीय कविता करती हैं। आपने हिन्दी के माय सप्त सुप्रसिद्ध कवियों के

ग्रन्थ भी पढ़े हैं। राजमाता दियरा ने अपने आवश्यक कामों से अवकाश निकाल कर गद्य और पद्य-साहित्य द्वारा स्त्री जाति तथा हिन्दी की बड़ी अच्छी सेवा की है। आपकी लिखी हुई तीन पुस्तकें अभी प्रकाशित हुई हैं।

१—भामिनी विलास—यह पुस्तक सन् १९६६ में लिखी गई है। घर-गृहस्थी के सम्बन्ध रखने वाले प्रायः सब विषयों पर रानी साहवा ने इसमें अपने विचारों का वर्णन किया है। इसमें ५७ पृष्ठ हैं।

२—बनिता-बुद्धि-विलास—यह पुस्तक सं० १९७२ ई० में प्रकाशित हुई है। यह स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी कँचे दर्ज की पुस्तक है। भाषा उत्तम और सरल है। इसमें १८३ पृष्ठ हैं।

३—सूप-शास्त्र—इस पुस्तक में भोजन बनाने की अनेकों विधियाँ लिखी गई हैं।

इस समय आप एक बड़ी पुस्तक, जिसमें अनेकों भजनों तथा कविताओं का संग्रह किया गया है, लिख रही हैं। आपका एक जीवन-चरित्र “रानी रघुवंश कुमारी” नाम का प० रामनरेश त्रिपाठी ने प्रकाशित किया है। आप कविता भी अच्छी करती हैं। यहाँ हम आपके कुछ सुने हुए पद्य उद्धृत करते हैं:—

१

फिरै चारिहु धाम करै व्रत कोटि कहा बहु तीरथ तोय पिये तें।  
जप होम करै अन्नगंत कछु न सरै नित गंग नहान किये तें ॥  
कहा धेनु को दान सहस्रन बार तुला गज हेम करोर दिये तें।

‘रघुवश कुमारी’ ब्रूया सब है जब लौं पति सेवे न नारि हिये तें ॥

२

पिय के पदफजन राती ।

विष्णु विरचि समु सम पति में छिन छिन प्रेम लगाती ।

तन मन बचन छाडि छल भामिनि पति सेवति बहु भाती ॥

कबहुँ नहिं प्रीति मुनाती ।

पिय क० ॥

दासी सम सेवति जननी सम पान पान सब लाती ।

सखि सम केलि करति निसिवासर भगिनी सम समझाती ॥

बधु सम सग सँगाती ।

पिय के० ॥

प्रिय पति विरह अमरपुरह में रहति सदा अकुलाती ।

पति सँग सघन विपिन का रहिना सेवत रस मदमाती ॥

हृदय मानहि बहु भाती ।

पिय क० ॥

नार्दिन द्वार रहति नहिं परधर एकाकिन कहिं जाती ।

मूँदति नैन ध्यान घर आनति, ‘गुनपति’ पति गुन गाती ॥

नहिं मन मोद समाती ।

पिय के० ॥

३

पहिल पै ठगोरी ठगो हमको फिर लाज क बधन छोरि दियो ।

बलबुद्धि हृद्यो निज वातन तें अबला अति जान सताइ लियो ॥  
 निज सीधे चितैवे की साध रही विरहानल दाढ़ लगाय दियो ।  
 सब वातन मे पिय वीर बनो एक प्रीति में दाँव चली न हियो ॥

४

छायेगी जो ज्ञान-घटा हिय मे विचार सत्य,  
 मारुत बहाय स्वच्छ वूँदे झरि लायगी ।  
 जायगी मलीन मति आपनो परायो सब,  
 रहैगी न देह यह नीके दरसायगी ॥  
 करैगी कलेस जो पै लहैगी अमोल मणि,  
 जीव ब्रह्म बीच कुछ भेद नहीं जायगी ।  
 खिलैगी सनेह कली धरैगी जो ध्यान अली,  
 वाकी भांकी इसके लुले ही रहि जायगी ॥

५

जेहि के बल संकर सुद्ध हिये धरि ध्यान सदाहि जपै गुन गाम ।  
 जेहि के बल गीध अजामिल हूँ सेवरी अति नीच गई सुरधाम ॥  
 जेहि के बल देह न गेह कछु वसुधा वस कीनो सबै सुर-काम !  
 धनु वान लिये तुम आठहु जाम अहो श्रीराम बसौ उर-धाम ॥

६

सीतल मंद सुगंध समीर लगे जपि सज्जन की प्रिय बानी ।  
 फूलि रहे वन-वाग-समूह लहै जिमि कीर्ति गुणाकर ज्ञानी ॥

नीक नवीन सुषट्ठ सोह बढै जिमि प्रीति के स्वारथ जानी ।  
गान करै कल कीर चकोर बढै जिमि बिप्र सुमगल षानी ॥

७

पिय चलती बेरिया,

कछु न कहे समझाय ।

तन दुख मन दुख, नैन दुख हिय भे दुख की खान ।  
मानो कबहूँ ना रही, वह सुख से पहचान ॥  
मन में बालम बस रही, जनम न छोड़ति पाय ।  
बिछुड़न लिखा लिलार में, तासों काह बसाय ॥  
बालम बिछुड़न कठिन है, करक करेजे हाय ।  
तीर लगे निकसे नहीं, जब लौं प्रान न जाय ॥  
जगन्नाथ के सिंधु में, डोंगो की गति जोय ।  
सस मति पिय के बिरह में, हाय हमारी होय ॥

८

कहत पुकार कोइलिया हे श्रुतुराज ।

न्याय दृष्टि से देखहु बिपिन समाज ।

सोना सम्पति काज त्यागि सब साज ।

भये उदासी बिरिया बिसरी लाज ।

ध्यान करहु इत अथ सुध कस नहि लेत ।

तोछन बहत बयारिया करत अचेत ॥

९

खस के बितान पै गुलाब जल फुइयाँ फुइयाँ,  
 बीजुली के पंखे निसि बासर फिरै करें ।  
 चंदन कपूर चोवा चम्पा औ चमेली जुही,  
 आस बौरि मोगरा के इतर भरै परैं ॥  
 रंग भरे संगतरे कावुली अनार मीठे,  
 पौढ़े जल केवडा के डब्बे मे भरै तरैं ।  
 जेठ को प्रभाव तेज तेहू पै सताये आप;  
 स्वेतन की बूढ़े मुख मोती सी लरैं परैं ॥

१०

पग दावे ते जीवन मुक्ति लही ।

विष्णुपदी सम पति पदपंकज छुवत परम पद होवे सही ।  
 निरखि निरखि मुख अति सुख पावति प्रेम समुद के धार बही ।  
 रिद्धी सिद्धि सकल सुख देव सो लक्ष्मी पद हरि के गही ।  
 जहँ पति-प्रीति तहाँ सुख सरबस यही बात सुति सोंच कही ॥

११

नीलकंठ गोरे अंग सोहत विधु बाल भाल हर हर गंगा ।  
 तीन नैन अरुन कमल बिहँसत रद बिद्रुम हर हर गंगा ॥  
 लिपटे अहि उर विसाल मुंड माल धारी हर हर गंगा ।  
 पहने कटि नाग छाल ओढ़े भृगु चर्म हर हर गंगा ॥  
 जोगी बर ज्ञान तान बैठे कमलासन हर हर गंगा ।

वाम भाग पारवती दाहिने वर वदन हर हर गंगा ॥  
 गोदी गज वदन लाल किलकै हँसि हेरि हर हर गंगा ।  
 रिद्धि सिद्धि पुत्र महित बाढे सुख सम्पति हरहर गंगा ॥  
 त्रिनयी कर ओरि नाम दीजै मोहि भक्ति मुक्ति हर हर गंगा ।

१२

चैत चाँदनि में इतै मुरली बजाई मद मद ।  
 तान से बनितान क गल बाँधि के किये बंद बंद ॥  
 ता समय वृषभानु लाजलि हों गई करि फंद फंद ।  
 देखि मोहनऊ गये अबलोक के मुख बंद बंद ॥  
 बहे त्रिविधि बयरिया, त्रिविधि बयरिया ॥  
 चैदनिया छिदकि रही ।

चम्पा जुही चमेली, चम्पा जुही चमेली ॥  
 मालति फूलि रही ॥

अवलोकिक दुलहिन बेलि के तन फूल-माल विराज ही ।  
 मुरसाल दूल्ह सीस सुन्दर मोर के छवि छान ही ॥  
 शत्रुराज के गृह-स्याज आज बछाह परम पुनीत है ।  
 बकवा सुकोमल कीर-आमिनि गावती रस गीत हैं ॥  
 बोलै मोर पपिहरा, बोलै मोर पपिहरा ।  
 कोकिल गान करै ।

बिछी लाल पलंगिया, बिछी लाल पलंगिया ।  
 रेशम की डोर पिचो ॥

१३

है ह्वै संभु प्रत्यच्छहिं जो तो अवाहन काहे को सामुहे पूजिये ।  
 अर्थ पदारथ आचमनी कर-कंज दोऊ वृषभांजलि दीजिये ॥  
 ढांपि दुकूल से चंदन लाइ चमेली के हार से शोभित कीजिये ।  
 भाव व प्रीति से कामद सानि के पूजि मनोरथ प्यारी सो कीजिये ॥

१४

विमल किरतिया तोहरी कृश्रन जी,  
 फिरी थी उघारी कि वाह वा ।  
 चन्दिनि होइ गगन मे पहुँची,  
 सुरपति कीन बड़ाई कि वाह वा ॥  
 भक्ति होइ संतन में पहुँची,  
 संतो ने कीन बड़ाई कि वाह वा ।  
 शुद्धि होइ पंडितन में पहुँची,  
 पंडितो ने कीन बड़ाई कि वाह वा ॥  
 कविता होइ कवियन मे पहुँची,  
 कवियो ने कीन बड़ाई कि वाह वा ।  
 दया होइ परजन मे पहुँची,  
 परजो ने कीन बड़ाई कि वाह वा ॥  
 यकमति होइ भाइन में पहुँची,  
 भाइयो ने कीन बड़ाई कि वाह वा ।



सुमा होइ ब्राह्मन में पहुँची,  
 ब्राह्मनों ने कीन बढाई कि बाह बा ॥  
 सत्य सुगन्ध समीर ले पहुँची,  
 सब जग होइ बढाई कि बाह बा ।

१५

सिंधु-तीर इस दिट्ठिहरी, वेहि को पहुँची पीर ॥  
 सो प्रन ठानी अगम अति, विचलत ना मतिपीर ॥  
 सहि प्रन राखन के लिये, छाड़ गये मुनि वीर ।  
 परमपिता को सुभिरि कै, सोखेज जलधि गँभीर ॥




---

ॐ यह पद रानी साहबा ने ११ & ११२२ को आमती कस्तूरीबाई  
 गांधी को पत्र लिखते समय लिखा था ।

## राजरानी देवी

**श्री**मती राजरानी देवी का जन्म नरसिंहपुर ( मध्य-प्रदेश ) जिले के अन्तर्गत पिपरिया ग्राम में अगस्त सं० १९२७ में हुआ था । आपके पितामह श्रीयुत लक्ष्मणप्रसाद जी कायस्थ उक्त ग्राम में आदरणीय जमींदार थे । वे ईश्वर के अनन्य भक्त तथा अपनी समाज में प्रतिष्ठित पुरुष समझे जाते थे । उनके ४ पुत्र थे और उनमें से द्वितीय पुत्र का नाम रामरत्नलाल जी था जिनके एक पुत्र तथा दो पुत्रियाँ थी । इन्हीं रामरत्नलाल जी की कनिष्ठ पुत्री श्रीमती राजरानी देवी जी हैं । बाल्यकाल से ही आपका स्वभाव सरल, नम्र तथा धैर्यवान् रहा है । हृदय में दयालुता ने विशेष स्थान पाया है ।

पूर्व प्रथानुसार आपका विवाह १३ वर्ष की अवस्था में नरसिंहपुर-निवासी श्रीयुत शोभाराम जी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद जी से साथ सं० १९४० में हुआ था । आपके ससुराल-गृह में आने के समय श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद जी अंग्रेजी विद्याध्ययन करते थे । संवत् १९८० में एकस्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर के पद से पेन्शन प्राप्त कर वे अब शान्ति पूर्वक जीवन-यापन करते हैं । सरकार सदैव ही इनकी कार्य-शैली की प्रशंसा करती रही है । उस प्रशंसा का अधिक भ्रय इनकी

श्रीमता राजारानी देवी जी को है जो समय समय पर अपने पति को उचित सलाह देती रहा है ।

स्त्री-समाज का दुदरा पर आपको सदैव ही अधिक ध्यान रहा है । समय समय पर अनेक स्थानों पर जहाँ आपको रहने का अवसर मिला है, हिन्दू समाज की स्त्रियों को आप सदैव ही, उचित सलाह देती रही हैं । यद्यपि आपके पति के उच्चपदाधिकारी होने के कारण आपके स्वभाव में अधिक परिवर्तन होने की सम्भावना थी किन्तु आप सदैव ही सरल स्वभावा रही हैं तथा अपने से हीन से हीन स्त्रियों से भी मिलने बात करने तथा समयानुसार उचित सलाह देने में सकोच नहीं किया । इसी कारण अन्य लोगों में इनके स्वभाव और बर्ताव का सदैव प्रशंसा रही है । स्थान स्थान पर आप कई नारी-अस्थाधों का समानेत्री रही हैं ।

आपके १ पुत्र तथा ४ कन्याएँ हैं जिनका कालन-पालन आपने बड़ी योग्यता तथा मुशिक्षा से किया है । हिन्दी के प्रतिष्ठित नरयुवक कवि श्री० रामकुमार वर्मा कुमार आपके छठे पुत्र हैं । आपको अगाध तथा हिन्दी से अधिक अनुराग था । मासिक पत्र-पत्रिकाओं में आप कभी कभी कविताएँ भी लिखा करती थीं । आपकी मृत्यु स० १९८२ में हो गयी । आपने 'अमदा प्रमोद और सती-सयुक्ता' नामक पद्य की पुस्तकें भी लिखी हैं । आपने विद्यागिनी नाम से भी कई पत्रिकाओं में श्रुत रचनाएँ प्रकाशित कराई थीं । हम आपकी एक श्रुत और 'सती-स युक्ता' नामक पुस्तक से कुछ रचनाएँ नीचे देने हैं :—

१

## उन्मादिनी

विषम प्रभञ्जन के प्रकोप से, बिखरेंगे जब केश-कलाप ।  
 ज्योत्स्नानल के प्रखर ताप से, मन मे जब होगा सन्ताप ॥  
 मधुर अरुणिमा रहित बनेंगे, शुष्क कपोल आप ही आप ।  
 जब धरणी की ओर देख कर, रह जाऊँगी मैं चुपचाप ॥  
 तब क्या बनमाली आकर दुख-नद से मुझे उबारेंगे ।  
 अपने कोमल हाथों से मृदु, अलकावली सुधारेंगे ॥  
 मुरली की मृदु तान छेड़ कर, शान्ति-सुधा बरसावेंगे ।  
 शुष्क कण्ठ से कण्ठ मिला कर, कोमल-ध्वनि से गावेंगे ॥

+

+

+

भ्रम है मुझे, ललित लतिका को, समझ न जाऊँ मैं बनमाल ।  
 कृष्ण समझ कर बड़े प्रेम से, चूम न लूँ मैं कही तमाल ॥

२

देवियो ! क्या पतन अपना देख कर,  
 नेत्र से आँसू निकलते हैं नहीं ?  
 भाग्यहीना क्या स्वयं को लेख कर,  
 पाप से कलुषित हृदय जलते नहीं ?  
 क्या तुम्हारी वदन-श्री सब खो गई,  
 उच्च—गौरव का नहीं कुछ ध्यान है ?

क्या तुम्हारी आज अवनति हो गई ?

क्या सहायक भी नहीं भगवान है ?  
हो रहे क्यों भीष्म—अत्याचार हैं,

इस तुम्हारे फूल से मृदु गात पर ?  
मच रहे क्यों आज हाहाकार हैं,

अब नृशरों के महा उत्पात पर ?  
क्या न अब दुष्ट देश का अभिमान है ?

लो गई सुप्रमय सभी स्वाधीनता !  
हो रहा कितना अधिक अपमान है,

स—सुख इसको कौन सकता है बता ?  
नय-हरिद्रा रग-रजित अग में,

सर्वदा सुप्त में तुम्हीं लबलीन हो ।  
प्रस्थि-बन्धन के अनूप प्रसंग में,

दूसरे हा के सदा आधीन हो ॥  
बस, तुम्हारे हेतु इस ससार में,

पथ—प्रदर्शक अब न होना चाहिये ।  
सोच लो, ससार के कान्तार में,

बढ़ होकर यदि जिये तो क्या जिये ?  
कम के स्वच्छन्द सुप्रमय क्षेत्र में,

किङ्किणी के साथ भी तलवार हो ।

शौर्य हो चञ्चल तुम्हारे नेत्र में,  
 सरलता का अंग पर मृदु भार हो ।  
 सुखद पतिव्रत-धर्म-रथ पर तुम चढ़ो,  
 बुद्धि ही चञ्चल अनूप तुरंग हो ।  
 दिव्य जीवन के समर मे तुम लड़ो,  
 शत्रु के प्रण शीघ्र ही सब भंग हो ।  
 हार पहिनो तो विजय का हार हो,  
 दुन्दुभी यश की दिगन्तो मे बजे ।  
 हार हो तो बस यही व्यवहार हो,  
 तन चिता पर नाश होने को सजे ॥  
 मुक्त फणियों के सदृश कच—जाल हो,  
 कामियों को शीघ्र डसने के लिये ।  
 अरुणिमायुत हाथ उनके काल हो,  
 सत्य का अस्तित्व रखने के लिये ॥

### वंश-परिचय

भव्य भारत-भूमि की स्वाधीनता,  
 जब यवन से पद दलित थी हो चुकी ।  
 दीखती सर्वत्र थी अति दीनता,  
 फूट की विष-वेलि भी थी वो चुकी ॥  
 पूर्व यश की क्षीण स्मृति ही शेष थी,  
 वीरता केवल कहानी ही रही ।

वधुओं में वधुता निररोप थी,  
 दमन की परिपूर्णा धारा थी वही ॥  
 शत्रुओं को दण्ड देने के लिये,  
 आर्घ्य शोणित में न इतनी शक्ति थी ।  
 वीरता का नाम लेने के लिये,  
 ध्यान के सौन्दर्य पर ही भक्ति थी ॥  
 ललित ललनाएँ धनी सुकुमार थीं,  
 अङ्ग पर अभूषणों का भार था ।  
 रत्न-हारों पर समुद्र बलिहार थीं,  
 सेज ही ससार का सब सार था ॥  
 नेत्र लड़ना ही सुप्रद रण-रत्न था,  
 चारु चितवन ही अनोखा सीर था ।  
 क्यों न हों ? जब प्रियतमों का सङ्ग था,  
 प्रियतमाओं-युक्त हिन्दू वीर था ॥  
 नेत्र-भोपन कर चिबुक चुम्बन जहाँ,  
 प्रेम की विधि का अनूप विधान है ।  
 मारु मू के त्राण की गाथा वहाँ,  
 पापियों के पुण्य-गान समान है ॥  
 किङ्किणी की नाद अस्ति मञ्जार है,  
 भ्र-वपनता है ललित कौशल जहाँ ।

वीर रस होता जहाँ शृंगार है,  
 देश-गौरव की शिथिलता है वहाँ ॥  
 शुद्ध केसरिया वसन को छोड़कर,  
 राजसी वैभव जहाँ पर आ गया ।  
 जान लेना वीर पुरुषों में उधर,  
 शोक का आतङ्क निश्चय छा गया ॥  
 बाल रवि के क्षीण अरुण प्रकाश में,  
 तारको की मालिका जिस भाँति हो ।  
 यवन-रवि-युत हिन्द के आकाश में,  
 ठीक वैसी आर्य नृप की पाँति हो ।  
 किन्तु ऊषा की अरुणिमा में कभी,  
 एक दो तारे चमकते हैं कही—  
 इस तरह जब तेज-हत थे नृप सभी,  
 तब बली थे एक दो नरपति कहीं ॥  
 एक श्री राठौर नृप जयचन्द थे,  
 राजधानी थी बनी कन्नौज में ।  
 सत्य-व्रत में यदपि वे अति मन्द थे,  
 किन्तु रक्षित थे समर के ओज में ॥  
 दूसरे चौहान पृथ्वीराज थे,  
 वे स-मुद दिल्ली निवासी थे बने ।



वीर-तारों में वही द्विजराज थे,  
 आर्य वीरोचित मुखों में थे मने ॥  
 वीर पृथ्वीराज अति गभीर थे,  
 शान्ति से नृप-कार्य करते थे सदा ।  
 किन्तु श्री राठौर (यद्यपि वीर थे) ।  
 किन्तु जलते थे हृदय में सर्वदा ॥  
 वे सदा ऐश्वर्य के अभिमान में,  
 नीच ठहराते चतुर बौद्धान को ।  
 वे स्वयं अपने गुणों के गान में,  
 तुच्छ गिनते दूसरों के मान को ॥  
 मित्रता-वधन उड़ाने तोड़कर  
 शत्रुता की नींव निश्चय डाल दी ।  
 ऐश्वर्य से मुरझा सर्वदा को मोड़कर,  
 मातृभू परतत्रता में डाल दी ॥  
 इस तरह भय भूरि दोनों वश में,  
 हा ! दिनोंदिन शीघ्र ही बढ़ने लगा ।  
 गगन मंडल-मध्य ऊँचे अंश में,  
 यवन दिनकर शीघ्र ही चढ़ने लगा ॥  
 आर्य-दल का शौर्य ठहा पड़ गया,  
 यवन दल में बढ़ चली कुट्ट वीरता ।

हास से यह देश हाय ! पिछड़ गया,  
 आज भी इतिहास देता है पता ॥  
 हाय ! कैसे फूट थी इस देश में,  
 हो गया कैसे महा अपकर्ष है ।  
 दीनता दिखती हमारे वेष में,  
 यह इसीका क्रान्तिमय निष्कर्ष है ।  
 हे विधाता ! आर्य का वर-वंश क्या,  
 जयति के पद से पतित हो जायगा ।  
 हाय ! वह हो जायगा बिभ्वस क्या ?  
 क्या महागौरव सभी खो जायगा ?  
 दैव ! भारत का पतन जैसे हुआ,  
 पतित वैसा हो न अरि का देश भी ।  
 भाग्य परिवर्तन महा ऐसा हुआ,  
 नाम दिखता आज है विश्वेश भी ॥  
 कुमारी संयुक्ता  
 हो रहा कन्नौज मे आनद है,  
 हर्ष की धारा नगर में है बही ।  
 वैर और विरोध विलकुल वन्द हैं,  
 सर्व जनता आज हर्षित हो रही ॥  
 भीड़ भारी हो रही प्रासाद मे,  
 खुल गया है द्वार सारे कोष का ।

नर तथा नारी हुए उन्माद में,  
 गूँज उठता शब्द ऊँचे घोष का ॥  
 नारियों सब चली पड़ी शृंगार कर,  
 राज्य-गृह की ओर अनुपम हर्ष से ।  
 मधुरिमा-मय सुखद जय जयकार कर,  
 हृदय के आनन्द के उत्कर्ष से ॥  
 थालियों में फूल मालाए सजीं,  
 गीत गा गा कर चलीं सुकमारियों ।  
 हाव भावों में स्वयम् रति को लजा,  
 मन सहित कच बाँध सुन्दर नारियों ॥  
 मुग्ध मुग्धाएँ चलीं धीमा सहित,  
 शीघ्र सकुचा कर पुरुष की दृष्टि से ।  
 मदगति से वे चलीं क्रीड़ा सहित,  
 नेत्र चञ्चल कर सुमन की वृष्टि से ॥  
 या बड़े आनन्द का कारण वही,  
 एक पुत्री भी हुई जयचन्द के ।  
 हर्ष से भी उमँगती सारी मही,  
 आ गये थे दिन अधिक आनन्द के ॥  
 दल उसकी छवि अनूप सुधामयी,  
 ये चकित सब व्यक्ति नगरा के महा ।

सोचते थे हृदय में पुरजन कई,  
 रूप ऐसा मानवों में है कहीं ?  
 चन्द्रमा का सार मानो भर दिया,  
 बालिका की नवल सुंदर देह में ।  
 स्वयं श्री ने वास मानो कर लिया,  
 सरल उसके कान्तिमय मुख-गेह में ॥  
 नेत्र मानो दो रुचिर राजीव थे,  
 जो रखे हो चन्द्रमा के अंक में ।  
 अङ्ग मानो सुमन-पुञ्ज सजीव थे,  
 जो सजे हो छवि सहित पर्यंक में ॥  
 जिस किसीकी आंख उस पर पड़ गई,  
 देखते ही देखते दिन बीतता ।  
 वस, उसी के हृदय पर थी चढ़ गई,  
 बालिका के रूप की लोनी लता ॥  
 चारु चुम्बन से सदन था गूँजता,  
 स-मुद राका रुचिर हास्य-विलास था ।  
 कौन उनके हर्ष को सकता बता,  
 जननि का उपमा-रहित उल्लास था ॥  
 रुचिर मणिमय पालने की सेज पर,  
 बालिका कर-कञ्ज मञ्जु उछालती ।

तब जननि लखती उसे थी ओंछ भर,  
 बार बार दुलार कर पुचकारती ॥  
 बालिका को गोद माँ लेती कभी,  
 प्रेम से उसका हृदय था फूलता ।  
 छवि मनोहर देख पड़ती थी तभी,  
 हेम-लतिका में सुमन ज्यों मूलता ॥  
 इस तरह सुख में दिवस थे जा रहे,  
 शान्ति रस मानों सदन में था चुभा ।  
 हृदय में सुख-स्रोत थे अविरल बहे,  
 वह सदन बस स्वर्ग का उपवन हुआ ॥  
 पुरजनों को जान पड़ता था यही,  
 बालिका से चन्द्र-मुख फाला हुआ ।  
 उस सुता मुख-दीप से सर्वत्र ही,  
 ज्योतिमय सुख-पूर्ण उजियाला हुआ ॥  
 हृदय सुख के गीत गाता ही रहे,  
 टूट जावें सब दुष्टों के जाल भी ।  
 शान्ति का धारा बहाता ही रहे,  
 स्नेहमय प्रत्येक माँ का लाल भी ॥  
 ( 'कुमारी सयुक्ता' से )

## सरस्वती देवी

**श्री**मती सरस्वती देवी का जन्म पौष-कृष्ण २ सं० १६३३ ग्राम कोइरियापार जिला आज़मगढ़ में हुआ था। आप के पिता पं० रामचरित त्रिपाठी स्वयं एक अच्छे कवि थे। आप महाराज राधाप्रसाद सिंह के सी. एस. आई. दुमराँव के राजकवि थे। त्रिपाठी जी की मृत्यु अकस्मात् ४६ वर्ष की अवस्था में संवत् १६२० में वैशाख में हो गई। श्रीमतीजी की शिक्षा का प्रबन्ध इनके पिता ने स्वयं घर पर ही किया था। इनको पूरी शिक्षा और कविता करने की अभिरुचि इनके पिता के ही द्वारा प्राप्त हुई। आप अपने पिता की एक मात्र सतति होने के कारण पैतृक सपति की अधिकारिणी हैं। पहले आपने व्याकरण, कविता सम्बन्धी अनेक बातें और फिर गणित की शिक्षा प्राप्त की। इसके अनंतर बंगला, अंग्रेज़ी और संस्कृत इन्होंने अपने पिता जी से सीखी।

आपका विवाह नगवा जिला आज़मगढ़ निवासी पं० महावीरप्रसाद जी के साथ हुआ। पंडित जी वहाँ के प्रतिष्ठित ज़मींदार हैं। सरस्वती देवी जी को पति की ज़मींदारी से २) की और पैतृक ज़मींदारी से १) प्रतिदिन की आय है। इसी के द्वारा आप प्रसन्नता से जीवन व्यतीत करती हैं। आपके पाँच संताने हुई। जिसमें से एक पुत्र और एक कन्या जीवित हैं। कन्या का नाम श्रीमती विद्यावती

है। काव्य रचना अच्छी करती हैं। 'गृहलक्ष्मी' में इनके समय-समय पर लेख भी छपते हैं। श्रीमती सरस्वती देवी जी की रचनायें 'रसिक-मित्र' आदि पुराने पत्रों में छपा करती थीं।

श्रीमती सरस्वती देवी जी पुराने ढंग की कवी हैं। आप छियों की वर्तमान उच्छृंखलता और स्वतंत्रता पसन्द नहीं करतीं। आप कविता में अपना नाम "शारदा" रखती हैं। आपका "गोविन्द, व्याकरण पर भी अधिकार है। आपने हिन्दी में कई पुस्तकें लिखी हैं। जिनमें 'सुन्दरी-सुपथ' 'नीति निचाह' 'शारदा-उत्तक' छप चुकी हैं। 'वनिता-वधु' प्रेस में ही छुस हो गई। 'मय-भोज' अब प्रकाशित होने वाली है। 'सन्माग प्रदर्शनी' नामक पुस्तक इनसे किसी ने लेकर छुस कर डाला। आज कल आप मैमूली राधाधीरवरी का जीवन चरित्र लिख रही हैं। मैमूली का रानी साहवा इन पर मादुबन्द प्रेम रखता है। कारण यह है कि इनक पिता प० रामचरित्र त्रिपाठी और मैमूली नरेश में बड़ी गाढ़ी मैत्री थी। आपने अपना 'सुन्दरी-सुपथ' नामक पुस्तक में अपना थाका सा परिचय इस प्रकार दिया है —

जिला जु आशमगढ अहै तामहँ एक बिधिन्न ।  
 प्राम कोइरियापार के कवि द्विज रामचरित्र ॥  
 ताकी कन्या एक मैं मूर्ति मूलता केरि ।  
 कुलवतिन-पद धूरि अस गुणवतिन की चेरि ॥  
 मम शिशुक कोठ और नहिं निज ही पिता सुजान ।  
 कठिन परिश्रम करि दियो विद्या-दान महान ॥

प्रथम पढ़ायो व्याकरण मुनि कुछ काव्य विचार ।  
 दत्तनंतर सिखयो गणित बहुरि सुरीति प्रकार ॥  
 तब कुछ उर्दू फारसी बंगला वर्ण सिखाय ।  
 कुछ अँगरेजी अक्षरन पितु मोहि दीन्ह दिखाय ॥  
 जब लग मैं मैके रही लिखत पढ़त रहि नित्त ।  
 अब घर पर परवस परी रहि नहिं सकति सुचित्त ॥  
 गृहकारज व्यवहार बहु परै सँभारन मोहिं ।  
 लिखन पढ़न इक संग ही यह सब कैसे होहि ॥  
 समाचार के पत्र जे आवत हैं मम पास ।  
 तिनके देखन के लिए मिलत न मोहिं सुपास ॥

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्रीमती सरस्वती देवी के सम्बन्ध में अपने ता० ६-१-२६ के पत्र में इस प्रकार लिखते हैं :—“श्रीमती सरस्वती देवी कविता में अपना नाम ‘शारदा’ रखती हैं। इनके पिता पंडित रामचरित्र तिवारी हमारे ज़िले के एक प्रतिष्ठित कवि थे। सरस्वती देवी जी सहृदया हैं और सरस रचनाएँ करती हैं। इनकी रचना अत्यन्त मधुर और हृदय ग्राहिणी है। ये प्राचीन आर्दश की महिला हैं और यथावकाश हिन्दी-सेवा में संलग्न रहती हैं। नागरिक जीवन न होने के कारण यद्यपि ये जैसी चाहिए वैसी ख्याति नहीं लाभ कर सकीं तो भी उनमें कविता-सवन्धी जो गुण हैं, वे आवरण्यीय हैं। इनके पति श्रीमान् पंडित महावीरप्रसाद हमारे ज़िले के एक प्रतिष्ठित ज़मींदार हैं और



कष्टमय होने पर भी अपने जीवन को आनन्द के साथ व्यतीत कर रहे हैं ।”

श्रीमता सरस्वती देवी की रचनायें अच्छी और मजबूत होती हैं । गृहस्थी के भ्रमों में पड़ी रहने के कारण ये आज कल कविता नहीं लिखती हैं । हम इनकी कुछ रचनायें नीचे उद्धृत करते हैं —

१

धन्य नवल विधवन समाज सतन दल मण्डल ।  
 धन्य विधवपन प्रसन्नचर्य्य धनि दण्ड कमण्डल ॥  
 धन्य धरम उपदेस मातु कति बचन सुनैवो ।  
 धन्य दिपावन हाथ सती बनि मौत मनैवो ॥  
 धनि जगन्नाथ मधुरागमन, बालू बालक होंपनो ।  
 धनि तीरथ सोय चढाइ के, 'शारद' शिव शिव जापनो ॥  
 देखेहँ सुनउँ अनेक पथ साधू वैरागी ।  
 जानि जोगिया सिद्ध लालसा दर्शन लागी ॥  
 पै न लगत अ-दाज कौन हुम काज कियो है ।  
 कासन भयउ विराग कौन सुख त्याग दियो है ॥  
 धन घाम तयो किहि कारने घर घर मोंगव खात क्यों ।  
 'शारद' गृह को गारत कियो, पर हिय लख ललचात क्यों ॥  
 दासहि भरत प्रबोध दृष्टि दासी सुख ओरा ।  
 झोंड़हु दपति सोच तपोबल देखहु मोरा ॥

काह भयो तुव वृद्ध भये घरनी तरुनी है ।  
 तुमहुँ सहज सतभाव विदित इनकी करनी है ॥  
 हम सन्तन चरन-प्रसाद सो अद्भुत बालक पाइहौं ।  
 यहि मम उपदेश इकन्त को 'शारद' बिसरि न जाइहौं ॥  
 प्रात समय अनमोल वीतिगो वनन ठनन में ।  
 जुगल याम लै लीन्ह चेलियाँ भोग-लगन मे ॥  
 पिता, पुत्र, पति अभय देव-दर्शन के भरे ।  
 पहुँचत मन्दिर-द्वार उड़न लागे गुलछर्रे ॥  
 सेवक दरबारी हूँ खड़े दर्शक जान न पावही ।  
 'शारद' यहि भौँति महंतजू नित नव ध्यान लगावहीं ॥  
 जगत सृष्टि करता ललाट आड़े सिर जायो ।  
 भसम त्रिपुण्ड्र बताय रेख आड़ी निरमायो ॥  
 ताहि दुरावत ठानि पतित पण्डित बनि न्यारे ।  
 लीक बड़न की तजत लाज नहि लजत गँवारे ॥  
 'शारद' अरीति अनरीति में जे नहि पशु पहिचानते ।  
 तिनके हित सींग बनावही उर्ध्व मुण्ड मनमानते ॥  
 निपटि गयो तकसीम आचरज लोगन केरो ।  
 आतम दास कुम्हार लियो पछताव घनेरो ॥  
 सीख अधर परयंत ठाँव उबख्यो नहि बीचे ।  
 होत बड़ो परिहास बड़ै उत्तरैं यदि नीचे ॥  
 हम अगल-वगल रँग वह भरैं नम्बर उदय न अस्त को ।

कोठ बहुरि न चेत चढाइ है 'शारद' बन्दोवस्त को ॥  
(अप्राप्य 'सन्मार्ग-प्रदर्शिनी' से)

२

नैन कजरारे कोर वारे धनु भौंह तान,  
मारत निसक वान नेकु न डरत हैं ।  
बेसर बिसेस बेसकीमत जडाऊ देखि,  
हारन समेत तारापति हहरत हैं ॥  
अघर कपोल दूत नासिका बखानों कहा,  
केश की सुबेरा लखि शेष कहन हैं ।  
श्रीफल कठोर चक्रवाक से निहार तेरे,  
उरज अमोल गोल घायल करत हैं ॥

३

ऐसी नहीं हम खेलनहार बिना रस-रीति करें बरजोरी ।  
चाहै तजौं तजि मान कहौ फिरि जाहिं घरे वृषभानु किराोरी ॥  
बूक भई हमसे तो दया करि नेकु लखो सखियान की ओरी ।  
ठाढ़ी अहैं मन मारि सबैं दिन तोहिं बने नहिं खेलत होरी ॥

४

ऊधव जाइ कहौ उनसों पठई पतिया जिन युक्ति भरी है ।  
ज्ञानी वही जग-जाहिर हैं जिनसों नहिं गाइन हूँ धरौ हैं ॥  
साधन जोग स्वतंत्र समाधि विरक्त अली जग सों कुत्ररी है ।  
ये प्रजवाळ विहाल महान वियोग की मारु प्रचट परी है ॥

५

**स्त्री-शिक्षा**

सज्जन सम्बन्धी जे सुपति के तिहारे होहिं,  
 तिन्हें अपनाओ चतुराई लिये हाथ में ।  
 नम्रता बड़न मोंहि मित्रता सुनारिन सो,  
 शत्रु-भाव राखिये कुनारिन के साथ में ॥  
 भाखिये सुवैन दास-दासिन सो प्रेम-संग,  
 धारिये सुध्यान सदा शुभ गुण-गाथ में ।  
 सारिये सकल गृह-काज सुघराई साथ,  
 वारिये पवित्र प्रीति पति प्राणनाथ मे ॥

६

राखहिं कुटिल स्वभाव सो, वैर भाव जो कोय ।  
 तुम उन पर मत ध्यान दो, आपुहि लजिहैं सोय ॥  
 बिन बिसात अनुसार ही, कार करहु करि गौर ।  
 लहौ जात सुख भोग बहु, बनहु यशी सब ठौर ॥  
 प्रथम कारयारम्भ में, सब की सम्मति लेहु ।  
 निज विचार पति आदि पर, तुरत प्रगट करि देहु ॥  
 जे तिय बाहर चित्त के, करहिं कार हठ-ठानि ।  
 ऋण के भार दवाहि ते, अन्त होति है हानि ॥  
 नहिं निर्विघ्न समाप्त हो, यिन बाहर के काज ।  
 पुनि अनन्त दुख होत है, अन्त लागत है व्याज ॥

जो रुपया पैसा तुम्हें, मिलै सुखचैन अर्थ ।  
 राखहु ताहि सँभारि कै, फेकहु नाहि अनर्थ ॥  
 लघु व्यय जहँ लग हो सकै, करि सुधराई साथ ।  
 रखहु ध्यान यहि बात पर, बढ होहि नहि हाथ ॥  
 मोर मनोरथ यह नहीं, निपट कृपण होइ जाहु ।  
 बनहु सूख घर की सुता, निन्दनीय कहलाहु ॥  
 घरहु इकट्ठहि पास में, सौदा-सुलुह भँगाय ।  
 खर्चहु अपने हाथ सों, जिहि बिन बिगरो जाय ॥  
 करहु नियम यहि बात को, घरहु द्रव्य कछु पास ।  
 जासों खर्चन के समय, परहु न निपट निरास ॥  
 जो खर्चहु निज हाथ सों, लिखौ सुख्यारेवार ।  
 जब हिसाब कोउ लेन बह, दत्त न लागै बार ॥  
 महत काज साधन चहौ, थोरे व्यय के द्वार ।  
 तासु यतन मृदु बचन है, करहु स्ववश ससार ॥

❀

❀

❀

दुर्लभ समय अमोघ व्यर्थ मत खोबहु प्यारी ।  
 शर्पा द्वेष बलह कुकर्म तजि होहु सुप्यारी ॥  
 हस्त क्रिया महँ निपुण होहु करिके श्रम भारी ।  
 सूचीकारी आदि जानि अति ही हितकारी ॥

यहु हुनर सीपि सुसयानि है, सुयश सहित मुख पावहु ।  
 जासा असमय मँह पाहु सों निज दुख नाहि सुनावहु ॥

भूषण दुचार एक बार एक ठौर पैन्ह,

पैन्हहु सुजानि यामै हानि अति भारी है ।❀

धुँधुरू औ माँझ आदि वजनो विशेष छड़े,

छमा छम शब्द जासो सब गुन जारी है ॥

ध्यान हू न होय जाको तब प्रति ताकी दीठि,

फेरिवे की पूरी अधिकारी मलकारी है ।

करहु कदापि अंगीकार ये सिंगार नाहि,

पतिव्रत धारी सुनौ विनय हमारी है ॥

❀

❀

❀

नारी धर्म अनेक हैं, कहौ कहाँ लगि सोय ।

करहु सुबुद्धि विचारते, तजहु जु अनुचित होय ॥

हानि लाभ निज साँचि कै, काजहिं होहु प्रवृत्त ।

- सुख पायहु तिहुँ लोक मे, यश बाढ़ै नित नित ॥




---

❀ श्रीमती जी की यह शिक्षा पुरानी है । आजकल की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इस तरह के उपदेश सुनने को तैयार नहीं हैं ।

## बुन्देलावाला

**श्री**मती बुन्देलावाला का जन्म कायस्थकुल में सम्वत् १८४०

विक्रमीय में गान्धीपुर के शादियानाद नामक कस्बे में हुआ था। आप के पिता ओयुन परमेश्वरदास जी गोरखपुर के मुहम्मद शकी नामक जमादार के यहाँ मुस्लिम थे। आप छत तक उक्त जमींदार महाराज के यहाँ ही काम करते रहे। आपने बुन्देलावाला जी को छहकपन में ही हिन्दी और उर्दू की शिक्षा दी थी। पैतृक गुण के अनुसार बुन्देलावाला हिन्दी की अपेक्षा उर्दू में ही अधिक धार्यता रखती थीं। इनके चार भाई और एक बहिन थी जो अभी तक जीवित हैं। आपका असली नाम गुजराती भाई था।

आप का विवाह स० १८६० विक्रमीय में बीस वर्ष की अवस्था में हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी के साथ हुआ था। उस समय 'दीन जी छतरपुर में रहते थे। इनकी दूर व्याह होने का कारण यह है कि जब इनके पिता को कई वर्षों तक ढूँढ़ने पर भी कोई योग्य पति नहीं मिला तब उन्होंने बुन्देलावाला जी के मामू महाराज के पास छतरपुर में एक घर ढूँढ़ने के लिये पत्र लिखा। उनके मामू महाराज खेम उपनाम से कविता किया करते थे। दीन जी से उनकी जान-पहिचान थी। उस समय दीन जी की प्रथम पत्नी का स्वर्गनाम हो गया था। उन्होंने दीन जी से बुन्देलावाला

में भी आप बड़ी दृढ़ थीं। सम्यक् १९६६ में छब्बीस वर्ष की अवस्था में आप के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र-उत्पन्न होने के पूर्व आप पिता के घर चली आई थी। वहाँ पर आप को अतिसार हो गया और अपने आठ नौ मास के बालक को छोड़ कर स्वर्ग सिधार गईं। वह बालक भी कुछ दिनों के बाद चल बसा।

बुन्देलावाला जी की मृत्यु बहुत थोड़ी ही उम्र में हो गई। वे 'विधवा-विलाप' नामक कविता लिखने के बाद बहुत प्रसिद्ध हो गईं थी। आप की कविताओं को लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। यदि आप अब तक जीती होती तो आपने हिन्दी का बहुत कुछ उपकार किया होता। अपने पति के साहित्यिक कामों में भी अच्छा हाथ बँटाया होता। आपकी कुछ रचनाएँ हम नीचे उद्धृत करते हैं.—

१

चाहिये ऐसे बालक !

परशुराम श्रीराम भीम अर्जुन उद्दालक ।  
 गौतम शङ्कर-सरिस धर्म सत् के सञ्चालक ॥  
 उत्साही दृढ़ अङ्ग प्रतिज्ञा के प्रतिपालक ।  
 शारीरिक मस्तिष्क शक्ति-बल अरिगण-घालक ॥  
 काज करें मन लाय, वनै शत्रु न उर शालक ।  
 अब भारत माताहिं चाहिए ऐसे बालक ॥  
 दुर्बल अरु भयभीत सदा जो कहत पुकारी ।  
 “अरे बाप ! यह काज हमें सूक्त अति भारी” ॥



सर्वकाज करने के पहले पूँछो अपने दिल से आप ।  
 "इसका करना इस दुनिया में, पुण्य मानते हैं या पाप" ॥  
 जो उत्तर दिल देय तुम्हारा उसे समझ लो अच्छी भाँति ।  
 काज करो अनुसार उसी के नष्ट करो दुःखों की पाँति ॥  
 कभी भूल ऐसी मत करना अद्धी के लालच में आज ।  
 देना पड़े कल्ह ही तुमको रत्नमाल सम निजकुल-लाज ॥  
 युवा समय के गर्म रक्त में मत बोओ तुम ऐसा बीज ।  
 वृद्ध समय के शीत रक्त में, फूलै चिन्ता फलै कुलीज ॥  
 पश्चात्ताप कुरस नित टपकै वदनामी-गुठली दृढ़ होय ।  
 उँगली उठै बाट में लचते, मुँह भर बात न बूमै कोय ॥  
 यौवन मनु वसन्त में प्यारे कुसुम समूह देखि मत भूल ।  
 दबा २ कर युक्ति सहित रख निज उमंग के सुन्दर फूल ॥  
 सावधान ! इनको विनष्ट कर फिर पीछे पछतावेगा ।  
 वृद्ध वयस सम्मान सुगन्धित फिर कैसे महकावेगा ॥  
 परमेश्वर के न्याय-तुला की डांड़ी जग में जाहिर है ।  
 उसको ऊँच नीच कुछ करना मानव-बल से बाहर है ॥  
 अहंकार सर्वदा जगत में मुँह की खाता आया है ।  
 नय नम्रता मान पाते हैं सवने यही बताया है ॥  
 है प्रत्येक भव्यता के हित इस जग में निकृष्टता एक ।  
 विषय रूप मिष्टान्न मध्य हैं विषमय आमय-कीट अनेक ॥

जो तुम हो सौँची सखी, इतनो यश लै लेहु ।  
 मन-मतंग मानत नहीं, पीतम सों कहि देहु ॥  
 हे धनपति निज छेम हित, तुम्हें चाहिये एहु ।  
 साधु अकिंचन को सदा, भोजन हित कछु देहु ॥  
 दुहूँ लोक की छेम हित, मुख्य अहैं द्वै काज ।  
 मित्रन पर नित नेह नव, रिपु पै दया-दराज ॥  
 निर्धनता में धीर धरि, राखै मन सानद ।  
 जीवन को पारस यही, करै कुबेर अमंद ॥  
 जाको जीवन प्रेममय, सो निश्चय अमरेश ।  
 कीरति वाकी अमिट है, जागै जगत हमेश ॥  
 सीय विरह की सकल सुधि, तुव सुत रामहिं दोन ।  
 मम कारज हित पवन वर, तुमहुँ भये बल हीन ॥  
 पिय सुधि-सागर मगन है, आंसु मोति छिरकाव ।  
 पिय मन-हंसा चुनन हित, संभव कबहुँक आव ॥  
 नयनामृत इन चखन हित, तुव द्वारे की धूर ।  
 तेहि तजि, कहिये आपही, कहाँ जाउँ पिय दूर ॥  
 प्रेम और कुलकानि में भेद लीजिये जानि ।  
 फागराग सो प्रेम है, सामगान कुलकानि ॥  
 को सुरमायो बुद्धि बल, या जग को जंजाल ।  
 प्रेम-पंथ चरचा करौ, छाँड़ौ जग को ख्याल ॥

जे नर प्रेमी जनन की, हँसी करत मुसुकाय ।  
 डरपौं, उनको धर्म कहूँ, जग सरि नहिं बहि जाय ॥  
 बेंचन हित मद प्रेम को, जो पिय धरै दुकान ।  
 तो मैं निज नयनन करूँ, वा दर को दरवान ॥  
 जा तन की अंतिम दशा, है द्वै मूँठी राख ।  
 ता हित नाहक रचत जन, ऊँचे अटा भराख ॥  
 मतधरो, चोरी करो, करौ अधम सब काज ।  
 पै कृकर्म कीजै न प्रिय, धर्मनीति के काज ॥  
 सजन सलोने श्याम तें, कौन कहै यह बात ।  
 रूप-शाह है उचित नहि, प्रेमिन पै गृह-घात ॥  
 शील फांस-बश होत हैं, समझदार रिक्तवार ।  
 और भांति नहिं फँसत हैं, कोटिन करिये वार ॥  
 बड़ो आचरज जगत में, कहिये काहि सुनाय ।  
 वाही भलो दिखात है, जो चित लेय चुराय ॥  
 धीर-सहित आपत्ति सहि, किये जाव निज काज ।  
 आखिर निश्चय पाइ हौ, सर्व सुखन को साज ॥  
 तुमहिं बतावत ठीक मैं, प्रेमिन की पहिचान ।  
 दृगन-नीर बरसै तऊ, मुखड़ा रहा मुरान ॥  
 कैसी दशा वियोग की, तुमहिं कहौं समुझाय ।  
 दमयन्ती, सीता, सती, जान्यो कछौ न हाय ॥

माता—

बेटा यह पञ्जाब देश है पुण्य-भूमि सुख-शान्ति-निवास ।  
 सर्व प्रथम इस थल पर आकर किया आरियो ने निज वास ॥  
 कहीं गान-ध्वनि कहीं वेद-ध्वनि कहीं महामन्त्रों का नाद ।  
 यज्ञ फूल से रहा सुवासित यह पञ्जाब सहित आह्लाद ॥  
 इसी देश में बस के 'पोरस' ने रखा है भारत-मान ।  
 जब सम्राट सिकन्दर आकर किया चाहता था अपमान ॥  
 इससे नीचे देख पुत्र यह देश दृष्टि जो आता है ।  
 सकल बालुकामय प्रदेश यह राजस्थान कहाता है ॥  
 इसके प्रति गिरिवर पर बेटा अरु प्रत्येक नदी के तीर ।  
 देश मान हित करते आये आत्म-विसर्जन क्षत्री वीर ॥  
 कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ अमर चिन्हों के रूप ।  
 वीर कहानी राजपूतों की लिखी न होवे अमर अनूप ॥  
 क्षत्री-कुल-अवतंस वीर वर है 'प्रताप' जी का यह देश ।  
 रानी 'पद्मावती' सती ने यहीं किया है नाम विशेष ॥  
 क्षत्रीवंश-जात को चाहिये करना इसको नित्य प्रणाम ।  
 क्षत्री दल का जग में इससे सदा रहेगा रोशन नाम ॥



हिन्दी की प्रतिष्ठित तथा पुरानी पत्रिकाओं में से थी। स्त्री-समाज में इस पत्रिका का बड़ा आदर था।

श्रीमती गोपाल देवी जी के मामा श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप वी० ए० एल० एल० बी० बड़े अच्छे और प्रतिष्ठित वैद्य हैं। गोपाल देवी जी बचपन में अकसर अपने मामा के यहाँ रहा करती थीं। अनेक रोगियों की चिकित्सा इनके मामा के यहाँ हुआ करती थी। इससे इनकी भी चिकित्सा की ओर अभिरुचि हुई। इन्हें चिकित्सा-सम्बन्धी विषय से बड़ा प्रेम था, इससे बड़ी जल्दी इन्होंने अनेक वैद्यक-सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन कर डाला। यद्यपि उस समय इन्हें स्वप्न में भी इस बात का विरवास नहीं हुआ कि किसी समय इन्हें भी चिकित्सा द्वारा अपनी बहिनो की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होगा। ये पहले प्रायः अपने पास-पड़ोस के रहने वाले बच्चों की दवा करती थीं। यह अभ्यास विद्या-न्यसन के रूप में ही होता रहा। अंत में जब ये वैद्यक में खूब निपुण हो गईं तब इन्होंने प्रयाग में 'नवजीवन औपधालय' नामक एक औपधालय की स्थापना की जिसमें दवा कराने के लिए कितने ही रोगी-रोगिणी आती हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि ये बड़ी ही अनुभवी और योग्य वैद्या हैं। वैद्यक में इनकी पटुता का समाचार सुन कर श्रीमती महारानी साहया वूँदी ने भी इन्हें अपने राज्य में चिकित्सा के लिए बुलाया। उन्होंने आपको सं० १९८१ ई० में 'राजवैद्या' की उपाधि से विभूषित किया।

श्रीमती गोपाल देवी जी हिन्दीकी बड़ी पुरानी लेखिका हैं। आप

हम स्वयं मृत्यु को वश में अपने लावें ।

सब मिटें देश के रोग लोग सुख पावें ॥

हो रोग शान्ति-मय कभी न हमे निरासा ।

देखें न करुणमय कलि का क्रूर तमाशा ॥

हो स्वास्थ्य-पूर्ण तब बंधे समुन्नति-आशा ।

है यही 'राजवैद्या' की शुभ अभिलाषा ॥

हम एक एक का बहिनो हाथ बटावें ।

सब मिटें देश के रोग लोग सुख पावें ॥

२

लुक छिप धीरे धीरे देह मे दखल कियो,

यासो अंगरेजी में 'लुकोरिया' कहायो है ।

पाँव टेकि पायो नाना रूप दिखलायो तब,

रक्त, पीत आदि भाँति २ रंग लायो है ॥

मन को मलीन कियो, तन अति छीन कियो,

सन्तति-विहीन कियो, खूब ही सतायो है ।

महिला-समाज बीच स्वास्थ्य-धन लूटवे को,

मौका तकि प्रदर ने गदर मचायो है ॥

३

हुआ सवेरा जागो भैया, खड़ी पुकारे प्यारी मैया ।

सब अपने धन्धे मे लगे, पर तुम आलस ही में पगे ॥

विद्या बल धन धर्म कमाओ, भारत माँ का यश फैलावो ॥

४

आओ जी भाई आज प्रतिज्ञा करें।

मात पिता जो आछा देवें, उसको सिर माथे पर लेव ।  
 निसि दिन में करें, आओ जी भाई आज० ॥ १ ॥  
 पढ़ने लिखने में चित लावे, जिससे कभी न हमादुख पावे ।  
 अच्छे गुण अनुहरे, आओ जी भाई आज० ॥ २ ॥  
 भाई बहिन सभी मिल बैठे, दख किसी को कभी न देठें ।  
 नहीं किसी से लरें, आओ जी भाई आज० ॥ ३ ॥  
 बुरे बालकों में नहिं ऐले, भले बालकों में नित मेलें ।  
 अच्छों को अनुसरे, आओ जी भाई आज० ॥ ४ ॥  
 मिले दरिद्री दुखी कोई जो, चाहे ऊँच नीच जैसा हो,  
 उसके दुख को हरे, आओ जी भाई आज० ॥ ५ ॥  
 औरों के दुख में दुख माने, औरों के सुख में सुख जानें ।  
 ऐसा श्रुत आचरें, आओ जी भाई आज० ॥ ६ ॥

५

चमगीदड़

एक बार पशु और पक्षियों में ठग गयी लड़ाई घोर ।  
 चमगीदड़ न सोचा 'हूँगा तो जातेगा उसकी ओर' ॥  
 कई दिनों के बाद लख पड़ी उमे जीत जब पशु-दल की ।  
 आय मिला पशुओं में फौरन करने लगा बाव छल की ॥

“भाई ! मैं भी तुम में से हूँ पशु के मुक्त में सब लक्षण ।  
 पशुओं से मिलते हैं मेरे रहन सहन भोजन भक्षण ॥  
 दाँत हमारे पशुओं के से मादा व्याती वच्चों को ।  
 सब पशुओं के ही समान वह दूध पिलाती वच्चों को ॥  
 सुन उसकी बातें पशुओं ने अपने दल में मिला लिया ।  
 अगले दिन पक्षी-दल ने पशुओं पर भारी विजय किया ॥  
 उसी समय पक्षी-सेना ने चमगीदड़ को पकड़ लिया ।  
 घबड़ा कर चमगीदड़ ने पक्षी-नायक से विनय किया ॥  
 “आप हमारे राजा हैं, हम भी पक्षी कहलाते हैं ।  
 फिर क्यों हम अपने ही दल से वृथा सताये जाते हैं ॥  
 देखो पंख हमारे, हम उड़ते हैं, पेड़ों पर रहते ।  
 हाय आज झूठी शंका-वश अपने दल में दुख सहते ॥”  
 सुन चमगीदड़ की बातें पक्षी-नायक ने छोड़ दिया ।  
 जान बची चमगीदड़ की तब उसने जय-जय-कार किया ॥  
 हुई लड़ाई अन्त, अन्त में सुलह हुई दोनों दल में ।  
 भेद खुला चमगीदड़ का सारा सब लोगो में पल में ॥  
 तब से वह ऐसा शर्माया दिन में नहीं निकलता है ।  
 अन्धेरे में छिप कर चरता नहीं किसी के मिलता है ॥  
 समय पड़े जो दोनों दल की करते हैं ‘हों जी, हों जी’ ।  
 वे चमगीदड़ के समान दोनों की सहते नाराजी ॥



६

## भड और भेडिया

नदी किनारे भेड खड़ी एक सुख से पीती थी पानी ।  
 एक भेडिये ने लख उसको मन में पाप-बुद्ध ठानी ॥  
 बिना किसी अपराध भला मैं इसका कैसे करूँ हनन ।  
 उसे मारने को वह जी में लगा सोचने नया यत्न ॥  
 कर विचार आकर समीप यों बोला कपट भरी बानी ।  
 “अरी भेड तू बड़ी दुष्ट है क्यों करती गँदला पानी ॥”  
 क्रोध भरी लख आँख विचारी भेड रही दुक वहाँ सहम ।  
 बोली, “क्यों अपराध लगाव हो चिन-लाव नहीं रहम ॥  
 मैं तो पीता हूँ पानी तुम से नीचे की ओर ।  
 भला कहीं होती भा होगी जल की चलती दौर” ॥१॥  
 सुन कर उसक वचन भेडिया फिर बोला उससे ऐसे—  
 “पारसाल उस पेड तने तून दी थी गाली कैसे ?”  
 डर कर भेड विनय से वाली मन में उसको शालिम जान ।  
 “मैं तो आठ महीने की भी नहीं हुई हूँ, कृपानिधान ॥” ॥  
 “कहाँ तलक तेरे अपराधों को दुष्टा मैं कहा करूँ ।  
 तू करती है वहस वृथा मैं मूर्ख कहाँ तक सदा करूँ ॥  
 तू ११ सदी तरी मॉ होगा,” यों कह कर वह मूक पड़ा ।  
 भेड विचारी निरपराध को तुरत खा गया खड़ा खड़ा ॥

जो जालिम होता है उससे बस नहीं चला रह।  
करने को वह जुल्म बहाने लेता दूँद अनेक ॥

७

### धोबी और गधा

किसी एक धोबी ने कपड़े ले आने ले जाने को।  
एक गधा पाला, पर उसको देता थोड़ा खाने को ॥  
एक बार धोबी कपड़े धो चला घाट से आता था।  
कपड़ों से गद्दे को उसने घुरी तरह से लादा था ॥  
पड़ता था रास्ते में जगल वहाँ लुटेरे दाम धो।  
हर से होश उड़े धोबी के और रोगटे हुए गद्दे ॥  
कहा गधे से, "अब, भाग चल, देव, लुटेरे आवेंगे।  
मारें पीटेंगे मुझको वे तुम्हें छीन ले जावेंगे ॥"  
कहा गधे ने धोबी से तब "मुझे छीन वे क्या लेंगे?"  
धोबी बोला, "बड़ी बड़ी गठरी तुम्हें पर वे लावेंगे ॥"  
कहा गधे ने, "दया करो मत उनसे मुझे बचाने को।  
नहीं नेक भी चिन्ता मुझको उनसे पकड़े जाने को ॥"  
'मेरे लिये एकसा ही है, जहाँ कहीं भी जाऊँगा।  
वहाँ लदेगा बोक बहुत, औ थोड़ा भोजन पाऊँगा ॥'  
"मुझे आपके पास अधिक कुछ भी सुख की आशा होती।  
संग तुम्हारे तो अवश्य रहने की अभिलाषा होती ॥"

## रमा देवी

**श्री**मती रमा देवी का जन्म संवत् १६४० में प्रयाग में हुआ ।

आपके पिता का नाम पं० रामाधीन दुबे और माता का नाम कौशिल्या देवी था । आपके पिता कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । पं० रामाधीन दुबे एक अच्छे इजीनियर थे । ये पैकोली जिला रायबरेली के रहने वाले थे । श्रीमती जी को विद्याभ्यास घर पर ही कराया गया । बाल्यकाल में मिसेज़ ग्राइवो नामक एक ईसाई महिला द्वारा आपको शिक्षा प्राप्त हुई । आप अपनी पिता की चौथी सतान हैं ।

आपका विवाह ८ वर्ष की अवस्था में पं० ललिताप्रसाद त्रिपाठी के पुत्र पं० चन्द्रिकाप्रसाद तिवारी से प्रयाग के निहालपुर गाँव में हुआ । ससुराल जाने के बाद भी आप उक्त मेम साहब से सिलाई और संतान-पालन-विधि आदि अनेक महिलोपयोगी कार्य सीखती रहीं । आपने दस वर्ष तक उक्त मेम साहब से शिक्षा प्राप्त की ।

पंजाब से मुंशी रोशनलाल की धर्मपत्नी श्रीमती हर देवी 'भारत-भगिनी' नाम की पत्रिका निकालती थीं । वे श्रीमती रमा देवी को प्रोत्साहन दिया करती थीं । इससे ये कविता भी थोड़ा-थोड़ा लिखने लगीं । पहले ये मामूली गाने-बजाने के भजन आदि बनाया करती थीं । अनेक दिनों के अभ्यास और कविता-प्रेम से ये अच्छी कविता लिखने लगी । कुछ दिन बाद ये कानपुर के प्रसिद्ध पत्र 'रसिक-मित्र' में समस्या-पूर्तियाँ छपवाने लगीं । फिर 'भारत-भगिनी' 'स्वदेश-बांधव'

‘मर्यादा’ ‘प्रियवदा’ और ‘जाह्ला’ आदि पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कविता प्रकाशित होने लगी ।

प्याह हो जाने पर अब इनकी सास का देहान्त हो गया तब घर का सारा भार इनके ऊपर पड़ा । इनके दम्प सम्माने हैं । सात पुत्र और तीन पुत्री । इनकी खेप पुत्री हिन्दी का प्रेमिका हैं । उनका नाम परोक्षता देवा है । इन्होंने सुमित्रा नामक एक बगला पुस्तक का अनुवाद किया है । कुछ दिन प्रयाग का वाय्वेड कालेज में अध्यापिका भी रह चुकी हैं । धामती रमा देवा ने ‘अमला पुष्कर और ‘रमा विनोद’ नामक प्रकाशित और कई अप्रकाशित पुस्तकें लिखी हैं जो अच्छी हैं ।

आप कल आप बाल-बच्चों के बालन-पोषण के क्लक में पढ़कर कविता बहुत कम लिखती हैं । आप पुराने ढंग की आ हैं, इमलिप पत्र-पत्रिकाओं में बहुधा लिखना पसंद नहीं करतीं ।

राजापुर बाँदा निवासा प० हनुमानदीन मिश्र आपका बहुत मानने थे । वे इन्हें कभी कभी उपदेश और कविता-सम्बन्धी इसलाह दिया करते थे । श्रीमता जी की कविता अच्छी जाती है । समस्या-पूर्तियाँ सुन्दर करती हैं । भाषा प्रब और खड़ी बोना लिखती हैं । इस समय आपका अवस्था ३१ वर्ष का है । आपका कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं —

१

स्याम के नैन निहारत ही सभी सौँची कहीं जिय होत अधोर है ।  
कीर्ण सुधाकर में धन धूमत बन्द नहीं बरसावत नीर है ॥

कीधौ गयो छलि मीन प्रवीन सो प्रेम-पयोधर जानि गँभीर है ।  
 भौंह 'रमा' रतिनायक के धनु ताकन मे वरसावत तीर है ॥

२

घन-रहित नभ-नील प्रगटे धौ सखी शृंगार है ।  
 रेख केशर की सरी भ्रूशीलता की भार है ॥  
 चंद्र चंदन चंद्रिका की दामिनी द्युति जालिमा ।  
 बाल दिनकर भाल रोरी की मनोहर लालिमा ॥  
 मैं थकी छवि देख कर धौ आजु मारुत धीर है ।  
 देखु आली छवि निराली आज जमुना तीर है ॥  
 दो पुरन्दर चाप सुन्दर भावनी भ्रू-वंकता ।  
 धौ निसाकर नीलघन-युत दिव्य लोचन लोलता ॥  
 धौ य छवि शृंगार है आगार अमृत के भरे ।  
 तान सुन कर बाँसुरी की रूप लोचन का धरे ॥  
 है निशाकर या दिवाकर ने किया रथ धीर है ।  
 देखु आली छवि निराली आज जमुना तीर है ॥  
 नवल नीरज नील जल पै धीर निरखन की छटा ।  
 धौ सखी मृदु बाल ससि पै साँवरी घेरी घटा ॥  
 धौ सजग भू भौर जल मे मीन युग छवि में फँसी ।  
 धौ चपल ससि की कला प्रतिविम्ब वन जल में धँसी ॥  
 चित्त चंचल धौ अचंचल आजु जमुना नीर है ।  
 देखु आली छवि निराली आजु जमुना तीर है ॥

घों सघन वन की सघनता में गुलाबों की कली ।  
 मद मारुत गुज मधुकर मान मयने को चली ॥  
 भौंह कीर्णो पुष्प-शायक हाथ में रतिनाथ के ।  
 है 'रमा' मूर्ति मनोहर देख कर लोचन धके ॥  
 धीर है रतिनाथ की घर में अनोखी पीर है ।  
 देखु आली छवि निराली आज जमुना तीर है ॥

३

ढेपों के पट्टेया पै गट्टेया पट्टे नीकी करें,  
 कालिजी कासाला पै परीचा पाठसाला की ।  
 धनी है मुनारों की पसादा भये मालामाल,  
 गौने चली बाला आली दर्रें लकी माला की ॥  
 मकर नहाने चले बौध के लगाना यात्री,  
 पाला पट्टे, पट्टे अट्टे याचना दुराला की ।  
 जाहिरे महन्त 'रमा' देखो छैल कोठियों में,  
 हो गये दिवालिये बहार बदी प्याला की ॥

४

कूप तलावन सूख 'रमा' जल बैन बिके घर धान कहाँ है ।  
 छीज गये पट भूख सतावत फागुन को ढक गान कहाँ है ॥  
 कोटि उपाय करे जनता अब कौंसिल में वह जान कहाँ है ।  
 हिम्तिक बोर्ड करे कुछ तो अब भारत को अभिमान कहाँ है ॥

५

मानी ब्रह्म बानी सो पताल जान ठानी चली,  
 मुक्ति की निसानी धार चाहत फटी सी है ।  
 आये भई दंग लोप गंग की तरंग देख,  
 संभु की जटा की छटा धुर लौं अटी सी है ॥  
 देख के अखण्ड तप गंगा जी प्रचण्ड 'रमा',  
 त्याग के घमड सम्भु सीस से छटी सी है ।  
 भूप-पित्र-तारन को नर्क से उवारन को,  
 पन्नगी पिनाकी पग पूजि पलटी सी है ॥

६

नहिं जानत खेल खेलाड़ी बने मन आपन हार गये अब सेते ।  
 बसते नहिं मान सरोवर मे बसते चलि अन्त कहूँ अब चेते ॥  
 बसते तब पथर के बन के पग भूलिहु प्रेम के पंथ न देते ।  
 वह प्रीति सराहिये मीत 'रमा' पग काट के सग हमें कर लेते ॥

७

हम चाहैं तुम्हे सो भले ही कहैं हम मे तुम्हरो इतवार नहीं ।  
 तुम आग से खेलत हो दिल पै हमरे कहो दाग-दरार नहीं ॥  
 हम होत निसा नित आदत हैं तुम्हरे मिलने को करार नहीं ।  
 सच प्रेम को पंथ कराल बड़ा सुनो खाना कहीं तुम हार नहीं ॥

८

चीज भई मँहगी है बजार में गेहूँ लगा अब डेढ़ अढ़य्या ।  
 भूखे रहैं तन ढाँक सकैं नहिं भारत के सिसु लोग लुगैय्या ॥

दिल भी पत्थर का बना हिलता नहीं डुलता नहीं ।  
 मुँह से उगले आग के जलते लुआरे आपने ॥  
 चाल चल करके खनाखन से भरी हैं कोठियाँ ।  
 देश की क्या कम किया इतनी भलाई आपने ॥  
 बेगुनाहों का गला घोटा तरक्की पा गये ।  
 जड़ दिये तारीफ पै सालमे सितारे आपने ॥  
 दर्द शिर होता है सुन करके गरीबों की पुकार ।  
 शान का जौहर नहीं कब है दिखाया आपने ॥  
 देख कर आँखों मे आँसू लुफ़, आता है तुम्हे ।  
 मुँह चले कब दिल जलो पर तर्स खाया आपने ॥  
 पंगुलों की भीख पर तुमको हसद होती रहे ।  
 खाव मे खैरात का आँसू बहाया आपने ॥  
 ऐश मे देखा कभी कुछ कुढ़ गये कुछ लड़ गये ।  
 नेकनीयत वन कभी करतब निभाया आपने ॥  
 तज्ञ गलियों मे कभी तो आप हैं जाते नहीं ।  
 मेम्बरी के वक्त तो चक्कर लगाया आपने ॥  
 चाल चलते कौसिलो में आप जाने के लिये ।  
 सर हिलाने के सिवा क्या कर दिखाया आपने ॥  
 देश के हित के लिये एक दो कदम चलते नहीं ।  
 घिस न जावे पाँव खुद पै रहम खाया आपने ॥



'रमा' सलूक कुमित्र को, सत्यरथी को दान ।  
 ये दोउ मिथ्या जानिये, उलटि होय अपमान ॥  
 मूरख हरि को खोज ही, सहि दुख चारो धाम ।  
 ज्ञानी घर बैठे लखै, घर घर व्यापक राम ॥  
 'रमा' क्रोध जड पाप की, क्षमा धर्म का बीज ।  
 योग क्षमा तप क्षमा सो, जाये शत्रु पसीज ॥  
 समय पड़े पै बड़ेन सो, कबहुँ न माँगन जाय ।  
 थोड़े दामन पै रमा, कुल मरयाद बिकाय ॥  
 वे बोले पर घर घर गये, बात कहत मुसुकात ।  
 'रमा' अनादर होत है, वे पूछे कहि बात ॥  
 धरि धीरज सहिये विपत, काहु दोखिये नांय ।  
 विनु हरि के चाहे 'रमा', तन को सकत हिलाय ॥  
 'रमा' प्रीति अतुलित नसत, कपट फिटकिरी पाय ।  
 सियसम सहि रघुवर बचन, पलटि धँसी महि धाय ॥  
 'रमा' समय जैसो रहै, तैसी बात सुहाय ।  
 शिशु पुपलो प्यारो लगे, ज्वानन रूप नसाय ॥  
 'रमा' समय पर भ्रात सो, भ्रातहुँ माँगन जाय ।  
 होत सहाय सपूत मुख, लेत कपूत छिपाय ॥

---



श्रीमती राजदेवी

सं० १९६६ ई० से आपने कविता लिखना शुरू किया । आपकी कविता प्रायः हिन्दी के सभी पत्रों में प्रकाशित होती थी । पत्र और पत्रिका में 'मय्यादा' 'राजपूत' 'स्वदेश-चान्धव' 'रसिक-मित्र' मुख्य है । आपकी कविता सुन्दर और परिमार्जित होती है । आपने यद्यपि कोई पुस्तक नहीं लिखी तो भी हिन्दी की स्त्री-कवियों में आपकी गणना है । आप सहारनपुर के एडवर्ड गर्ल स्कूल की हेडमिस्ट्रेस और देहरादून के कन्या गुरुकुल में अध्यापिका भी रह चुकी है । आपको कई कवि सम्मेलनों से पुरस्कार तथा पदक भी प्राप्त हो चुके हैं । आपके पुत्र का नाम श्रीयुत वीरेश्वर सिंह है जो अच्छी कविता करते हैं ।

इधर कई वर्षों से आपने कविता लिखना बन्द कर दिया है । आपकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं —

१

फूले हैं फूल गुलाबन केलनि वेलनि और अनार कली के ।  
 फूल सिँगार किये सरसो अरु लागे सुधा फल डार अमी के ॥  
 जाही औ जूही चमेली खिली तहँ चम्पक फूल हैं भावत जी के ।  
 फूल पलास विकास भये वन भूलत हैं मन मंजु अली के ॥

२

लखि बसन्त के आगमन, भे सब फूल विकाश ।  
 मानहु तन सिंगार घर, कीन्दे ऋतुपति वास ॥

३

बसंत-वहार

महाराज ऋतुपति आय गये । कुसमावलि कुंज दिखात भये ॥

## देश की दुर्दशा

लखि देश की आरत दशा व्यापी मुझे इतनी व्यथा,  
 मुझ से रहा जाता नहीं है बिन कहे दुख की कथा ।  
 जीवन हमारा आजकल है हाथ पशुओं से गिरा,  
 हा ! घिर रही है कौन जन से आज यह प्यारी धरा ॥  
 वैभव विमल गौरव हमारा पूर्व का जाता रहा,  
 जिस शक्ति से भारत भुवन-शिरमौर कहलाता रहा ।  
 गुण-हीन भारत होगया धन-हीन भारत होगया,  
 बहु दीन भारत होगया सब भांति आरत होगया ॥  
 हिरदय विदारक है दशा जाता कलेजा है फटा,  
 होता है क्या अब शोक से जो समय हाथों से छटा ।  
 लख लख दशा इस काल के गाते पुरानी हम कथा,  
 पर यन्न कुछ मन में न आता दूर हो जिससे व्यथा ॥  
 इस देश की समता अगर हम अन्य देशों से करें,  
 अवलोक तिनकी नव-फला टग लाज से नीचा करें ।  
 इस देश में मति-हीनता अरु फूट की ज्वाला दहै,  
 देखो विदेशों में सुविद्या शान्ति की धारा बहै ॥  
 देखो विदेशों में अहा ! व्यापार कितना बढ़ रहा,  
 हर साल ही दिन दिन निहारो लाभ कितना हो रहा ।

हाय वीर भारत इस अवसर हुई दशा क्या तेरी है ?  
 केसर कहाँ और कस्तूरी कहाँ कपूर की ढेरी है ।  
 गूगुल गाद, दोष हरणी मधु भी अब नहीं घनेरी है ?  
 सुवरण खान कहाँ हीरो की गजमुक्तन अधिकारी हैं ।  
 धन से सुखी कहाँ नर नारी मिलते नहीं भिखारी हैं ?  
 विलग विलग ये बनी हुई अति सुन्दर सुन्दर क्यारी हैं ।  
 कहाँ पाय जलवायु सुहावन उपज अन्न का भारी है ।  
 हरी हरी है भरी अन्न से देखत लगती प्यारी हैं ?  
 जान सुफल निज कार्य कृषक जन होते परम सुखारी हैं ?  
 कहाँ फलों से लदे हुये तरु हरी हरी सब ढरी हैं ।  
 सुरभित फूल खिले कुञ्जन मे गुजंत भृंग सुखारी हैं ?  
 सुभग जलाशय मे निर्मल जल अरु शत पत्र दिखाते हैं ।  
 ठौर ठौर पर अहा कहाँ हम ऐसी शोभा पाते हैं ?  
 कहाँ विहंग वर करें किलोलें कलरव नाद सुनाते हैं ।  
 कोयल कूक और केकी के श्रवण-पुटो को भाते हैं ?  
 सरस्वती का कहाँ धाम है कहाँ शान्ति विस्तारी है ।  
 सत्य धर्म महाराज आपकी छाया किधर सिधारी है ?  
 कहाँ तेजमय वीर पुरुष वे जननी रक्षाकारी हैं ।  
 जिनके बल थी थमी धरणि अब यह भी दुखी विचारी है ?  
 हुई सभी सपने की वार्ते अजहुँ याद वह आती हैं ।  
 सोच २ वह पूरव-गौरव हाय सुलगती छाती है ?

## रामेश्वरी नेहरू

**श्री**मती रामेश्वरी नेहरू का जन्म स० १९४९ में हुआ। आपके

पिता का नाम श्रीमान् राजा नरेन्द्र नाथ एम० एल० ए० है जो लाहौर के सुप्रसिद्ध व्यक्ति है। राजा साहब हिन्दू महासभा के सभापति भी रह चुके हैं। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू जी को बाल्य-काल में फ़ारसी और अरबी की शिक्षा दी गई। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' कहावत के अनुसार ये अल्पकाल से ही होनहार दिखलाई देती थी। तनन्तर आपने अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन किया। आपका विवाह प० मोतीनाल जी नेहरू के भतीजे पंडित ब्रजलाल नेहरू के साथ हुआ। प० ब्रजलाल नेहरू गवर्नमेन्ट आफ़ इन्डिया के आर्टिडर जनरल हैं। श्रीमती जी को लोग 'ब्रजरानी' के नाम से अक्सर पुकारते हैं। काश्मीरियों में यह रिवाज है कि आधा पति का नाम रख कर उसके आगे 'रानी' शब्द जोड़ देते हैं, वही नाम स्त्री का होता है। इसी से इन्हें लोग 'ब्रजरानी' कहते हैं। आपके कई पुत्र और पुत्रियाँ हैं।

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू को हिन्दी से पहले ही से बहुत प्रेम था। जब ये प्रयाग में आईं तब इन्हें 'स्त्री-दर्पण' नामक हिन्दी की पुरानी पत्रिका का सम्पादन-भार ग्रहण करना पड़ा। इन्होंने उस पत्र का कई वर्षों तक बड़ा अच्छा सम्पादन किया। आपने कई पुस्तकें लिखीं

आप में सरलता और नम्रता कूट कूट कर भरी है। विदुषी होते हुए भी आपको गर्व नहीं है। प्रायः उर्दू के ढङ्ग पर आप कविता भी सुन्दर करती हैं। आपकी कविता का एक नमूना देखिये :—

### सरोजिनी-स्वागतः

१

चमन में आज ये कैसी बहार आई है।  
कली कली-को हँसी बेकरार आई है ॥  
गुलो का रङ्ग भी शबनम निखार आई है।  
नसीमे-सुबह जहाँ मे पुकार आई है ॥  
नसीब जाग उठे, आई हैं मिन्नतें दिल की।  
कमल के फूल से रौनक हुई है महफिल की ॥

२

प्रयागराज मे आईं सरोजिनी देवी।  
खुद आमदीद का है शोर, हर जगह है खुशी ॥  
है सच तो ये कि, हमारी कहों ये किस्मत थी।  
जवाने हाल से यह कहती है महिला-समिति ॥

---

❧ यह कविता श्रीमती नेहरू ने, प्रयाग में श्रीमती सरोजिनी नायडू के पधारने पर, प्रयाग-महिला-समिति की धोर से स्वागत करते हुए पढ़ी थी।

हमारे दिल की बस अब आरजू ये पैहम है ।  
 जो और ऐसी ही कुछ दम हों फिर तो क्या गम है ।  
 जो दर्द दुःख है तो सब मिल के खाक हो जाय ।  
 हमारा मुल्क मुसीबत से पाक हो जाय ॥

( ६ )

अदाए शुक्र में इनके जवान कासिर है ।  
 जो हम पे इनका है अहसाँ वो सब पे जाहिर है ।  
 की जात इनकी मददगार और नासिर है ।  
 ये अपने सनफ की मंजूर इनको खातिर है ।  
 कि इतने दूर से आई हैं और जहमत की ।  
 मगर हैं रज हमें ये कि कुछ न खिदमत की ॥

( ७ )

हुआ है, रक्खे खुद जब तक है आस्मों वाकी ।  
 जमीं को घेरे हुए है ये लामकाँ, धाकी ।  
 है रोज़ो-शवनमो इशरत की दास्ताँ वाकी ।  
 हयातो मौत है और गर्दिशे जहाँ वाकी ।  
 कमल खिला हुआ दिल का वा आबोताब रहे ।  
 तुम्हारा नाम सदा मिसले आफ़ताब रहे ॥





शाम से रात तसौअर में गुजारी मैने ।  
 क्या बिगाड़ा था मेरी जान सजा दी तूने ॥  
 जान जाती है मेरी तुझको मजा आता है ॥  
 वादा करके भी मुहब्बत को घटा दी तूने ॥  
 तुम मिलो या न मिलो मैं तुम्हे भूलूँगी नहीं ।  
 मिल गये गर तो जी 'कीरति' को बना दी तूने ॥  
 रात भर वस्ल मे मिल करके मजा दी तूने ।  
 लगी थी आग मेरे दिल में बुझा दी तूने ॥  
 मिले गये नन्दलाल क्या करूँ उनकी मैं अदब ।  
 लेके उल्फत का मजा खूब चखा दी तूने ॥  
 रात की बात सखी क्या कहूँ कुछ कह न सकूँ ।  
 मिल गये श्याम मुझे रात जिला ली तूने ॥  
 हो गये कीर्ति-पिया अब न किनारा करना ।  
 अब तो मिलना पड़ेगा बान लगादी तूने ॥



कहा सखी ने श्याम का पयान मथुरा का ।  
 तो दम निकल गया सुनते ही नाम मथुरा का ॥  
 मैने उनसे था कहा प्रीति ना निवाहोगे ।  
 नाम ले चल दिये नँदलाल आज मथुरा का ॥  
 अब न छोड़ो यहाँ सोचो जरा घनश्याम मुझे ।  
 जीती न पावोगे भुलाओ नाम मथुरा का ॥

आँख मुँदती देखती त्योही वही सुचि मूर्ति है ।  
 आँख जो खुलती वही तस्वीर फिर बेकार है ॥  
 याद करके बल व बुद्धी गुण तुम्हारे कलपती ।  
 पर करूँ क्या भाग्य से अपनी सदा ही हार है ॥  
 प्रिय वचन कानों में पड़ते थे जो प्रियतम आपके ।  
 फिर सुना दो चाहना वह प्रति घड़ी प्रतिवार है ॥  
 हाय जो पाती तुम्हें छाती लगाती प्रेम से ।  
 पर कहाँ खोजूँ न सूझे यह जगत अधियार है ॥  
 देख लो राजन् ! तुम्हारी रो रही सारी प्रजा ।  
 तुम नहीं करते दया बस क्या यही उपकार है ॥  
 सब कुटुम्बी सुहृद गण इस दुःख से परिपूर्ण हैं ।  
 शोक घन थामे हुए सूना पड़ा दरवार है ॥  
 दीन गौशाले की गायें विन सहायक हो गईं ।  
 रौंभती हैं नाद करती हाय ! हाहाकार है ॥  
 देश हित यह जगत हित के वास्ते था पुन किया ।  
 स्वामी इस धोखा धड़ी का हाय, पारावार है ॥  
 प्राण-प्यारे हा दुलारे छिप कहाँ ऐसे रहे ।  
 खोजती दासी मगर पाती नहीं लाचार है ॥  
 आप की तो इस जुदाई से कलेजा फट रहा ।  
 बहुत समझाती न रुकती आँसुओं की धार है ॥

‘कीरति’ उन निवसतु युगल प्रिये,  
रहे ध्यान सदा तव युगन पगन ॥

४

हमारे श्यामसुन्दर को इशारा क्यो नहीं होता ।  
पड़ा है दिल तड़पता है सहारा क्यो नहीं होता ॥  
हुई मुदत से दोवानो न तूने खबर ली मेरी ।  
मरीजे इश्क में मरना हमारा क्यो नहीं होता ॥  
न कल दिन रात है मुझको जुदाई में तेरे प्यारे ।  
लवो पर जान आई है सहारा क्यो नहीं होता ॥  
न दुनियाँ मुझको भाती है न मैं भाती हूँ दुनियाँ को ।  
मगर ‘कीरति’ का दुनिया से किनारा क्यो नहीं होता ॥

५

### कृष्ण-जन्म

सगुण स्वरूप सर्व व्यापक त्रिलोकीनाथ,  
जोई देवि देवकी के जनम लेवैया हैं ।  
जोई देवकी की पायँ-वेडी कटाकट्ट काटि,  
द्वार फट्टाफट्ट कारागार उघरैया हैं ॥  
विविध प्रकार वासुदेव को बुलाय जोई,  
ढाढस बँधाय नन्द-ग्राम पधरैया हैं ।  
सोई दीनानाथ आज ‘कीरतिकुमारी’ गृह,  
जनम लेवैया दुख दारुण हरैया हैं ॥

दुखदाई कंस को विध्वंस के सुईस जोई,

निज दीन दासन के दुख के हरैया हैं ।

सोई दीनानाथ आज 'कीरतिकुमारी, गृह,

जनम लेवैया दुख दारुण हरैया हैं ॥

७

मुनि सिद्ध सब हर्षाय किन्नर, यज्ञ गन्धर्व आपही ।

चढ़ि चढ़ि विमानन अमित सुरगण, तियन सँग नभ छावही ॥

दुन्दुभि बजावत गीत गावत, अमित सुख उपजावही ।

शुभ करत कलरव सुर मिले सब, जयति जयति उचारही ॥

फल फूल वरसत करत जय सब, जात सुख नहि मुख कहे ।

नभ सुनत धुनि है पुलकि ब्रज-जन, धन्य ब्रज सवने कहे ॥

सुर तिय सिहाँती बात कहतों, धन्य हैं ब्रज की तिया ।

है भाग्य नहि इन सरिस हमरी पुन्य क्या इनने किया ॥

## तोरन देवी शुक्ल 'लली'

**श्री** भवो तारन देवी शुक्ल 'लली' का जन्म स० १९२३ धावण द्युह  
 हादरी को जिला जयलपुर के पिपरिया नामक ग्राम ( इनकी  
 नमिहाल ) में हुआ । आपके पिता प० कन्हैयालाल तिवारी प्रयाग  
 के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में हैं । इनके पितामह का नाम प० लालताप्रसाद  
 त्रिपाठी कान्यकुब्ज जाति तथा समाज में बड़े प्रतिष्ठित और गव्यमान्य  
 व्यक्ति थे । आपका घर जिला उन्नाव क दिलावल नामक ग्राम में है ।  
 सन् १९२० ई० के मध्य के समय से आप प्रयाग में निवासस्थान बना  
 कर रहने लगे ।

जब ये गम में थीं तब उन्होंने तबों इनके माता पिता कारण मय  
 गुजरान गये थे । वे जब लौटने लगे तो वहाँ को सबसे प्रसिद्ध और  
 महिमामयी देवी "तारनवाली माता" के दर्शनार्थ गये । वहीं उन्होंने  
 एक प्रतिभामयी पुत्री की अभिलाषा की थी । इसीलिये जब ये  
 पैदा हुई तो उन्ही देवा के नाम पर इनका नाम 'तोरन देवा'  
 रखा गया ।

श्रमती तारन देवी के पिता जी और पितामह कन्याओं  
 को स्कूल भेजने के पक्षपात नहीं थे । हमलिये इनको सब प्रकार का  
 शिक्षा घर पर ही दी गई । ये ६ वर्ष का अवस्था में हिन्दी मञ्जी  
 भाँति साध गई । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा का सारा श्रेय इनकी

माता जी को है। तोरन देवी जी की प्रारम्भ ही से हिन्दी की ओर विशेष रुचि देख कर इनके पिता दैनिक, साप्ताहिक, मासिक अनेक प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकायें मँगवाते थे।

ग्यारह वर्ष की अवस्था में इनकी रुचि कविता की ओर झुकी। इनके पिता जी के दफ्तर में एक क्लर्क थे जिन्हें कविता का अनुराग था। इनके पिता स्वयं एक काव्य-रसिक सज्जन हैं। उन्होंने एक बार क्लर्क साहब को एक समस्या दी—“केहि कारण सतन बाँधी लँगोटी”—इसकी पूर्ति क्लर्क साहब ने कलियुग-सम्बन्धी कई बातों को लेकर किया। जिसमें एक लाइन यह भी थी कि—“नारि भई कुलटा उलटा पति को दुत्तकार धरैं सिर भोटी”—इनके पिता जी उस कविता को घर पर लाए। श्रीमती तोरन देवी यद्यपि उन दिनों छोटी थीं परन्तु अपनी माता के कहने से इन्होंने उक्त कविता के प्रतिवाद में एक सवैया लिखा। इनके पितामह वह सवैया सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुये। इनके कविता-काल की यही प्रथम कविता थी।

इनके पिता जी के दो विवाह हुये थे जिनमें प्रथम (इनकी विमाता) के पिता स्वर्गवासी प० हनुमानदीन मिश्र राजापुर, बांदा के एक प्रसिद्ध कवि और राजवैद्य थे। इन्होंने 'रसिक-मित्र' की एक समस्या-पूर्ति करके मिश्र जी के पास शुद्ध करने के लिये भेजा। नाना जी की शिष्टा से इन्होंने पित्रल सम्बन्धी कई पुस्तक पढ़ीं। इससे अनन्तर इनका अभ्यास कविता में बढ़ने लगा। 'रसिक-मित्र' आदि उस समय के प्रतिष्ठित पत्रों में इनकी कविता प्रकाशित होने लगी।

आपकी रचनायें ललित, मधुर और काव्य के गुणों से अलंकृत रहती हैं। हम आपकी रचनायें नीचे उद्धृत करते हैं :—

१

### अनुरोध

ओ देशप्रेम के मतवाले ! मत प्रेम प्रेम कह इतराना ।

कह कर उपदेश सुनाने से,

जिनका सत्कर्म प्रधान रहा ।

परहित में जीवन धारण था,

परिपूर्ण अलौकिक ज्ञान रहा ॥

अभिमान नहीं जिन हृदयों में,

उनका जग में अभिमान रहा ।

जो समझ चढ़े बलिदेवी पर,

बलिदान वही बलिदान रहा ॥

रणवीर ! इन्हीं आदर्शों को, नित रीति नई से दरशाना ।

ओ देशप्रेम के मतवाले ! मत प्रेम प्रेम कह इतराना ॥

जिसमें लालसा प्रधान रही,

वह प्रेम नहीं वह भक्ति नहीं ।

जो सहम उठे बाधाओं से,

वह वीर हृदय की शक्ति नहीं ॥

विचलित हो मायाजालों से,

त्यागी की पूर्ण विरक्ति नहीं ।

कितना तुमको खोज चुकी हूँ,  
जिसका वार न पार ।

मुझसे मिल जाना इकबार ॥

सरिता की गति मतवाली मे, प्रिय बसन्त की हरियाली में ;  
बाल प्रभाकर की लाली मे, निशानाथ की उजियाली मे—  
आशावादी बन कर लोचन,  
अब तक रहे निहार ।

मुझसे मिल जाना इकबार ॥

अब देखूँगी उत्थानो में, देश-प्रेम के अभिमानो मे;  
वीर श्रेष्ठ के गुण गानो मे, अमर सुयश 'सद-सन्मानो मे—  
दर्शन होते ही तज दूँगी—  
हिय वेदना अपार ।

मुझसे मिल जाना इकबार ॥

३

उत्कंठा

मन मोहन श्याम हमारे !

अब फिर दर्शन कब दोगे ?

शबरी गणिका गीध अजामिल,

सब को लिया उचार ।

द्रुपद-सुता की लाज बचा कर,

कर गज का उद्धार ॥



क्या शान्ति चाहते हो तुम, गृहणी गण को फुसलाकर ?  
बंधन कैसे रख लोगे, उस क्षण भी उन्हें मुला कर ?

जब प्रतिहिंसा का भाव उठेगा—

भूम सभी हृदयो से ।

अब भी यदि रखना चाहो, दृढ़ सदाचार सुविचार ।  
कर दो दूर आज परदे सा, अन्तिम अत्याचार ॥

इस घूँघट ही के पट में—

क्या क्या नहुआ सदियों से ।

बना आज कर्तव्य तुम्हारा, जगना और जगाना ।  
बिखर गईं जो विमल शक्तियाँ, फिर से उन्हें मिलाना ॥

देखो प्रस्तुत हो जाओ,

सहसा इस शुभ घड़ियों से ।

दे कर विद्यादान बनादो, शिचित्त सुमति उदार ।  
महिलाओ मे ज्योति जगादो, जीवन की इकवार ॥

तब आशीर्वाद लहोगे—

फिर 'लली' श्रेष्ठ सतियों से ।

५

कर्मभूमि

अब उठो चलो बढ़ चलो वीर । है यही तुम्हारी कर्मभूमि ।

इस पर भगवान अवधपति ने,

निश्चर कुल का संहार किया ।

धीर वीर हित दया-सिन्धु हो ।

शत्रु गणों के अजय सिंह हो,

जननी जन्मभूमि के सेवक,

या तुम हो परहित साकार ।

दीन देश के प्राणाधार !

महत् पुरुष के हृदय विमल से,

दीन दुखी के नयन सजल से,

शोक नशावनि के कल कल से,

सदा तुम्हारी ही सुन पड़ती,

विश्व-व्यापनी जय जय कार ।

दीन देश के प्राणाधार ।

स्नेहमयी माँ के नयनों में,

देशप्रेम मद-भक्त जनो में,

देव ! तुम्हारे पदपद्मों में,

बड़े यत्न से चिर संचित यह-

अर्घ्य 'लली' का हो स्वीकार ।

दीन देश के प्राणाधार !

७

कलिका

नव कलिका तुम कब विकसी यों,

इसका मुझको ज्ञान नहीं ।

यदि मिल जावें युगल चरण वह,  
तुम उन पर बलि हो जाना ॥

८

### प्रमाण

सादर सस्नेह प्रणाम मेरा, उन चरणों पर शत कोटि बार ।

माता के लाल लड़ैते थे,

भगिनी के वीर बाँकुरे थे,

सौभाग्यवती जीवन के वे-

जीवन थे प्राण पियारे थे ।

वे सब की भावी आशा थे, थे जन्मभूमि के होनहार ।

वे देश-प्रेम मतवाले थे,

माता के चरणपुजारी थे,

पुरुषों में थे वे पुरुष सिंह,

कर्तव्य धर्म व्रत-धारी थे ॥

प्राणों को हँस छोड़ दिया, पर प्रण न गया उनका अपार ।

वे ज्ञानवान थे योगी थे,

अनुपम त्यागी थे सज्जन थे ।

वे वीर हठीले सैनिक थे,

तेजस्वी थे विद्वज्जन थे ।

कर्तव्य कर्म की ओर चले, फल की सारी सुष-नुष विसार ।

कह दो उन अवधेश कुँवर से, रखले अब भी लाज ।  
 नित्य पराजित हुए पुरयतिथि, आवेगी किस काज ॥  
 मेरी विजयादशमी आज ॥

१०

### स्वर्ण-दिवस

अब शुभागमन तेरा है ।  
 हों स्वर्ण दिवस मेरा है ॥  
 तेरा ही करते हैं निशि दिन, महत पुरुष अहान ।  
 तेरे लिये देश के अगणित वीर हुये बलिदान ॥  
 अब मधुर मिलन तेरा है ।  
 हों स्वर्ण दिवस मेरा है ॥  
 मिल जाने ही की आशा से की थी करुण पुकार ।  
 पाकर तुम्हें सिंह की नाईं देश उठा हुंकार ॥  
 धनि यह प्रभाव तेरा है ।  
 हों स्वर्ण दिवस मेरा है ॥  
 'लली' रहे युग युग में तेरा, अचल अटल सुविकाश ।  
 हो प्रत्येक हृदय में तेरी उज्ज्वल ज्योति प्रकाश ॥  
 यह अमर गान तेरा है ।  
 हों स्वर्ण दिवस मेरा है ॥

अतुलित बलधारी अति दयाल,  
 जय जगत-शिरोमणि वीर वेश ॥ १ ॥  
 पूरित सुन्दर षट्चतु अनूप,  
 रत्नक पयोधि हिम शैल-भूष ।  
 जय सत्य न्याय अरु धर्म रूप,  
 जय तीस कोटि संतति विशेष ॥ २ ॥  
 शुभ पावन प्रिय अनुरक्ति देत,  
 निज भक्त जनन को भक्ति देत ।  
 रणवीर मुजन को शक्ति देत,  
 प्रिय भारत तव महिमा अशेष ॥ ३ ॥  
 जय जय भारत जय जय स्वदेश—



श्रीमती जी का परिचय प्रयाग की 'गृहलक्ष्मी' की सम्पादिका श्रीमती गोपाल देवी और डा० प्रेमचन्द्र जी की धर्मपत्नी से विशेष कर था। आप की मृत्यु संवत् १९८० में बहुत थोड़ी उम्र में हो गई। कई वर्ष बाद इनके पति इन्हें एकाएक छोड़ कर कहीं चले गये। पति-वियोग यह सह नहीं सकी। मरते समय भी आपने कहा था—'मरती हूँ जिसके इशक में उसको खबर नहीं।' श्रीमती जी यद्यपि बहुत मशहूर नहीं हैं तो भी आपकी रचना मधुर और ऊँचे दर्जे की है। खड़ीबोली की रचनाओं में उत्तम स्थान दिया जा सकता है। आपकी कुछ रचनायें नीचे दी जाती हैं :—

१

### मेरी इच्छा

परमेश्वर की मूर्ति निहारी मैंने अपने प्रियतम में !  
 सत में देखी रज में देखी देखी मूर्ति वही तन में !  
 उसी मूर्ति को हँसते देखा और खोजते भी देखा !  
 व्याह-पाप करने के कारण हाथ-मींजते भी देखा !  
 नहीं चाहती हूँ धन कोई नहीं मान की भूखी हूँ !  
 रिश्तेदारों को भूली हूँ, सब दुनियाँ से रूखी हूँ !  
 यहीं चाहिये कहे 'प्रियंवदा' निशि दिन कष्ट उठाऊँ मैं !  
 वारह घण्टे में प्रियतम को एक बार पा जाऊँ मैं !

पढ़ाओ ! मैं भी पढ़ लूँगी !

नहीं तो अपना सर दे दूँगी !

हंस हमारे सुआ हमारे, प्रियतम जीवन—मूल !

द्वैत पंथ में दो वन खुद ही, क्यों देते अब शूल ?

नहीं—मैं बदला क्यों दूँगी ?

बार अपने ऊपर लूँगी ?

शिव तुम शक्ति रूप मैं तेरी, जग मे दो तस्वीर !

शक्ति स्वरूप, सिया—राधा सम, फूटी मम तकदीर ?

समय विपरीत निभा लूँगी !

प्रेम की लाज बचा दूँगी !

सीता प्रति श्रीराम निठुर हैं, राधा प्रति गोपाल !

सती समस्त निठुर शंकर मैं, यही—सदा की चाल !

अनोखी बात न कह दूँगी !

ढाल दो पत्थर, सह लूँगी !

सहन, क्षमा दो चरण हमारे, प्रेम हमारा लक्ष !

साक्षी सर्व विश्व है मेरा, कहती—ईश समस्त !

न तुमको ताना भी दूँगी !

बनेगा जैसा—जी लूँगी !

३

न जानूँ आज क्यों मुझ से, खफा सरकार बैठे हैं !

न चहरा भी दिखाते हैं, हुये बेजार बैठे ह !

६

## प्रस्थान

चलोरे मन चित्रकूट की ओर !

कलि-मल विषय भयानक दुस्तर , नित्य जनावै जोर !  
 तीन ताप, सन्ताप पाप बहु , मोह लोभ मद घोर !  
 बहुत गयी अब तनिक रही , है मेरी जीवन डोर !  
 उस यमराज महा बंधन से , कौन सकेगा छोर !  
 चित्रकूट में मन्दाकिनि-तट , पक्षी करते शोर !  
 शोर नहीं, वे निरख रहे हैं , सुभग श्यामली कोर !

७

## पपीहा

पपीहा ! काहे मचायो सोर ?

मन की डोर बहुत तुम फँकी , मिल्यो न अब लघु छोर !  
 बहुत दूर पै, बहुत दूर पै , स्वाति वूँद की कोर !  
 प्रेम-पन्थ में बाधाएं बहु , निठुर दिखावै जोर !  
 थकित न अब लौं भई 'प्रेमदा' , उड़ा रही मन-भोर !

८

## अपमान

हमारा खूब हुआ अपमान !

बना प्रेम अवतार 'प्रियंवदा' , विधि की प्रिय श्री मान !  
 पटक दिया मेरा मन-मोती , ग्राहक ने क्या जान ?



प्रेम छोड़ते प्राण निकलते, विधि स्वभाव, हा हंत !  
करूँ योग अभ्यास नित्य ही, अगर मिलें पुनि कंत !

हो गया एक वर्ष का अंत !

प्रेम ! तुम्हारी बलिवेदी पर, निकले प्राण अनंत !  
मरो 'प्रेमदा' तुम भी हँकर, निरखै सकल दिगंत !

हो गया एक वर्ष का अंत !



चतुर्वेदी के साथ “कर्मवीर” पत्र का सम्पादन कार्य करने लगे और उसके बाद प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी के मन्त्री का कार्य भी करते रहे ।

मध्यप्रदेश के राजनीतिक आन्दोलन में इन दोनों का बहुत बड़ा भाग रहा है । श्रीमती सुभद्राकुमारी राष्ट्रीय झण्डा सत्याग्रह के संबंध में जबलपुर में एक बार गिरफ्तार हो चुकी है । किन्तु सरकार ने इन्हें एक दिन पुलिस-हवालात में रख कर सब साथियों सहित छोड़ दिया । ये दूसरी बार उसी सम्बन्ध में नागपुर में फिर गिरफ्तार हुईं और जेल में रखी गईं परन्तु कुछ दिन बाद बिना मुकदमा चलाये ही छोड़ दी गईं ।

श्रीमती सुभद्राकुमारी को कविता की धुन बचपन से ही थी । इनके पिता को कविता और गाने से विशेष रुचि थी । उनके भजन इत्यादि सुन सुन कर इनके मन में कविता की लहरें उठा करती थीं । जब ये इलाहाबाद के मास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल में पढ़ती थीं तब उसके प्रत्येक वार्षिकोत्सव पर इनकी बधाई आदि पर कवितायें अवश्य पढ़ी जाती थीं । उन्हीं दिनों सामयिक पत्रों में भी इनकी कवितायें प्रकाशित होने लगी थीं । स्कूल में जिस लड़की या शिक्षिका से इनका प्रेम हो जाता था उन पर ये कवितायें बनाया करती थीं ।

इनकी बचपन की कवितायें चालोचित भाव से भरी हुई हैं और स्वभावतः उनके विषय भी वैसे ही रहा करते थे । किन्तु उनमें भावी कविता की झलक और देशभक्ति के भाव अवश्य प्रगट होते थे । जब से ये असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हुईं तब से इनकी देशभक्ति का

तड़प तड़प कर वृद्ध मरे हैं गोली खाकर ।  
 शुष्क पुष्प कुछ वहाँ गिरा देना तुम जाकर ॥  
 यह सब करना किन्तु बहुत धीरे से आना ।  
 यह है शोक-स्थान यहाँ मत शोर मचाना ॥

२

### राखी की चुनौती

बहिन आज फूली समाती न मन मे,  
 तड़ित आज फूली समती न धन में,  
 घटा है न फूली समाती गगन मे,  
 लता आज फूली समाती न वन मे;  
 रही रखियाँ हैं, चमक है कहीं पर,  
 कहीं कद है, पुष्प प्यारे खिले हैं ।  
 ये आई है राखी सुहाई है पूनो,  
 बधाई उन्हें जिनको भाई मिले हैं ॥  
 मैं तो हूँ बहिन किन्तु भाई नहीं है,  
 है राखी साजी पर कलाई नहीं है;  
 है भादों, घटा किन्तु छाई नहीं है,  
 नहीं है खुशी—पर रुलाई नहीं है;  
 मेरा वन्धु माँ की पुकारो को सुनकर—  
 के तैयार हो कैदखाने गया है ।

५

## चलते समय

तुम मुझे पूछते हो—“जाऊँ” मैं क्या जवाब दूँ तुम्हीं कहो ।  
 “जा ..” कहते रुकती है जवान किस मुँह से तुम से कहूँ रहो ॥  
 सेवा करना था जहाँ मुझे कुछ भक्ति-भाव दरसाना था ।  
 उन कृपा-कटाक्षों का बदला बलि होकर जहाँ चुकाना था ॥  
 मैं सदा रुठती ही आई प्रिय । तुम्हें न मैंने पहिचाना ।  
 वह मान वाण सा चुभता है अब देख तुम्हारा यह जाना ॥

६

## मातृ-मन्दिर में—

बीणा वज सी पड़ी खुल गये नेत्र, और कुछ आया ध्यान ।  
 मुड़ने की थी ढेर दिख पड़ा उत्सव का प्यारा सामान ॥  
 जिसको तुतला तुतला कर के शुरू किया था पहली बार ।  
 जिस प्यारी भापा मे हमको प्राप्त हुआ है माँ का प्यार ॥  
 उस हिन्दू जन की गरीबिनी हिन्दी—प्यारी हिन्दी का ।  
 प्यारे भारतवर्ष—कृष्ण की उस वाणी कालिन्दी का ॥  
 है उसका ही समारोह यह उसका ही उत्सव प्यारा ।  
 मैं आश्चर्य भरी आँखों से देख रही हूँ यह सारा ॥  
 जिस प्रकार कङ्काल वालिका अपनी माँ धन-हीना को ।  
 टुकड़ों की मुहताज आज तक दुपिनी को उस दीना को ॥

जगती के वीरो द्वारा शुभ पद-वंदन तेरा होगा ।  
 देवो के पुष्पो द्वारा अब अभिनदन तेरा होगा ॥  
 तू होगी आधार देश की पार्लमेन्ट बन जाने मे ।  
 तू होगी सुख-सार देश के उजड़े क्षेत्र बसाने में ॥  
 तू होगी व्यवहार देश के विछुड़े हृदय मिलाने मे ।  
 तू होगी अधिकार देश भर को स्वातन्त्र्य-दिलाने मे ॥

७

### कलह-कारण

कडी आराधना करके बुलाया था उन्हे मैंने ।  
 पदो के पूजने के ही लिये थी साधना मेरी ॥  
 तपस्या नेम व्रत करके रिभाया था उन्हे मैंने ।  
 पधारे देव पूरी हो गई आराधना मेरी ॥  
 उन्हे सहसा निहारा सामने संकोच हो आया ।  
 मुँदी आँखें सहज ही लाज से नीचे झुकी थी मैं ॥  
 कहे क्या प्राण धन से यह हृदय में सोच हो आया ।  
 वही कुछ बोल दें पहले प्रतीक्षा में रुकी थी मैं ॥  
 अचानक ध्यान पूजा का हुआ भट आँख जो खोली ।  
 हृदय धन चल दिये मैं लाज से उनसे नहीं बोली ॥  
 नहीं देखा उन्हे, वस सामने सूनी कुटी देखी ।  
 गया सर्वस्व अपने आपको दूनी लूटी देखी ॥

घन घोर घटायें काली थी पथ नहीं दिखाई देता था ॥  
 तूने पुकार की जोरो की वह चमका गुस्से में आया ।  
 तेरी आहों के बदले में उसने पत्थर दल बरसाया ॥  
 सुनके जिसकी ध्वनि गम्भीरा आनन्दित हो तू नृत्य करे ।  
 हा ! मित्र वही बरसा पत्थर तेरा आदर हे मित्र ! करे ॥  
 तेरा पुकारना नहीं रुका तू उठा न उसकी मारो से ।  
 आखिर को पत्थर पिघल गये आहो से और पुकारों से ॥  
 तू धन्य हुआ हम सुखी हुई सुन्दर नीला अकाश मिला ।  
 चंद्रमा चाँदिनी सहित मिला सूरजभी मिला प्रकाश मिला ॥  
 तेरी-केका से यो मयूर । घन विमुख निरभिमानी होवें ।  
 उपहार बने लीखे प्रहार पत्थर पानी पानी होवें ॥

१३

### विजया-दशमी

विजये । तूने तो देखा है वह विजयी श्रीराम सखी ।  
 धर्मभीरु सात्विक निश्छल मन वह करुणा की धाम, सखी ॥  
 वनवासी असहाय और फिर हुआ विधाता वाम सखी ।  
 हरी गई सहचरी जानकी वह व्याकुल घनश्याम सखी ॥  
 कैसे जीत सका रावण को, रावण था सम्राट सखी ।  
 सोने की लंका थी उसकी ठटे राजसी ठाट सखी ॥  
 रक्तक राक्षस सैन्य सबल था ग्रहरी सिंधु विराट सखी ।  
 नर ही नहीं देव डरते थे सुनकर उसको डाट सखी ॥

उसी बाग की ओर शाम को जाती हुई दिखाती है ।  
 प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ही फिर जाती है ॥  
 लोग उसे पागल कहते हैं देखो तुम न भूल जाना ।  
 तुम भी उसे न पागल कहना मुझे क्लेश मत पहुँचाना ॥  
 उसे लौटती समय देखना रम्य वदन पीला पीला ।  
 साड़ी का वह लाल छोर भी रहता है विल्कुल गीला ॥  
 डायन भी कहते हैं उसको कोई कोई हत्यारे ।  
 उसे देखना किन्तु न ऐसी गलती तुम करना प्यारे ॥  
 बाँई ओर हृदय में उसके कुछ घड़कन दिखलाती है ।  
 वह प्रतिदिन क्रम क्रम से कुछकुछ धीमी होती जाती है ॥  
 किसी रोज सम्भव है उसकी घड़कन विल्कुल मिट जावे ।  
 उसकी भोली भाली आँखें हाथ सदा को मुँद जावें ॥  
 उसकी ऐसी दशा देखना आँसू चार बहा देना ।  
 उसके दुख में दुखिया बनके तुम भी दुःख मना लेना ॥

१५

### मत्त मंदिर में

व्यथित है मेरा हृदय-प्रदेश, चलूँ किसको वहलाऊँ आज ।  
 वृत्ता कर अपना दुख सुख उसे, हृदय का भार हटाऊँ आज ॥  
 चलूँ माँ के पद-पंकज पकड़, नयन-जल से नहलाऊँ आज ।  
 मत्त-मंदिर में मैंने कहा चलूँ दर्शन कर आऊँ आज ॥  
 किन्तु यह हुआ अचानक ध्यान दीन हूँ छोटी हूँ अज्ञान ।

कहते थे—“मेरे बंधन से यदि हो जावे मैं स्वाधीन ।  
तो मैं हूँ तैयार यदपि हूँ वास्तव मे मैं अपराधी न ॥”  
सोचो मृत्यु नहीं बंधन है बंधन तो है कारागार ।  
आओ यही निवास करो हो कारागृह को हृदयागार ॥  
जननि निष्ठावर होगी तुम पर जनता बलिवलि जायेगी ।  
श्रद्धा और प्रीति से तुमको, नयनों पर बिठलायेगी ॥  
लौटो आओ मंडाले में मंदिर हम बनवा देंगे ।  
वहाँ हथकड़ी और चेड़ियों से घंटा टँगवा देंगे ॥  
तुम बन जाना मुख्य पुजारी करते रहना नित टंकार ।  
हम सब मिल कर करें प्रार्थना हो स्वराज्यका मंत्रोच्चार ॥  
तब स्वतंत्रता देवी देगी प्रमुदित हो प्यारा वरदान ।  
वह पहलीजयमाल गले में धारण करना तुम भगवान ॥  
भारत का हो राजतिलक तुम तिलकयही के कहलाओ ।  
अमरपुरी बलि कर दोइस पर यही रहो हा! मतजाओ ॥

१९

राखी

भैया कृष्ण ! भेजती हूँ मैं राखी अपनी यह लो आज ।  
कई धार जिसको भेजा है सजा सजा कर नूतन साज ॥  
लो आओ भुज दण्ड उठाओ, इस राखी मे बँधजाओ ।  
भरत-भू की रज भूमी को एक बार फिर दिखलाओ ॥



वीर चरित्र राजपूतों का पढ़ती मैं राजस्थान ।  
 पढ़ते पढ़त आँखों में छा जाता राखी का आरपान ॥  
 मैंने पढ़ा शत्रुओं को भी जब जब राखी भिजवाई ।  
 रक्षा करने दोष पड़ा वह राखीपद शत्रु भाई ॥  
 किंतु देखना है यह मेरी राखी क्या दिखलाती है ।  
 क्या निस्तब्ध कलाई हो पर घघ कर यह रह जाती है ॥  
 देखो भैया मेज रही हूँ तुमको—तुमको राखी आज ।  
 साया राजस्थान बनाकर रख लना राखी की लाज ॥  
 हाथ कँपता हृदय धड़कता है मेरी भारी आघात ।  
 अब भी चौकता है जलियोंवाला का वह गोलन्दाज ॥  
 यम की सूरत उन पतिता की पाप भूल जाऊँ कैसे ।  
 अकित आज हृदय में हैं फिर मन को समझाऊँ कैसे ॥  
 बहिने कई विलपती हैं हा । उनकी मिसक न मिटपाई ।  
 लाज गवाई गाली पाई तिसपर धमकी भी खाई ॥  
 डर है कहीं न मारलला का पड़ जाये फिर से घेरा ।  
 ऐस समय द्रौपदा नैमा कृष्ण महारा है सेरा ॥  
 बोला सोच समझकर वाला क्या राखी बँधवाओगे ?  
 भार पड़ेगा रक्षा करने क्या तुम दौड़े आओगे ?  
 यदि हा तो यन् ला इस मेरी राखी को स्वीकार करो ।  
 आकर भैया बहिन 'सुमद्रा' क कष्टों का भार हरो ॥

लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य भाँसी आया ।  
 अश्रु पूर्ण रानी ने देखा भाँसी हुई विरानी थी,  
 बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी ।  
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥  
 अनुपम विनय नहा सुनता है, विकट शासकों की माया,  
 व्यापारी बन गया चाहता था यह जब भारत आया ।  
 डलहौजी ने पैर पसारे अब तो पलट गयी काया,  
 राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरो ठुकराया ।  
 रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महारानी थी,  
 बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी ।  
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥  
 छिनी राजधानी देहली की लखनऊ छीना बातों बात,  
 कैद पेशवा था बिठूर में हुआ नागपुर पर भी घात ।  
 उदैपूर । तजौर सितारा करनाटक की कौन विसात,  
 जब कि सिध पञ्जाब ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्रनिपात ।  
 बंगाले मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी,  
 बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी ।  
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसीवाली रानी थी ॥  
 रानी रोई रनवासों में बेगम गम से थी बेजार,  
 उनके गहने कपड़े विकते थे कलकत्ते के बाजार ।

नाना धुन्दूपंत तौतिया चतुर अजीमुल्ला सरनाम ।  
 अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँ अरसिंह सैनिक अभिराम,  
 भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे, जिनके नाम ।  
 लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुर्वानी थी ।  
 बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी,  
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥  
 इनकी गाथा छोड़ चले हम झाँसी के मैदानों में,  
 जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द वनी मर्दानों में ।  
 लेफ्टिनेन्ट नौकर आ पहुँचा आगे बढ़ा जवानों में,  
 रानी ने तलवार खींच ली हुआ द्वन्द असमानों में ॥  
 जखमी होकर नौकर भागा उसे अजब हैरानी थी,  
 बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी ।  
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥  
 रानी बढ़ी कालपी आई कर सौ मील निरन्तर पार-  
 घोड़ा थककर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार ।  
 यमुना तट पर अंगरेजों ने फिर खाई रानी से हार,  
 विजयी रानी आगे चल दी किया ग्वालियर पर अधिकार,  
 अंगरेजों के मित्र सिन्धिया ने छोड़ी रजधानी थी ।  
 बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी,  
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥

जाओ रानी याद रखेगे ये कृतज्ञ भारतवासी ।  
 यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनाशी,  
 होवे चुप इतिहास रचो सच्चाई को चाहे फाँसी ।  
 हो मदमाती विजय मिटा दे गोलो से चाहे भाँसी,  
 तेरा स्मारक तू ही होगी तू खुद अमिट निशानी थी ।  
 बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी,  
 खूब लड़ी मर्दानी वह तो भाँसोवाली रानी थी ॥



मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। सन् १९८१ में आपने एन्ट्रेंस परीक्षा पास की। इस परीक्षा में आप युक्तप्रान्त में प्रथम आईं, छात्रवृत्ति और हिन्दी विषय में 'तमीज' भी प्राप्त की। दो वर्ष बाद इंटर-मीजिएट और सन् १९८२ में बी० ए० की परीक्षा संस्कृत और फ़िलासफी लेकर पास की। इस साल फ़ास्थवेट गल्स' कालेज से बी० ए० की परीक्षा में आठ लड़कियाँ शामिल हुई थीं, उनमें इनका प्रथम स्थान रहा। आजकल आप प्रयाग विश्वविद्यालय में एम० ए० में पढ़ रही हैं।

शुरू शुरू में आप प्रायः तुकवदियाँ बनाया करती और उसे फाट कर फेंक दिया करती थीं। परन्तु धीरे धीरे आप में कविता लिखने की विशेष रुचि उत्पन्न हुई और अच्छी कविता लिखने लगी। ज्यो ज्यो आप की शिक्षा बढ़ती गई त्यों त्यों आप की कविता में भी गम्भीरता और स्थायित्व आता गया। आपकी प्रारम्भिक कविताएँ प्रायः 'चाँद' नामक मासिक पत्र में छपा करती थीं। परन्तु फिर अन्य पत्रों—'माधुरी' 'मनोरमा' 'सुधा' आदि—में भी छपी। आपने हिन्दी में एक नये ढंग की रचना का प्रादुर्भाव किया। जहाँ दो-चार छायावाद और रहस्यवाद के ऊँचे दर्जे के पुरुष कवि हिन्दी के वर्तमान युग में हैं वहाँ स्त्री-कवि श्रीमती महादेवी वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आप की कविताओं में प्रायः वियोग और अनुभूति का एक प्रकार का समिधय पाया जाता है, जो भावुक हृदयों में एकाएक स्थान कर लेता है। साथ ही आप की रचना मधुर और सगीतनय होती है। आप जो कविता एक बार लिख लेती हैं उसे ज्यो की त्यों रहने देती हैं। आप का

उस सोने के सपने को, देखे कितने युग बीते ।  
 आँखों के कोष हुए हैं, मोती बरसा कर रीते,  
 अपने इस सूनेपन की, मैं हूँ रानी मतवाली ;  
 प्राणों का दीप जलाकर, करती रहती दीवाली ।  
 मेरी आँहें सोती हैं, इन ओठों की ओटों में,  
 मेरा सर्वस्व छिपा है, इन दीवानी चौटों में ॥  
 चिन्ता क्या है हे निर्मम ! बुझ जाये दीपक मेरा,  
 हो जायेगा तेरा ही, पीडा का राज्य अधेरा ।

५

चाह

माँगत है यह पागल प्यारा ,  
 अनोखा एक नया संसार ।  
 कलियों के उच्छ्वास शून्य में ताने एक वितान ,  
 तुहिन कणों पर मृदु कम्पन से सेज बिछा दें गान ;  
 जहाँ सपने हों पहरेदार ,  
 अनोखा एक नया ससार ।  
 करते हो आलोक जहाँ बुझ बुझ कर कोमल प्राण ,  
 जलने में विश्राम जहाँ मिनटों में हो निर्वाण ,  
 वेदना मधु-मदिरा की धार ,  
 अनोखा एक नया संसार !

मिल जायें छसपार चितिज के सोभा सीमाहीन,  
गर्वील नक्षत्र घरा पर लौटें होकर दीन ।

बदधि हो नभ का शयनागार,

अनोरु एक नया ससार ।

जीवन का अनुमृति तुला पर अरमानो से तोल,

यह अवोध मन मूक ज्यथा से ले पागलपन मोल,

करें एग आँसू का व्यापार,

अनोरु एक नया ससार ।

६

### निर्वाण

घायल मन लेकर सो जाती, मेघों में तारों की प्यास ।

यह जीवन का स्यार शून्य का, करता है बढ कर उपहास ॥

बल चपला के दीप जलाकर, किसे हूँदता अपाकार ?

अपन आँसू आज पिला दो, कहता किससे पारावार ॥

मुक मुक मूम मूम कर लहरें, भरवाँ बूँदों के मोती ।

यह मेरे सपनों की छाया, भोकों में फिरती रोती ॥

आज किसी के मसले तारों—की वह दूरागत मङ्गार ।

मुझे घुलावी है सहमी सी, मन्मा के परदों के पार ॥

इस असीम तप में मिल कर, मुझको पल मरासो जाने दो ।

बुझ जाने दो देव आज, मेरी दीपक बुझ जाने दो ।

७'

## मेरी साथ

थकी पलकें सपनों पर डाल, व्यथा में सोता हो आकाश ।  
 छलकता जाता हो चुपचाप, वादलों के उर से अवसाद ॥  
 वेदना की वीणा पर देव, शून्य गाता हो नीरव राग ।  
 मिला कर निश्वासों के तार, गूँथती हो जब तारे रात ॥  
 उन्हीं तारक फूलों में देव ! गूँथना मेरे पागल प्राण—  
 हठीले मेरे छोटे प्राण !

किसी जीवन की मोठी याद, लुटाता हो मतवाला प्रात ।  
 कली अलसाई आँखें खोल, सुनाती हो सपने की बात ॥  
 खोजते हो खोया उन्माद, मन्द मलयानिल के उच्छ्वास ।  
 माँगती हो आँसू के बिन्दु, मूक फूलों की सोती प्यास ॥  
 पिला देना धीरे से देव, उसे मेरे आँसू सुकुमार—  
 सजीले से आँसू के हार ।

मचलते उद्गारों से खेल, उलझते हों किरणों के जाल ।  
 किसी की छूकर ठंडी साँस, सिहर जाती हों लहरें बाल ॥  
 चकित सा सूने में संसार, गिन रहा हो प्राणों के दाग ।  
 सुनहली प्याली में दिनमान, किसी का पीता हो अनुराग ॥  
 डाल देना उसमें अनजान, देव मेरा चिर सचित राग !  
 अरे यह मेरा मादक राग ।



मत्त हो स्वप्निल हाला डाल, महानिद्रा में पारावार ।  
 उसी की घडकन में तूफान, मिलावा हो अपनी मकार ॥  
 मजहरो से मोहक सदश, कह रहा हो छाया का मौन ।  
 सुप्त आहों का दीन विपाद, पूछता हो आता है कौन ?  
 वहा दना आकर चुपचाप, तभी यह मेरा जीवन फूल—  
 सुभग मेरा मुरझाया फूल ।

८

### स्वप्न

इन हीरक से तारों का, कर चूर बनाया प्याला ।  
 पीढा का सार मिना कर, प्राणों का आसब डाला ॥  
 मनयानिन के मोकों में, अपना उपहार लपेटे ।  
 मैं सुने तट पर आई, बिरहरे बद्गार समेटे ॥  
 काले रजनी अञ्जल में, लिपटों लहरें सोंधी थीं ।  
 मधु मानस का बरसाती, बारिद माला रोती थी ॥  
 नीरव तम की छाया में, द्विप सौरभ की अनहों में ।  
 गायक वह गान तुम्हारा, आ मँडराया पलकों में ॥  
 हाला भी हालादल सी, वह गई अचाक लहरी ।  
 दूबा जग मूला तन मन, अँखि सिधिनार्द मिहरी ॥  
 बेसुध मे प्राण हुए जब, छूट कर उन मझारों को ।  
 उडवे ध अडुलावे थे, चुम्बन करत तारों को ॥

उस मतवाली वीणा से, जब मानस था मतवाला ।  
 वे मूक हुई झङ्कारे, वह चूर हो गया प्याला ॥  
 हो गई कहीं अन्तर्हित, सपने लेकर वे रातें ।  
 जिनका पथ अलोकित कर, बुझने जाती हैं आँखें ॥

९

तब

शून्य से टकरा कर सुकुमार करेगी पीड़ा हाहाकार,  
 बिखर कर कन कन में हो व्याप्त मेघ बन छा लेगी संसार ।  
 पिघलते होंगे यह नक्षत्र अनिल की जब छूकर निश्वास,  
 निशा के आँसू में प्रतिबिम्ब देख निज काँपेगा आकाश ।  
 विश्व होगा पीड़ा का राग निराशा जब होगी वरदान,  
 साथ लेकर मुरझाई साध बिखर जायेंगे प्यासे प्राण ।  
 उदधि नभ को कर लेगा प्यार मिलेंगे सीमा और अनन्त,  
 उपासक ही होगा आराध्य एक होंगे पतझर वसन्त ।  
 बुझेगा जलकर आशादीप सुला देगा आकर उन्माद,  
 कहीं कब देखा था वह देश ? अतल में डूबेगी यह याद !  
 प्रतीक्षा में मतवाले नैन उड़ेंगे जब सौरभ के साथ,  
 हृदय होगा नीरव अह्वान मिलोगे क्या तब हे अज्ञात ?

१०

कहाँ ?

घोर घन की अवगुण्ठन डाल करुण सा क्या गाती है रात ?

उस चिन्तित चितवन में विहास बन जाने दो मुझको उद्धार !

फिर एक बार वस एकवार !

फूलों सी हो पल में मलीन तारों सी सूने में विलीन,  
 दुलती बूंदों से ले विराग दीपक से जलने का सुहाग,  
 अन्तरतम की छाया समेट मैं तुझ में मिट जाऊँ उद्धार !

फिर एक बार वस एकवार !

१२

आँसू

यहीं है वह विस्मृत सङ्गीत खो गई है जिसकी झङ्कार,  
 यहीं सोते हैं वे उच्छ्वास जहाँ रोता बीता संसार ;  
 यहीं है प्राणों का इतिहास यही विखरे वसन्त का शेष,  
 नहीं जो अब आयेगा लौट यही उसका अक्षय संदेश ।

❀

❀

❀

समाहित है अनन्त अज्ञान यही मेरे जीवन का सार,  
 अतिथि ! क्या ले जाओगे साथ मुग्ध मेरे आँसू दो चार ? •

१३

मेरा जीवन

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास देव वीणा का टूटा तार,  
 मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार रत्न वह प्राणों का शृंगार ;

लजा जाये यह मुग्ध सुमन बनो ऐसे छोटे जीवन !  
 सखे ! यह है माया का देश क्षणिक है मेरा तेरा संग ,  
 यहाँ मिलता काँटो मे बन्धु ! सजीला सा फूलों का रंग ;  
 तुम्हे करना विच्छेद सहन न भूलो हे प्यारे जीवन !

१४

## स्मारक

भूमते से सौरभ के साथ लिए मिटते सपनों का हार ,  
 मधुर जो सोने का संगीत जा रहा है जीवन के पार ,  
 तुम्ही अपने प्राणों मे मौन बाँध लेते उसकी मद्धार !  
 काल की लहरो मे अविराम बुलबुले होते अन्तर्धान ,  
 हाय उनका छोटा ऐश्वर्य डूबता लेकर प्यासे प्राण ;  
 समाहित हो जाती वह याद हृदय मे तेरे हे पापाण !  
 पिघलती आँखो के संदेश आँसुओं के वे पारावार ,  
 भग्न आशाओं के अवशेष जली अभिलाषाओं के चार ;  
 मिला कर उच्छ्वासों की धूलि रँगई है तूने तस्वीर !  
 गूँथ विखरे सूखे अनुराग वीन करके प्राणों के दान ,  
 मिले रज में सपनों को ढूँढ़ खोज कर वे भूले आह्वान ;  
 अनोखे से माली निर्जीव बनाई है आँसू की माल !  
 मिटा जिनको जाता है काल अमिट करते हो उनकी याद,  
 डुवा देता जिसको तूफान अमर कर देते हो वह साध ;

नैना भरि भरि सब निरखोरी, राम सिया सँग खेलै होरी ॥  
 लोग नगर के सब ही आये, चहुँदिशि भीर भयो री ।  
 तुलछराय प्रभु कह करजोरी, तन मन धन आपरो री ।  
 जनम जनम को लाभ लहोरी, राम सिया सँग खेलै होरी ॥

—तुलछराय

३

वस रहि मेरे प्रान मुरलिया, वस रहि मेरे प्रान ।  
 या मुरली की मधुर मधुर धुनि, मोहत सब के कान ॥  
 मुख सोछीन लई सखियन मिलि, अमृत पीयो जान ।  
 वृन्दावन मे रास रच्यो है, सखिया राख्यो मान ॥  
 धुनि सुनि कान भई मतवाली, अन्तर लग गयो ध्यान ।  
 'वीरों' कहे तुम बहुरि बजाओ, नंद के लाल सुजान ॥

—वीरों

४

### स्त्रियों का पतन

हा हन्त नारियो ने निज धर्म को मुलाया ।  
 पाई न पूर्ण शिक्षा अभिमान घर में छाया ॥  
 पत्नी का दृष्ट पति है पति-भक्ति से सुगति है ।  
 अब हाय यह कुमति है सेवक उन्हे बनाया ॥  
 मेलों में व्यर्थ जाती भूठे गुरु बनाती ।

कुलकानि हैं गँवाती कैसा सितम बहाया ॥  
 सुत माँगती हैं कोई कोई धरीकरख की ।  
 धन के लिए किसी ने निज धर्म को गँवाया ॥  
 रा नारियों से भिक्षा एकांत में ल शिखा ।  
 होती नहीं परीक्षा गुरु मंत्र क्या सिखाया ॥  
 लम्बी अटा बढाये हैं भस्म भी रमाए ।  
 साधू के नाम को इस पापलह ने छजाया ॥  
 षगुला भगत बने हैं अघ पट्ट में सने हैं ।  
 ऐसे असुर जनों ने 'भीरा' का दिल दुखाया ॥

—सूक्तकुमारी मेहरोशा, कानपुर

५

### चेतावनी

छोटी सी ही अभी कली हूँ, शैशव अरु सक गया नहीं ।  
 यौवन का सुधिकारा अभी तो, आया है कुछ नया नहीं ॥  
 जो रसिकों को रोचक होता, अभी रुचिर वह रंग नहीं ।  
 लीला की लहरी का भी गो, अभी मुललित वमन नहीं ।  
 मधुप अभी मेरे मानस में, मधु का भी माधुर्य नहीं ।  
 सरलपने की ही प्रतिमा हूँ, आया है चातुर्य नहीं ॥  
 मधुप मुग्ध हो मत भँडराओ, अब अभी ही से मुक्त पर ।  
 लोलुपता का दोष नहीं तो, सज्जन रखेंगे तुम पर ॥

—जाहवा देवी दाचित प्रतापगढ़

६

## साधु पुरुष

जो हैं जीवन मुक्त महा विज्ञानी धर्म प्रेम आगार ।  
 सत्य शील समता संयम के जो हैं एक मात्र अवतार ॥  
 अहंकार को जीत जिन्होंने काम क्रोध को डाला मार ।  
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥  
 नयनों से तप तेज टपकता करुणा का हो रहा प्रवाह ।  
 जिनके दर्शन से मिट जाती है सारे विषयो की चाह ॥  
 जिन्हे प्रशंसा निन्दा सम है करें सत्य का सदा विचार ।  
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥  
 विषय विरागी पूरे त्यागी दुख सुख में जो एक समान ।  
 शान्त भाव ले सदा करें जो सर्वेश्वर का सम्यक ध्यान ॥  
 जाना है तप बल से जिनने सब धर्मों का सच्चा सार ।  
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥  
 तर्क-वृथा को सार रहित जो जान त्याग करते तत्काल ।  
 जो निज कानों से सुन सकते हैं जग के दुखियों का हाल ॥  
 सदाचार सम्पन्न सुजनता शील दया के जो भंडार ।  
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं भू का भार ॥  
 मन का दमन किया है जिसने वही बली है सदा वीर ।  
 तथा इन्द्रियो को विषयो से निरत किया है जिसने धीर ॥

यही वीरवर एक मात्र इस धर्म घुरी को सत्ता धार ।  
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं मू का भार ॥  
 परम उदाराराध अति पावन प्रेम भरे जो भारी हैं ।  
 कृपा दृष्टि में जिनके सारे विश्व समूह सुपारी हैं ॥  
 विश्व यधुता के सुप्रदायक भावों का जो करें विचार ।  
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं मू का भार ॥  
 सत्य प्रेम मम शिक्षा जिनकी नहीं द्वेष का है सचार ।  
 सपने में भी पार शत्रु का करें न किंचित अहित विचार ॥  
 बस्ते प्रेम धनी बन नस पर करें प्रेम का निज विस्तार ।  
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं मू का भार ॥  
 प्रेमालोक विलोक जिन्हीं का द्वेष निराचर जाता भाग ।  
 जिनके पास सिंह भी मृग को करता है शिगुवत अनुराग ॥  
 ऐसे जो समर्थ सत्कर्मी करते हैं नित पर उपकार ।  
 ऐसे ज्ञानी साधु पुरुष ही हर सकते हैं मू का भार ॥  
 —रामभारा 'चंद्रिका चंद्रमौ



### मान-मर्नाञ्जल

नीरम कुलिश कठोर घोर हा तदपि द्रवित कर छोड़ेंगी ।  
 मन-वनमाली अवेषण को धन उपवन गिरि फिर आई ॥  
 मानस मखि मालाघर के हित मानस सागर फिर आई ।  
 मुण के सार सनावन तुम यिन पलकन पलकें जोड़ेंगी ॥



कुटुकारी अँधियारी ओढ़े दुवक गगन में बैठे हो ।  
 चारु चंद्रिका की चुनरी के अवगुंठन में पैठे हो ॥  
 चल न सकेगा साज सखे । यह जब मैं कला मरोड़ूंगी ।  
 निरखो नाथ । तुम्हारे कारण हृत्कमलासन फैलाया ॥  
 छिपा भाव की धूप सुवासित नीरव स्वागत पद गाया ।  
 नयन-नीर से पद पंकज का पंक धुलाकर छोड़ूंगी ॥  
 आओ नाथ । पधारो ताली दे दे तुम्हे नचाऊँगी ।  
 करो विहार तुम्हारे हित मैं अन्तस्तली सजाऊँगी ॥  
 मानो मेरे प्राण नहीं तो मान मटुकिया फोड़ूंगी ।  
 शीतल-श्वास समीर चपेटें खाकर निष्ठुर मानोगे ॥  
 आत्म विसुध चरणों में तड़पूँ तब ही अपनी जानोगे ।  
 अपने हिय की व्याकुलता से मोह नींद को तोड़ूंगी ॥

—सुशीला देवी स्नातिका, लाहौर

८

### माँ का मन

सरलता का जो सुन्दर श्रोत, क्रोध से जहाँ न श्रोत श्रोत ।  
 तैरता जहाँ प्रणय-का पोत, दम्भ का जहाँ नहीं खद्योत ।  
 ले कभी सकता अवलम्बन, वही है मञ्जुल-माँ का मन ॥  
 जहाँ है नव-लीलानलहरी, छोह की छवि-छाया छहरी ।  
 कामनाओं की गति-गहरी, वासना-खगी जहाँ विहरी ।

प्राकृतिक पावन-प्रेम-पराग, मन्द-सौगम्य जिसमें ॥ १॥  
 मधुर मधु सा जिसमें अनुराग, न जिसमें कहीं दोष का दाग ।  
 अलौकिक जा है मोक्ष्य सुमन, वही है मञ्जुल मों का मन ॥  
 न जिसमें कभी शाप का ताप, शुभाशीशों का जहाँ क्लाप ।  
 कदापि न जहाँ अहिमय पाप, सतत हितकारी मधुराभाप ।  
 जहाँ कोमल-करुणा का वास, नहीं जिस से कदापि कुछ त्रास ।  
 शान्ति का जिसमें सुखदाभास, सदयता का है दिगंत विकास ।  
 जहाँ प्रीति प्रतापि पावन, वही है मञ्जुल-मों का मन ॥  
 निरलस जिसमें शुचि उपदेश, छुद्र-धूल का न जहाँ लपलस ।  
 जीव का जो है प्रथम प्रदेश, जहाँ ही ने निगुण अपिलेश ।  
 सगुण हो धरते मानव-तन, वही है मञ्जुल मों का मन ॥  
 जहाँ है सतत सदा भाव, जहाँ है अचल अलौकिक-भाव ।  
 रचे जो नित हित क प्रस्ताव, न जिस में द्वेष द्वेष्ट दुराव ।  
 करे जो माटे सन्तोषन, वही है मञ्जुल मों का मन ॥  
 जगत में जिसके सदृश न अन्य, न जिस में ठट्टे विचार जप य ।  
 प्रकृति यह हुई जिसी स अन्य, धन्य है बार बार जो धन्य ।  
 जगत् में कहीं न जिमसा धन, वही है मञ्जुल मों का मन ॥  
 किये मम हिम अप तप वृत्त ग्यान, मनाये देवीदेव महान ।  
 भजन-पूजा आदान प्रदान, यत्र मन्त्रादि अनेक विधान ।  
 किये जिसने मारे साधन, वही है मञ्जुल मों का मन ॥  
 जहाँ है निरवल छाया अपार, जहाँ ममता का परावार ।

जहाँ है शुभ वात्सल्यागार, न जिस में किंचित कभी विकार ।  
निछावर जिस पर तन-मन-धन, वही है मञ्जुल माँ का मन ।

—शांति देवी शुरू, प्रयाग

९

### उपालम्भ

तेरे ही कारण बस मेरे संग सनेही छूटे ।  
तू ही से बस प्रिय जीवन धन गये हमारे लूटे ॥  
तू ने ही बस बीज विमनता का मम गृह में बोया ।  
बस भयंक, तुमने ही मेरा सौख्य—साज सब खोया ॥  
आकर तुमने प्रथम कोक कुल कानन सुमन खिलाये ।  
किन्तु त्वरित विश्वास तोड़कर मिले हृदय विलगाये ॥  
अयि ! भयंक अब भी तुम तिरछे तिरछे ही बस जाते ।  
कुटिल चाल चल वक्र वदन 'कर' से विष ही बरसाते ॥  
आते हो न पास क्यों मेरे क्यों मुझ से भय खाते ।  
जाते हो बस दूर दूर ही मानो कुछ शरमाते ॥  
जो हो किन्तु नहीं अब आया प्रतीकार पाने की ।  
गये हुए मेरे सुख-धन की नहीं लौटा आने की ॥  
विमुख बने हो रचि प्रपंच मम रच ध्यान नहीं करते ।  
यदि कहती हूँ कुछ सविनय तो आप मौनता धरते ॥  
यद्यपि ज्ञान मुझे है सब विधि तुम्हें नहीं परवाह ।

लहरता जहाँ दया का सिधु, भरा है जहाँ सलिलयुत भाव ।  
 उमंगो की है जहां तरंग, अनोखा जहां नव्य नित चाव ॥  
 सुखद है जहाँ दृष्टि की वृष्टि, जहां है पावन पुण्य प्रमोद ।  
 प्रणय का बहता मंद समीर, जहाँ है वह है मां की गोद ॥  
 सरल मुख मे लाकर मुसुकान, जहां खेले थे शैशव खेल ।  
 न जिसमे चिंताये थी रंच, न था कुछ भ्रमंभट भूँठ भ्रमेल ॥  
 व्यथा बाधा पा कर भी चित्त, नहीं पाता है प्रखर प्रमोद ।  
 स्वर्ग सुख देने वाली एक, वही है केवल माँ की गोद ॥  
 उतरते हैं जिसके ही हेतु, विश्व-वन में 'होकर साकार ।  
 जगत जीवन दुख जिसके हेतु, सहन करते हैं सर्वाधार ॥  
 त्रिजग में जिस से उत्तम और, नहीं है कोई कहीं विनोद ।  
 सहज मे देती है वह एक हमे, केवल वह मां की गोद ॥  
 कमर पर लपट लपट कर जहां, न दे सकता कुछ दुख तबलेश ।  
 विरमती वहाँ प्रतीत पुनीत, राग रुचि रीति रहित सब क्लेश ॥  
 निरखता है वात्सल्य विशेष, जहाँ पर कर आमोद प्रमोद ।  
 धन्य जग जीवन जननी धन्य, जयति जय जय वर मां की गोद ॥

—चुन्नी देवी विनोदनी, प्रयाग

११

### सान्त्वना

बहुत दिनों तक कर चुकने पर स्नेह सना सुन्दर साधन ।  
 प्रयत्न प्रेम की पर्ण कुटी मे कर चुकने पर आराधन ॥

स्वच्छ पवित्र प्रेम-मन्दिर मे, सन्तत सुखी विचरना स्वामी ;  
 अबुध पुजारिन जान इसे, अपराध न चित में धरना स्वामी ।  
 बुद्धिहीन की प्रेम अस्तुती, प्रेम भाव से सुनना स्वामी ;  
 मूल तत्व सब भाव समझ कर, फिर निज मन में गुनना स्वामी ।  
 विकल हृदय की सुप्त कली को, कर उपचार खिलाना स्वामी ;  
 शोक ताप सन्तापित मन को, आश्रय-दान दिलाना स्वामी ।  
 प्रेम भिखारिन की आशा पर, ब्रज न कभी चलाना स्वामी ;  
 निज वियोग की तीक्ष्ण अग्नि मे, हाथ । न कभी जलाना स्वामी ।  
 प्रेम पूर्ण सम्भाषण ही मे, स्वर्ग-राज्य दिखलाना स्वामी ;  
 मूर्ख सहचरी की मूलों पर, कभी न तुम मचलाना स्वामी ।  
 काम ताप मे तपी हुई को, ब्रह्म ज्ञान सिखलाना स्वामी ;  
 व्यर्थ विचार तर्कनाओं को, कभी न मन विचलाना स्वामी ।  
 जीवन जटिल समस्याओं को, कभी कभी सुलझाना स्वामी ,  
 विषय वासना सूत्र लगा कर, पर न कभी उलझाना स्वामी ।  
 कठिन कठोर विषम वचनो से, कभी न मुझे रुलाना स्वामी ,  
 यह दासी चरणों की रज है, इसे न कभी मुलाना स्वामी ।

—ज्याम देवी, आगरा

१३

- कर्तव्य

कर्तव्य देव ! तव यों महिमा बखानी ।

जाती किसी विधि कभी हम से न जानी ॥

सेवा समस्त कर कौन सका तुम्हारी ।

जानी गई न कुछ भी तब नीति न्यारी ॥

१४ —पार्वती देवी शुक, प्रयाग

उनके प्रति

विरह विधुरा के हो तुम प्राण, तुम्हीं हो मञ्जुलता की खान ।  
 दीन-दुखियों के हो तुम त्राण, दुष्ट जन का हरते अभिमान ॥  
 पुष्प की सुरभित स्निग्ध सुगन्ध, तुम्हीं हो कलियों की मृदु हास ।  
 तुम्हीं मधुकर वन होकर अन्ध, कराते हो अपना उपहास ॥  
 मनोहर उपवन मे हो मौन, विहँसते हो तुम प्रातःकाल ।  
 गले मे निर्मल मंजुल दिव्य, चमकती है मुक्ता की माल ॥  
 नदी की नव उज्ज्वल जल-धार, तुम्हीं हो लोल लहर के बीच ।  
 गरजते बादल वन साकार, तप्त भूतल को देते सींच ॥  
 तुम्हीं करते हो हास्य विनोद, तुम्हीं करते सबका उपहास ।  
 तुम्हीं ले करके सबको गोद, खेलाते गाते देते प्रास ॥  
 हमारी नैया है मँझधार, तुम्हीं हो इसके खेवनहार ।  
 उबारो इसको पार उतार, तुम्हीं पर है सब दारमदार ॥

—विमला देवी शुक्ल, प्रयाग

१५

उससे

आह ! बजाकर तार ताल से हे मेरे व्यापक छवि मान !  
 इस अनन्त पथ पर भी आकर छेड़ दिया क्यों मादक गान ॥

व्यर्थ के ढकोसलों को देते जो ढकेल कही,  
 मिला नहीं देखने को रूप में बिगार का ॥  
 व्यर्थ धन धाम होता देश भी मुदाम होता,  
 दुनिया में नाम होता जीवन के सार का ।  
 बुद्धि की प्रतिष्ठा होती न्याय-नीति-निष्ठा होती,  
 पड़ता न भोगने को भोग बुरी हार का ॥  
 सीखो मान करना समान अधिकार साथ,  
 आदर उचित देना सीखो सीख गुण की ।  
 देता जन्म जग में जो मनुज समाज का यों,  
 करता है सृष्टि वही अवला-सुमन की ॥  
 कान देता सुनने को देखने को आँख देता,  
 आनन समान देता बुद्धि मुनि गन की ।  
 सरल सनेह होता विमल विवेक होता,  
 समता का ध्येय ममता भी मातृ-मन की ॥

—लीलावती देवी, लखनऊ

१८

### निश्वास

जाती है तू अनिल साथ तू अरी आह से भरी उसास ।  
 लेती जा तू यह दो आंसू मेरे भी प्रियतम के पास ॥  
 जाकर उनकी उपल मूर्ति को तनिक इन्हीं से देना सींच ।

जेहि कर कूवरि सीधो कीन्हो, जेहि कर गोप वचाय लिये रे ।  
 जेहि कर जगत विचित्र बनायो, जेहि कर प्रभु मुर काज किये रे ॥  
 सोइ कर श्याम धरहि 'श्यामा' सिर तबहुँ कि भव सन्ताप हिये रे ।  
 जेहि कर विषधर कालिहि नाथ्यो, जेहि कर अम्बर फेर दिये रे ॥

—श्यामदाता देवी, कानपुर

२२

## भ्रमर-गीत

प्रश्न

भ्रमर ! तू क्यों होता प्रेमान्ध ?  
 जग में प्रेमी दुख पाते हैं, नहीं ज्ञात मकरंद ?  
 इससे कहती हूँ मत आना, कभी हमारे फद ।  
 माना, कमल परम कोमल है, उज्ज्वल है ज्यों चन्द,  
 पर आखिर वह पंकज ही है, तू रसिको का इन्द्र ।  
 नाच नाच कर उसके ऊपर, क्यों गातानित छंद ?  
 नहीं जानता, संध्या होते, होगा खिलना बंद ?  
 रह तू मुझ से दूर सदा ही, सुन ले ऐ मतिमद ॥

उत्तर

भ्रमर है नहीं किसी के फद ।  
 कोमल कमल परम उज्ज्वल है, नहीं भ्रमर है अन्ध ।  
 उसकी ही खुशबू भाती है, उसकी ही दुर्गन्ध ॥



किन्तु आशा की किंचित क्षीण, रश्मि का पाकर भी आभास ।  
 चूमता है चरणों की रेणु, मधुप करता मधु में विश्वास ॥  
 मान उसको रमणी का मान, 'मान' पर खो देता निज ताप ।  
 पोंछता है नयनों का नीर, सुनाता है अपना संताप ॥  
 प्रणय में प्रेम-नेम का भाव, भाव ही है जीवन का सार ।  
 भाव में भाव-हीनता देख, मधुप भावुक करता गुजार ॥  
 तुम्हारी निष्ठुरता पर साँस, छोड़ता है ज्वाला का स्रोत ।  
 इसीसे तो तब निष्ठुर गात, अग्नि से होता ओतप्रोत ॥  
 रूप का वह सारा अभिमान, तरुण-यौवन का उन्मद् वेष ।  
 सरसता सौरभ का सुविकास, नहीं रहता कुछ भी अवशेष ॥  
 प्रिया का यह सुरमाना देख, देख उसके जीवन का अन्त ।  
 बहाता है नयनों का नीर, नीर में गाकर राग अनन्त ॥  
 कभी पुष्पो के जाकर पास, कभी लतिका के सुन्दर देश ।  
 प्रेम का गाता है वह गान, प्रणय का ही देता सन्देश ॥  
 प्रेम जीवन का है उत्सर्ग, प्रेम ही है जग का सुविधान ।  
 प्रेम है अखिल विश्व का तत्त्व, प्रेम ही में मिलते भगवान ॥  
 प्रेम-रस का कर सुन्दर पान, कली का छुट जाता अभिमान ।  
 लताएँ हो जातीं नवनीत, हाय ! नारी का 'चञ्चल-मान' ॥  
 नहीं करता है वह दृगपात, नहीं करता कलियों से प्रेम ।  
 प्रिया की निष्ठुरता कर याद, निभाता है प्रेमी का नेम ॥  
 लताओं की कलियों के पास, और रोदन करता है नित्य ।

कुंजन निकुंज आवे, प्रभु प्रेम गीत गावे,  
'वाला' हरी चरन विन, कोई नहीं सगा है।

—सत्यबाला देवी

२५

### आशा

पीड़ा का मूक रुदन बनकर दुष्टा का रक्त बहाएगा।  
निर्धन प्राणों का आह पुंज भूतल पर क्रान्ति मचाएगा ॥  
अत्याचारों का प्रबल वेग अबलाओं के आँसू कराल।  
आरत भारत पर एक धार विद्युत सा बल चमकाएगा ॥  
देशानुराग का पागलपन रग रग में फड़का कर फड़कन।  
बलिबेदी पर बलि दे जीवन भारत स्वाधीन बनाएगा ॥

—समेश्वरी देवी गोयल की० पृ०

२६

### नवयुवकों के प्रति

अपमानित हो ठोकर खाते सदियों से सोये पड़े हुए।  
प्राचीन सभ्यता सदाचार वैभव सब खोये पड़े हुए ॥  
इस पराधीन अरु मृत-प्राय जर्जर समाज की सौंस तुम्हीं।  
दुखिया माँ की अभिलाष तुम्हीं इन तीस कोटि की आस तुम्हीं ॥  
हो जाओ बलिदान देश पर कायरता का नाम न लो।  
परताप शिवाजी के वंशज मत पीछे हटना बड़े चलो ॥

देखते परमानन्द स्वरूप, नेत्र हो गये स्वयं ही बन्द ॥  
 पधारे एक कंस के हेतु, लिया बन्दी-गृह में अवतार ।  
 आज भारत में अगणित कस, कर रहे भारी अत्याचार ॥  
 सुना दो श्रीमुख से फिर आज, कर्ममय गीता का वह ज्ञान ।  
 अर्थ का हम कर रहे अनर्थ, धर्म के तत्वों से अनजान ॥  
 हृदय में साहस का संचार, करे श्रीकृष्ण तुम्हारी मूर्ति ।  
 तुम्हारा जन्म दिवस यह आज, जगादे जीवन की स्फूर्ति ॥  
 दया कर सुन लो यही पुकार, वचन देकर मत भूलो नाथ ।  
 तुम्हारी भारत लीला-भूमि, दिखा कर लीला करो सनाथ ॥

—राजकुमारी श्रीवास्तव, जयलपुर

२८

पद्मिनी

देवि ! तुम्हारे गुण गौरव की कीर्तिध्वजा फहराती है ।  
 उसे देख कर प्रमदा जन भी भूली नहीं समाती हैं ॥  
 तुमने उस प्रकाश की उज्ज्वल, सुन्दर झलक दिखाई है ।  
 सती-धर्म का पथ दिखला कर, जीवन-ज्योति जगाई है ॥  
 पूर्व समय में औरों ने भी, कर-कौशल दिखलाया था ।  
 रण-चण्डी सम ग्लेच्छ दलों के, छक्के खूब छुड़ाया था ॥  
 परम अग्रणी बन कर तुम ने, देश जाति उत्थान किया ।  
 अग्नि-समर्पण किया सखी सँग, जीते जी सम्मान किया ॥

३०

गंगा

पूजि विरचि के पावन पाँवड़े चीरि के क्षीरधि को उमहा है ।  
 शंकर शीश कलाधर चूमि विभूति भभूति की भूरि लहा है ॥  
 आनि भगीरथ सोई यहाँ अघ ओघ भयानक काल दहा है ।  
 मोहन गग कि धार किधौ वसुधा में सुधारस जात बहा है ॥

—कमला देवी मिश्र, लखनऊ

३१

मेरा शृंगार

शौक मुझको हो कभी यदि हाथ जेवर का प्रभो ।  
 तो भरे उपकार-कंगन से मेरे कर हो विभो ।  
 शीश की वेनी अगर भगवन, मुझे दरकार हो ।  
 शीश तक करदूँ निछावर देश का उपकार हो ॥  
 नाथ, क्यों उर के लिए अब जेवरों की चाह हो ।  
 है वहाँ तू, जोश का तोड़ा भरा उत्साह हो ॥  
 ऐसे गहनो से सखी शृंगार करिये आप भी ।  
 झूठे गहनो से न होंगे दूर मन के ताप भी ॥

—प्रेमप्यारी देवी

३२

समाज पर हिन्दू-विधवा

द्रवित हुआ है हे समाज तू, सुन विधवाओं का क्रन्दन ।

दम्पति जीवन को समझा हो, जिसने तन का भोग विलास ।  
 खोकर इन्दिय के सुख सारे, टूट गई हो जिसकी आस ॥  
 जिसे न हो इस चञ्चल मन की, दुष्प्रवृत्तियों पर अधिकार ।  
 अनुभव किया न जिसने सयम, के बल का आनन्द अपार ॥  
 विषय-चामत्ता को ही समझा, जिसने जीवन का सुख-मूल ।  
 समझ न पाई सूक्ष्म चरित का-गौरव जिसकी बुद्धि-स्थूल ॥  
 जिसने कभी न देखा गहरे, अमित प्रेम का पावन रूप ।  
 जिसका कच्चा हृदय न सह सकता वियोग की तीखी धूप ॥  
 जिसका प्रियतम है केवल, वासना-वृत्ति का साधन मात्र ।  
 चिर वियोग में जिसे चाहिये, सदा नवीन प्रणय का पात्र ॥  
 वह क्या जाने विधवाओं के, जीवन का महान गौरव ।  
 जाकर पूछो हिन्दू रमणी से, इसका सच्चा वैभव ॥  
 कैसे भूला जा सकता है, प्रेम किया जो पहली बार ।  
 युगल आत्मा का बन्धन है, प्रेम न बनियो का व्यापार ॥  
 दुख भी सुख है, रुदन हास है, अश्रु बिन्दु मुक्ता का हार ।  
 लाख मिलन बलिदान विरह पर, जहाँ हृदय का निर्मल प्यार ॥  
 जिसके कारण पुरुष न भोगा—करते दुसह विरह का छेश ।  
 उस विस्मृति का ललनाओं के, सरल हृदय में नहीं प्रवेश ?  
 जो नारी के स्फटिक हृदय पर, पड़ता प्रथम प्रणय का दाग ।  
 मिटा न सकते उसको घोंक, कुटिल काल के कोटि तड़ाग ॥  
 क्षण-भंगुर काया का रमणी, चाहे सौंपे वारम्बार ।

करना स्वयं-कर्तव्य का पालन, बदला करते हो नित नीति ।  
 कहते हो चञ्चल नारी को, पर उसकी यह कभी न रीति ॥  
 पुनर्व्याह की घृणित बात सुन, विधवा को आती है लाज ।  
 धूर धूर कर खो दी सारी, लज्जा तुमने पुरुष-समाज !  
 कभी न जिसके विषय-वासना, सागर की मिल पाई धाह ।  
 करता जाता आजीवन जो नर—सदा व्याह पर व्याह ॥  
 जिसकी लाश चिता पर करती, जाती पुनर्व्याह की चाह ।  
 वह क्या समझे उचित रीति से, विधवा की करुणामय आह !!  
 दिन दिन गिरते ही जाओगे, ढीला कर समाज-बन्धन ।  
 सीखो और सिखाओ जग को, करना विधिवत् आत्म-दमन ॥  
 हमको पातिव्रत रखने दो, तुम भी पत्नी-व्रत सीखो ।  
 विषय-वासना में निशि-दिन, हे बन्धु न रहना रत सीखो ॥  
 हमको समता दो श्रद्धा के सहित, हृदय से करके प्यार ।  
 हमें न समता दो तुम देकर—अपना सा अनुचित अधिकार ॥  
 स्वयं छोड़ दो जो कुछ हम पर, करते हो तुम अत्याचार ।  
 हमें सिखाओ मत बदले में, करना वैसा ही व्यवहार ॥  
 तुम्हें सुवारक रहे बन्धुवर ! करना चाहो जितने व्याह ।  
 हमें न रौरव का दुख सह कर—भी है पुनर्व्याह की चाह ॥  
 हाय बन्धु ! विधवा भगिनी की, रक्षा से करते इन्कार ।  
 ले सकते हो क्या पति वन कर ही मेरी रक्षा का भार ॥

—कृष्णमारी बघेल, रींग

पाने को तुम्हारे प्राण आकुल हुए हैं अति,  
 सुख से समाकुल सनेह साज साजो नाथ !  
 आतुर हुए हैं देखने को मंजु मूर्ति नैन,  
 प्यारे प्रेम-बैन-चारि उर उपराजो नाथ !  
 गुन-गान गाती गिरा सुन अब जाओ उसे,  
 नीके 'नलिनी' के नेम-नेह से निवाजो नाथ !  
 —राजराजेश्वरी देवी 'नलिनी'

३४

### स्तुति

जय प्रभु सकल क्लेश दुःखहारी ।  
 जय अनन्त लोकेश मुरारी ॥  
 जय श्रीकान्त लोक सुखकारी ।  
 जयति सुरेश जयति असुरारी ॥  
 जय विश्वेश विश्व हितकारी ।  
 विश्व-प्राण विभु विश्व-विहारी ॥  
 जय सुख रूप सर्व सुखदाता ।  
 जय जग ज्योति जयति जग प्राता ॥  
 'ललिता' है प्रभु शरण तुम्हारी ।  
 करो कृपा निज ओर निहारी ॥

—ललिता पाठक एम० ए०

( सुपुत्री स्वर्गाय प० श्रीधर पाठक )

कौन पिता के गुरु-स्नेह को, पुत्रों को समभावेंगा ?  
 कौन जननि का हृदय खोलकर, मातृ-स्नेह दिखलावेगा ?  
 कौन सहोदर भ्राताओं का, उत्तम प्रेम सुनावेगा ?  
 कौन परम प्रिय मित्रों का प्रिय पावन प्रेम बतावेगा ?  
 कौन प्रकृति का बिना सुकवि के, सुन्दर दृश्य दिखावेगा ?  
 कौन पुराने वर वीरों का, कीर्ति-सुधा बरसावेगा ?  
 कौन पतिव्रत नारी का पति, प्रेम प्रगाढ़ सुनावेगा ?  
 कौन सती सीता की हमको, मन में थाद दिलावेगा ?  
 कौन उठाकर युग युग बीती, बातें हमें सुनावेगा ?  
 कौन मरे दिल में भी फिर, वीरत्व-स्त्रोत बहावेगा ?  
 कौन जगत को माँज-साफ कर, सच्चा रूप दिखावेगा ?  
 कौन जगत की नश्वरता का, पूरा पाठ पढ़ावेगा ?  
 कौन दुर्ग वन नगर आदि को, बहिनो, रुचिर बनावेगा ।  
 कौन कृपा-सागर की महिमा, हम सबको बतलावेगा ॥  
 केवल कविगण ही ऐसे हैं, जिनकी कविता से हमको ।  
 मिलती एक अनोखी शिक्षा, धन है ऐसी कविता को ॥

—चंद्रावली भाटिया, फानपुर

३७

तेरी भूल

तू समझे है, बीत रहा है उनका जीवन सुखमय शांत ।  
 एक बार ही आकर लख ले हैं वे कितने दुखी अशांत ॥



हृदय-कुंज के सुन्दर सुरभित भाव-कुसुम चुन लाऊँगी ।  
 बड़े प्रेम से 'उन्हे' चढ़ाकर अपना प्रेम निभाऊँगी ॥  
 द्रव्य-भेंट के बदले तो मैं स्वयं भेंट चढ़ जाऊँगी ।  
 इसी तरह की पूजा करके 'उनका' मान बढ़ाऊँगी ॥  
 अपने निर्मल मानस का मैं 'उनको' हंस बनाऊँगी ।  
 भौँति-भौँति के कौतुक करके 'उनका' चित्त चुराऊँगी ॥  
 उनके ही दरवाजे अब मैं भीख माँगने जाऊँगी ।  
 सम्मुख जाकर उच्च स्वर से प्रेम-पुकार लगाऊँगी ॥  
 प्रेम-अश्रु-मुक्ताओं का मैं सुन्दर हार बनाऊँगी ।  
 भक्ति-भाव से, सरल स्नेह से 'उनको' ही पहनाऊँगी ॥

—तारादेवी पांडेय, शल्मोष्ठा

३९

### स्वागत

अभी हुआ था राज-तिलक बन गये अभी तुम सन्यासी ।  
 फेंक राजसी ठाठ हुये स्वेच्छा से बन्दीगृह वासी ॥  
 सो न सके गद्दों पर सुन कर भारत माँ का हाहाकार ।  
 रह न सके सुख से महलों में सुन कर उसकी करुण पुकार ॥  
 आँखें रखते हुये सके तुम देख न उसकी वरवादी ।  
 छिनी देख कर रह न सके उसकी सदियों की आज्ञादी ॥  
 उसके लिये अतः तुमने जीवन का सारा सुख छोड़ा ।  
 सौंप दिया तन, मन, धन—तन, मन, धन से अपना मुख मोड़ा ॥

४०

## प्रेमाधिकार

देकर दर्शन चाहे प्रियवर, तुम हमको कृतकृत्य करो ।  
 अथवा रहकर दूर-दूर ही नित्य हृदय को व्यथित करो ॥  
 इच्छा हो, तो जी भरकर तुम नित मेरा अपमान करो ।  
 अथवा होकर सद्य, प्रेममय प्रकट मधुर मुसकान करो ॥  
 दुख देने मे सुखी रहो यदि, तो तुम नित नव दुख देना ।  
 किन्तु न स्वत्व हमारा तुम यह हमसे कभी छान लेना ॥  
 होगा न्लान नहीं सुख मेरा, चाहे जो व्यवहार रहे ।  
 रक्खूँगी मैं मन-मंदिर मे, पूजा का अधिकार रहे ॥

—लीलावती 'सत्य', अल्मोड़ा



# परिशिष्ट

## कठिन शब्दों का अर्थ

### मीरावाड़े

मनुआँ=मन । सुण=सुन । कूँ=को । भीजै=सरायोर । आवहे=आते  
हो । जीवण=जीवन । गमायो=दिताया । मूरताँ=उपवास । नैण=आँख ।  
ऊयी=ऊय गई । चित चोरी=हृदय को चुराने वाले । छूँ=हूँ । भव=  
संसार । सोग=शोक । निवार=दूर करो । तलब=इच्छा । थष्ट कर्म=  
आठ काम । आवागमन=मरना और उत्पन्न होना । ग्हाँरो=हमारा ।  
थानै=उनको । देख्यो=देखने से । कुलरा=कुटुम्ब । हराणी=दुष्ट । मद-  
मातो=मतवाला । दस्त=हाथ । आँइस=अकुश । भारत=महाभारत की  
लढाई । ग्हाँने=मुझे । थारे=तुम्हारे । घणो=वना । उमावो=उत्साह ।  
वाटणियाँ=मार्ग, रास्ता । आँखडियाँ=आँखें । फाँसडियाँ=फंदा । दाम-  
दियाँ=दासी । साँसडियाँ=साँसे । खेवडियाँ=खेने वाला । अधर=थोठ ।  
राजित=शोभा देती है । फटितल=कमर में । नूपुर=चिछुथा । रसाल=  
सुन्दर । वल्ल=वत्सल । छोई=मट्टा । अमर अँचाय=अमर करने वाला  
अमृत । त्रिरछ=वृक्ष । सुरत=स्मरण । फाँसुरी=फंदा । जेतइ=जितना ।  
तेतइ=उतना । फरवट काशी=काशी में एक देवस्थान । चहर=रातरज ।  
भगवा=लँगोटी लगाना । छो=हूँ । वगसरण=गुणी । नेहडी=प्रेम ।  
विसवास=विश्वास । सँमुद=समुद्र । सपेद=सफेद । पाना=पान । लाघन=

धोका देना । चंचरीकन=भौरे । चाप=कुड । घसाति=वश । मीसी=मुर-  
झाना । दिगम्बर=तंगे ।

### छत्रकुँवरि वाई

दिसि=द्योर । मपुरी=मीठी । बिरियाँ=समथ । लाह=लाभ । अपन-  
पौ=अपनापन । उरन=छिपना । छकड़ाप=पूरी तरह से । सामिल=  
शामिल । अचारी=देर ।

### प्रवीणराय

सीतल=शीतल । घनसार=सुगंधित चीज़ें । अमल=स्वच्छ । आछे=  
अच्छी तरह । प्रतिपारि=पूरा कहूँगी । कोक=चकवा । कलधौत=  
उज्ज्वल । हेम=सोना । उरग=सांप । इदु=चंद्रमा । कुरकुट=मुर्गा ।  
सारंग=मोर । खरी=रुढ़ी । छीनी=कमजोर । नकारा=नगारा । परदार=  
दूसरे की स्त्री । यपु=शरीर । रत्नाकर=समुद्र । हिरनाक्ष दैयत=हिरणाक्ष  
राक्षस । छडाई के=छुड़ाकर । वरिवंद=राजा । संगोत=संगोत्र में ।  
घसाति=वश । विसासिनी=विश्वास देने वाली । कपोलन=गालों ।  
कातर=दुखी । सैन=इशारा ।

### दयावाई

जस=यश । लीले=निगलती है । दरयो=छिपा । नासा=नाक ।  
सझ=सझा । हलकाओ=दुख देते हो । अटपटो=कठिन । मतो=राय,  
बुद्धि । निक्सत=निकलता है । विकार=बुराई । मनिका=माला ।  
धमकि=जबदी से । सुरति=स्मरण । नटिनी=नट की स्त्री । तम=अंधेरा ।

होकर । अनादी=मूर्ख । विनवै=प्रार्थना । जमी=जमीन । सुमुद=समुद्र । तातो=नाराज, गर्म । सियरे=खांत, शीतल । महत्=महत्त्व । मङ्ग=मङ्गली । आक=मदार । सरवर=नालाब । खाविन्द=स्वामी । खालक=दुनिया का मालिक । पिलकत=दुनिया । फना=नाश होने वाली । बाँग=पुकाराना ।

### प्रतापकुँवरि वाई

हुन्दर=दुख । भे=हुए । जाण=नगर का नाम । उझाह=उरमाह । अनत=अधिक । तुरग=घोड़ा । पधराई=स्थान दिया । असन=भोजन । बसन=कपड़ा । भीतिन=दीवारों । नौबत=राजा यजना । बिजन=व्यंजन । कौबेर=कुबेर । निरत=जगे हुए । दोय=दो । विद्रुम=हीरा, मोती । चमर=चँवर । सोपान=मोदी । गुणातीत=अधिक गुण । काया-पुर=शरीर के पुर में । डडोत=नमस्कार । ओछी=नीच । घीस=भुलाना । तणी=ननी हुई । सुरत=स्मरण । अनहद=भक्ति के रँग में लीन होना ।

### सहजोत्राई

भुगतन्त=भुगतना है । आव=तेज । थोथे=लोसले । तिमिर=अँधेरा । निस्वै=निश्चय । धारणा=इच्छा । कोटो=करोड़ों । मप्ये=थोच में । जठर=वृद्धावस्था । भिष्टल=विष्टा, मैला । धिरग=धिकार । नगसिय=नख से शिर तक । सुलङ्घन=अच्छा लक्षण । हथधर=पशोपेश में । अजपा=हृदय में स्मरण करना । सूं=सू । अष्टादस=अठारह पुगट-चार वेद । पट=दश शस्त्र । सिलगता=बलता है । साजन=पजन ।

वाली । दिक्कल=दूज का चाँद । धक्क=वचन । थापति=दुख । दाधि=दधि ।

जुगलप्रिया

अलि=भौता । पिक्क=कोयल । कीर=गाता । सौं=सौगाथ । दादिन=मगल गाने वाला । मनया=हृदय का । करन=रुत करन वाला । धन पायिनी=पक्षि, न पान वाला । तुन=दुम । कैची=चा तो । स्वात=स्वाती । इपित=मुन्दर । दुरा=दिपा । मजुता=मख का । द्यु=छरार । मठर=नहीं तो । अनुचरनी=पाव चढ़ने वाला । मुरसरि=गंगा । रवि=प्रेम । भात्रै=भाग पाते हैं । झारा=राग । गिरिवर=गोवर्द्धन । माध मव=माधवाचार्य का मत । पधा=छोमा दवा हैं । काडन=छेड़ना । तखन=पूजा ।

रामप्रिया

गहा री=पकड़ लिया । मार=मगर । राखिब साधनम्=कमल के समान धारण वाले । वैठाप-वन्न=तीनों ठाप के गट्ट करने वाले । अविनाश=विनका नाश न ॥१॥ । माधन=मोच देने वाले । अरिगजनम्=दुरमन का मारन वाले । विदारक=नष्ट करने वाले । हृवाकरम्=हृषा करन वाले । दिनमधि=सूर्य । अरविम्ह=कमल । धमार=एक राग । पचवाण=अमदुष । इल्लिजा=याचना ।

गिरिराज कुँवरि

दिगना=कन्नड़ का टाका । कुटुम=कुटुम्ब । वाप=मुँहे । सगरा=सारा । मिन्पा=निद्रा ।

रघुवंश कुमारी

तोय=पानी । हेम=सोना । राती=त्रेमिका । केलि=खेल । सुरधाम=स्वर्ग । करक=दुःख । विरिया=यमय । समुद्र=समुद्र । रद=दांत । मोहनक=कृष्ण जी । वयरिया=हवायें । प्रत्यच्छर्हि=प्रत्यक्ष ही । सामुहे=सामने । दुकूल=रूपड़ा । परजन=प्रजा में । एकमति=एक राय होकर ।

राजरानी देवी

विपम=कठिन । प्रभजन=वायु । ज्योत्सानल=चाँदनी की आग । प्रखर=तेज । ताप=गर्मी । भलकावली=गलों का समूह । तमाल=एक वृक्ष । पतन=गिरना । कलुपित=पापी । नृशसों=नीचों । हरिद्रा=हल्दी । रंजित=लगी हुई । ग्रथि=गाँठ । कान्तार=पर्वत । किंकिणी=कमर की करधन । भ्रू=भौ ।

सरस्वती देवी

कति=कितनी । तोय=जल । धरनी=परवाली । एकन्त=एकान्त । जुगलयाम=शाम-सुबह । लीक=मर्यादा । ऊर्द्ध=ऊपर । विसात=औकात । हस्त-क्रिया=सीना-पिरोना । सूचीकारी=सुई का काम ।

बुन्देलावाला

उद्दालक=उत्तेजना देने वाले । शरिगण घालक=दुश्मनों को मारने वाले । फारिस=कलंक, काला । शर्दी=टफा । शमिय कीट=नीछा में लगने वाले कीड़े । अमरेश=इन्द्र । वेदान्ती=विना दात वाला । मंगूर=एक भक्त जो कासी पर चढ़ा था । दुहिता=पुत्री ।

प्रियंवदा देवी

पीक=पान के बीड़ा का रस । भोगवाद=सांसारिक कार्य । अहम्=मैं, खुद । दुस्तर=कठिन । दिगन्त=दिशायें ।

सुभद्राकुमारी चौ

अतुराज=रसन्त । तदित=विजय । अनो=पूर्णमा । अनुगामी=पीछे चलने वाला । मानिनि=मान करने वाली । अलिप्य=भौरा । कालिन्दी=यमुना ।

महादेवी वर्मा

निशा=रात । राकेश=चन्द्रमा । अलक=गल । मधुसाम=वसंत । घात=हवा । तुहिन=धोस । निर्वाण=मोक्ष । उन्माद=मत्वालापन । मलयानिल=मलय वायु । सौरभ=सुगंध । चितेरा=चित्रकार । हीरक=हीरों का । निर्मम=बिना प्रेम वाला । उच्छ्वास=मांस लेना । चितिज्ञ=शासमान । अनुभूति=अनुभव । सूक=गूंगा । दूरागत=दूर से आई हुई । स्वमिल=स्वप्न की । आसव=पार । अन्तर्हित=नष्ट हो गई । अवगुंठन=घूँघट । भक्तावात=भक्ता की वायु । अक्षय=न नष्ट होने वाला । शीर-निधि=दूध का समुद्र । सुप्त=मोता हुआ । सजीवन=नंजीवनी चूटी । पारावार=समुद्र । वारीश=समुद्र । पसार=धोना । घादं=द्रविण ।





# कथा-प्रसंग



## नारद

नारद जी पूर्वजन्म में वेदवादी ऋषियों की दासी के पुत्र थे। माँ ने इन्हें ऋषियों की सेवा के लिये रख दिया था। ये मन लगाकर धृद्धा-पूर्वक उनकी सेवा करते थे। उन मुनियों का जो जूठन बचता था उसी को खाकर अपना पेट भरते थे, इसके प्रभाव से उनका अन्त करण शुद्ध हो गया। ऋषियों ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें उपदेश दिया जिससे उनके मन में दृढ़ भक्ति पैदा हो गई। ऋषियों के चले जाने पर कुछ दिन बाद उनकी माता सर्प काट लेने के कारण मर गई। तब ये उत्तर दिशा में जाकर तपस्या करने लगे। लेकिन अनुपयुक्त शरीर होने के कारण ध्यान जमता नहीं था। एक दिन काल पाकर उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया और जब ब्रह्माजी जगत् की रचना करने लगे तब मरीच, शंगिरा आदि ऋषियों के साथ उत्पन्न हुए। तब से वे घीणा लिये सर्वा हरिगुण गाते विचरा करते हैं, उनकी गति कहाँ भी नहीं रुकती।

---

## अहिल्या

एक बार ब्रह्माजी ने अपनी हृद्धा से एक परम मनोहर कन्या उत्पन्न की। जिसकी सुन्दरता देखकर सभी मोहित होते थे। ब्रह्माजी उमे

ले गये। जब मुनिजी के पुत्र परशुरामजी को यह समाचार मालूम हुआ तब उन्होंने अपना फरसा लेकर सहस्राबाहु पर चढ़ाई की। सहस्राबाहु ने उनके मारने के लिये १७ अक्षौहिणी सेना भेजी, उसे परशुरामजी ने काट डाला। इस पर जब सहस्राबाहु लड़ने आया तब उसे भी मार डाला।

### गणिका

सतयुग का परशुराम वैश्य र्वासरोग से मर गया, तब उसकी स्त्री अपना कुल-धर्म छोड़कर स्वजनो से दूर जाकर वेश्यावृत्ति करने लगी। एक दिन एक बहेलिया एक सुगो का बच्चा बेचने आया। उसने सुगो खरीद कर पुत्राभाव में उसे पुनर्वत् स्नेह से पाला और उसे रामनाम पढ़ाया। रामनाम पढ़ाते पढ़ाते दोनों एक ही समय में मर गये, रामनाम के उच्चारण के प्रभाव से दोनों की मुक्ति हो गई।

### गज

सतयुग में क्षीरसागर के त्रिकूट नामक पर्वत में वरुण देव का ऋतुमत नामक दागीचा था; एक दिन उस दागीचे के सरोवर में एक मदमस्त गजयूथपति हथिनियों सहित नहा रहा था। उसी समय एक बलवान् मकर ( ग्राह जो पूर्व जन्म में हूह नाम का गन्धर्व था ) ने उसका पैर पकड़ लिया। गजराज तथा उसके साथियों ने भरमक उससे छुड़ाने के लिये चेष्टा की परन्तु कोई भी उसे जल से बाहर न

### प्रह्लाद

जब प्रह्लाद अपनी माता कयाधु के गर्भ में थे, उस समय एक दिन नारदजी ने आकर उनकी माँ को ज्ञानोपदेश किया। माँ को तो ज्ञान नहीं हुआ, पर गर्भ के बालक को ज्ञान हो गया। प्रह्लाद रामजी के बड़े भारी भक्त हुए, इनके लिये भगवान् को नृसिंह अवतार धारण करना पड़ा जिसकी कथा लोक प्रसिद्ध है।

---

### शवरी

यह जाति की भीलनी थी, मतङ्ग ऋषि की सेवा किया करती थी; जब ऋषि परमधाम को जाने लगे तो इसने भी साथ ले जाने का हठ किया। परन्तु ऋषि ने कहा कि तू अभी यहीं रह, तुम्हें त्रेता में भगवान् के दर्शन मिलेंगे। गृध्र को परमधाम देकर भगवान् शवरी के आश्रम में गये, भगवान् ने उसके घेर खायें और उसे नवधा भक्ति का उपदेश दिया। शवरी रामजी को सुश्रीव की मित्रता का संकेत करके उनके चरण कमलों का ध्यान धर कर गोगाम्नि में देह जलाकर परमधाम को गई।

---

### जवन

जवन नाम का एक पापी ग्लेच्छ था, वह अपनी वृद्धावस्था में एक दिन शौच के उपरान्त आचदस्त ले रहा था कि उसे एक शूकर ने जोर

### श्वान

श्रीरामजी ने अयोध्या के एक कुत्ते की नालिश पर एक सन्यासी को दंड दिया था। यह कथा बहुत प्रसिद्ध है। केशवदासरूपी श्रीराम-चन्द्रिका में इसकी कथा सविस्तर वर्णित है।

---

### उद्धव

उद्धव श्रीकृष्णजी के मित्र थे। इन्हें श्रीकृष्णजी ने भ्रज की विरह, विधुरा गोपियों को समझाने के लिए भेजा पर इन्होंने गोपियों को यह उपदेश दिया था कि तुम निर्गुण परमात्मा की उपासना करो।

---

### कुंवरी

कंस की दासी कुंवरी भगवान् की बड़ी भक्त थी। जिस समय कृष्णजी कंस को मारने गये थे उस समय कुंवरी ने उनके मस्तक पर चन्दन लगाकर अर्पना जन्म सफल किया। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीकृष्णजी ने उसकी पीठ पर पैर रख कर उसका दूध पीठा दिया जिससे वह परम सुन्दरी हो गई। उसकी भक्ति और विनय के वश होकर भगवान् ने जाकर उसका घर पवित्र किया और उससे प्रेम करके उसे कृतार्थ किया।

---

### भीम

पाँचो पाँडवों को जब दुर्योधन ने अज्ञातवास दे दिया था तब ये लोग राजा विराट के यहाँ नौकरी करते थे। भीम उस समय रसोईघराने का काम करते थे। अर्जुन नाच सिखाने और बाजा बजाने का। मतलब यह है कि समय पढ़ने पर भीम ऐसे बलवान व्यक्ति को भी रसोई बना कर जीवन बिताना पड़ा।

---

### गीध

जब रावण सीता जी को चुरा कर ले चला तब रास्ते में उसे जटायु नामक गीध मिल गया। वह राम का बड़ा भक्त था। उसने रावण से लड़ाई करके सीता को छीन लेने का प्रयत्न किया। परन्तु रावण ने अपनी तलवार से उसका पंख काट दिया। गीध निरुपाय होकर गिर पड़ा। श्री रामचंद्रजी सीताजी को ढूँढ़ते हुए जब उधर से निकले तब उन्होंने गीध को अधमरा पड़ा हुआ देखा। गीध ने सीता का समाचार बतलाया और राम जी ने उसे स्वर्ग दिया।

---

### हनुमान

हनुमानजी का नाम प्रसिद्ध है। रामचंद्रजी के सेवक थे। सीता के पता लगाने में बहुत प्रयत्न किया। रामचंद्रजी ने उन्हें अपना सेवक बना लिया।

---